अंक 278 वर्ष 57

भाषा

मई–जून 2018

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

Skill India

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। **रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।**

2 लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेजें। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. **भाषा** में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक **भाषा**, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066



भाषा

मई–जून 2018

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर अवनीश कुमार

संपादक
डॉ. अनिता डगोरे

सह–संपादक
डॉ. अनुपम माथुर

परामर्श मंडल
श्रीमती चित्रा मुद्गल
डॉ. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
श्री एम. व्यंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

सहायक–संपादक
अच्युत कुमार सिंह

प्रूफ रीडर
इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

271 CHD / 2018—1A

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : 57 ☐ अंक : 5 (278)
मई–जून 2018

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.hindinideshalaya.nic.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

271 CHD / 2018—1B

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

संपादकीय

आपने लिखा

आलेख

1.	मंटो : उसका समय और आज	डॉ. नरेंद्र मोहन	13
2.	राष्ट्रवाद और भाषा	दयाप्रकाश सिन्हा	19
3.	हमारी कला-दृष्टि और रचना-कर्म	प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल	27
4.	निर्वचन और अनुवाद का अंतर्संबंध	डॉ. हीरालाल बाछोतिया	37
5.	बंगलादेश के भाषा-आंदोलन पर एक अंतर्दृष्टि	दानबहादुर सिंह	43
6.	विश्वविख्यात भारतीय वैज्ञानिक	शंकर लाल माहेश्वरी	50
7.	भारतीय जनजातीय साहित्य के वैचारिक सूत्र	प्रो. हेमराज मीणा	59
8.	उपभोक्तावादी बाज़ार के प्रभाव और प्रहार	बिर्ख खड़का डुवर्सेली	64
9.	सिंधी भक्ति-साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (विभाजन-पूर्व)	डॉ. तुलसी देवी	69
10.	हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय एकता का स्वर ('भारत-भारती' के विशेष संदर्भ में)	डॉ. केशवराम शर्मा	74
11.	हिजड़ों की त्रासदी समकालीन उपन्यासों में	डॉ. शबाना हबीब	80
12.	सांस्कृतिक शब्दों के अर्थ-विस्तार की आवश्यकता	डॉ. महीपाल सिंह राठौड़	87

13. वर्तमान परिदृश्य में नीति कवि रहीम — डॉ. आलोक रंजन पांडेय — 92
14. विज्ञापन और उपभोक्तावाद — डॉ. साधना शर्मा — 101

साक्षात्कार

15. स्वस्थ संवेदनाएँ संस्कृति को बचाएँगी : अमर बानिया लोहोरो — डॉ. आरसु — 108

यात्रावृत्त

16. हिमालय का सम्मोहन — डॉ. प्रदीप शर्मा 'सनेही' — 121

एकांकी

17. फूल-पत्ते और काँटे — सतीश श्रोत्रिय — 137

धरोहर

18. मरण सागर पारे — शिवानी — 144

कहानी

19. सती सावित्री (तेलुगु) — पी. सुब्बारामय्या, अनुवाद: डॉ. जे.एल. रेड्डी — 153
20. अपरिचित (ओड़िया) — संयुक्ता महांति, अनुवाद: सुरभि बेहेरा — 163
21. पुण्या (पंजाबी) — मूल एवं अनुवाद : शकुंतला कालरा — 176
22. प्रभु की माया (हिंदी) — गुरचरण सिंह — 183
23. सिमटती दूरियाँ (हिंदी) — योगेश चंद्र शर्मा — 192

कविता

24. कला (हिंदी/मराठी) — महेंद्र भटनागर, अनुवाद: डॉ. गजानन चव्हाण — 198
25. वर्षा (ओड़िया/हिंदी) — यज्ञदत्त सामंतराय, अनुवाद: निबेदिता पंडा — 202
26. संत्रास (असमिया/हिंदी) — अभिजीत पायेङ, अनुवाद: डॉ. जाकिर हुसैन — 206
27. सुबह सबेरे (हिंदी/कन्नड) — ए. कीर्तिवर्धन, अनुवाद: डॉ. सुनील कुमार परीट — 208

28. यह ज़िहाद नहीं है (हिंदी) तारिक असलम 'तस्नीम' 210
29. बोलो न पापा (हिंदी) भगवान वैद्य 'प्रखर' 215
30. वह फूटा था (हिंदी) दिविक रमेश 219
31. गजल (हिंदी) कुलदीप सलिल 221
32. ग्रीष्म का आँचल (हिंदी) कमल सिंह चौहान 223
33. मेरा नाम लोकतंत्र है (हिंदी) राजकुमार कुंभज 225

परख

34. सामाजिक सच से सीधा साक्षात्कार (अंतहीन सिलसिला (कहानी-संग्रह)/ देवेंद्र कुमार मिश्रा) डॉ. राहुल 227
35. व्यंग्यात्मकता और आइना (चौराहे पर भैंस (व्यंग्य-संग्रह)/ डॉ. सुधेश) डॉ. पुष्पेंद्र कुमार शर्मा 232
36. गीतों के बहाने युवाओं को प्रेरित करता संग्रह: युवाओं के गीत (गीत-संग्रह/शचींद्र भटनागर) डॉ. रमेश तिवारी 239
37. जब तक इंद्र है, तक्षक हँसता रहेगा (तक्षक हँस रहा है (नाटक)/ डॉ. उमाकांत खुबालकर) प्रताप सहगल 243
38. नरेंद्र मोहन कविता समग्र (संपा. डॉ. गुरचरण सिंह) डॉ. शालिनी राजवंशी 247

प्राप्ति स्वीकार **251**
संपर्क सूत्र **252**

अवतार कोई अवधारणा नहीं
बल्कि वैज्ञानिक यथार्थता है
प्रत्येक कल्प-परिवर्तन के साथ
उसका मनु
उसके सप्तर्षि
उसके देवता
उसका इंद्र
और मानवीय तथा जैवीय सृष्टि
बदल जाते हैं
और इसी समग्र परिवर्तन का नाम अवतार है।
इसीलिए अवतारी पुरुष व्यक्ति नहीं होता
वह सत्ता होता है
तभी तो 'एकांशेन स्थितं जगत्' कहा गया है।

– श्री नरेश मेहता
('पुरुष' खंडकाव्य से)



निदेशक की कलम से

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित प्रतिष्ठित द्वैमासिक पत्रिका "भाषा" के अंक 278 वर्ष 57 (मई-जून 2018) का संस्करण सुधी पाठकों को उपलब्ध कराते हुए अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। यह मेरे लिए गौरव का क्षण है कि एक बार फिर से मुझे भाषा के पाठकों के समक्ष अपने विचार रखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। भाषा ऐसा विषय है जिसमें ज्ञान का संप्रेषण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता है। भाषा अथवा भाषाएँ नहीं होतीं तो ज्ञान लुप्तप्रायः हो गया होता। भाषा ही वह सीढ़ी है जिसके द्वारा ज्ञान अपनी यात्रा अनवरत रूप से जारी रखे हुए है। ऐसे में भाषाओं का सशक्त, संपूर्ण एवं विकसित होना नितांत आवश्यक है। हम ज्ञान को तो प्रधानता देते हैं परंतु ज्ञान-प्राप्ति के लिए आवश्यक भाषा एवं तकनीक पर विशेष जोर नहीं देते। यही कारण है कि ज्ञान को अपनी भाषा में उपलब्ध कराने में हमारी गति धीमी है। हम यदि विकसित होना चाहते हैं तो हमें अपनी भाषा में चिंतन करना होगा तथा ज्ञान को अपनी भाषा में उपलब्ध बनाना होगा।

प्रस्तुत संकलन में मस्तिष्क को उद्वेलित कर देने वाले अनेक विषयों पर विद्वान साथियों द्वारा लिखित लेख एवं उनके विचारों से निश्चय ही पाठक लाभान्वित होंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इनमें मुख्य हैं 'मंटो, उसका समय और आज' जो कि दिल और मस्तिष्क को झकझोरने वाला लेख है। पाठक लंबे समय तक इसको याद रखेंगे। साथ ही प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा लिखित लेख 'हमारी कला-दृष्टि और रचना कर्म', जिसमें लेखक ने कला-दृष्टि से कलाकृति की रचनात्मकता का सुंदर वर्णन किया है। 'बंगलादेश के भाषा आंदोलन पर एक अंतर्दृष्टि' से निश्चय ही सीख लेने की आवश्यकता

है। 'विज्ञापनों में भाषा की अभिव्यक्ति' का विषय चिंतन योग्य है। ओड़िया, पंजाबी एवं हिंदी कहानियाँ भी पठनीय हैं।

नवगठित परामर्श मंडल के सभी सदस्यों का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ। आपका जो मार्गदर्शन निदेशालय को प्राप्त होता है, वह अतुलनीय है।

भाषा का अंक 279 वर्ष 57 (जुलाई-अगस्त 2018) 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के उपलक्ष में विशेषांक के रूप में निकाले जाने का निर्णय लिया गया है। इसके लिए पाठकों से जो सहयोग हमें मिला है, उसके लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

भाषा पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य रचनाओं के लेखकों के प्रति मैं निदेशालय परिवार की तरफ से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में भी भाषा पत्रिका आप सबके लेखकीय सहयोग से उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त करेगी। भाषा एकक में कार्यरत मेरे सभी सहयोगी भी अपने अनवरत श्रम एवं निष्ठा के लिए साधुवाद के पात्र हैं।

शुभेच्छाओं के साथ,

प्रोफेसर अवनीश कुमार

संपादकीय

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका एक लंबे समय से समयबद्ध तरीके से अपनी पूर्ण ऊर्जा के साथ आप भाषा-प्रेमी पाठकों तक पहुँचती रही है प्राप्त सम्मति से यह विदित होता है कि पत्रिका में प्रस्तुत लेख, कहानी, संस्मरण, साक्षात्कार इत्यादि पाठकों के मन को प्रभावित करते हैं। भाषा-परिवार की यह कोशिश रहती है कि आप सुधिजन पाठकों तक ठोस व उपयुक्त सामग्री उपलब्ध कराई जा सके। इस वर्ष का मई-जून 2018 अंक भी अपनी विविध रचनाओं की खुशबू लिए हुए आपके समक्ष एक पुष्प गुच्छ के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक वैचारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं वैज्ञानिक विचारों की धरोहर एवं उनमें समय-समय पर आई प्रगतिशिलता का समायोजन इस अंक में देखने को मिलेगा।

जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, अलगाववाद जैसे प्रकरण देश की नींव को कमजोर कर सकते हैं बंगलादेश, श्रीलंका व पाकिस्तान आदि का विभाजन इसका ज्वलंत उदाहरण है। देश की एकता व अखंडता के लिए निरंतर नैतिक, राजनैतिक एवं बौद्धिक स्तर पर राष्ट्रीय चेतना को बनाए रखने का सतत् प्रयास आवश्यक ही नहीं, बल्कि हमारा कर्तव्य भी है। वैसे तो हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय एकता की शुरुआत भक्तिकालीन कवि कबीर के समय से ही शुरु हो चुकी थी जिसका स्वर आधुनिक काल के भारतेंदु व मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में भी दिखाई व सुनाई पड़ता है।

जहाँ भारतीय साहित्य में आध्यात्मिक आस्था का रूप दिखाई पड़ता है वहीं यह साहित्य, वैज्ञानिक सिद्धांतों का भी पूरा सम्मान करता है। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दूल कलाम ने कहा था कि "जहां अध्यात्म समाप्त होता है वहीं से विज्ञान शुरु होता है।" वैदिक काल से आधुनिक काल तक अनेक ऋषि-मुनियों व वैज्ञानिकों ने अपने वैज्ञानिक विचारों को सिद्ध कर विश्व को अपने सिद्धांत से अवगत ही नहीं

कराया अपितु विश्व में भारत की एक सुदृढ़ पहचान भी बनाई। चाहे वो महर्षि चरक, आचार्य सुश्रुत, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य द्वितीय हों या आधुनिक काल के डॉ. जगदीश चंद्र बोस, नोबेल पुरस्कार विजेता एवं भारत रत्न डॉ. सी. वी. रमन, श्री निवासन, रमानुजन, प्रफुल्लचंद्र, सतेंद्र बोस, हरगोविंद खुराणा, सलीम अली, विक्रम सारा भाई, डॉ. होमी जहाँगीर भाभा, सुभ्रमण्यम चंद्र शेखर, भारत रत्न डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम हों।

अगर भारतीय कला की बात करें तो नृत्य-कला, चित्र-कला, शिल्प-कला, नाट्य-कला अपने आप में एक अनुठी एवं बजोड़ कला है जिसे देखते समय व्यक्ति कुछ समय के लिए अपने वर्तमान से परे एक आलौकिक आनंद की अनुभूति में खो जाता है।

यदि बात करें आदिवासी साहित्य की जो कि भारतीय साहित्य की अमुल्य धरोहर है जिसके बारे में वर्तमान समय में भी काफी कुछ लिखा भी जा रहा है। संबंधित जानकारी प्रो. हेमराज मीणा के लेख से ली जा सकेगी।

यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत कहानियाँ पाठकों को बहुत कुछ सोचने व समझने पर मजबूर करती दिखाई पड़ती हैं।

इस दौड़ते-भागते प्रगतिशील जीवन में हम कहीं अपने मानवीय मूल्यों से वंचित तो नहीं हो रहे हैं? जहाँ 'ग्लोबल विलेज' की बाज कही जाती है वहाँ 'वसुधेव कुटुंबकम्' का संदेश नजर नहीं आता। यह आज के लेखक व पाठक की सबसे बड़ी चिंता का विषय बना हुआ है।

अंत में कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक आए निरंतर विकास एवं परिवर्तन में हमने बहुत कुछ पाया तो है, तो कुछ खोया भी है लेकिन यह सत्य है समय परिवर्तनशील है।

इसी शुभकामनाओं के साथ!

(अनिता डगोरे)

आपने लिखा

नववर्ष के मंगलमय अवसर पर आपको तथा समस्त भाषा परिवार को हमारी शुभकामनाएँ तथा बधाई! आप सभी स्वस्थ तथा सदा प्रसन्नता की सुगंध से सुवासित रहें।

देश की राजधानी से प्रकाशित हो रही 'भाषा' पत्रिका को और अधिक रुचिकर बनाएँ, कुछ प्रेरक-उत्तेजक फिलर, सामयिक ज्वलंत विषयों से संबंधित स्तंभ, चटपटी मनोरंजक परंतु शिक्षाप्रद मुक्तिकाएँ एवं चित्र भी रहें तो सोने में सुहागा रहेगा। पत्रिका आकर्षक बनेगी।

सर्वेशचंद्र शर्मा
ई-3/574, विनीत खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010

भाषा एक ऐसी पत्रिका है, जो तमाम हिंदुस्तान और हिंदुस्तानियों को एकता की शिखर पर पहुँचाती है। पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तथा आठों दिशाओं में उभरे भव्य साहित्य-सुमनों को एक साथ गूंथ कर हर दो महीनों में एक बार उगने वाला सुंदर गुलदस्ता है। साहित्यिक सिंचाई के साथ भारतीय संस्कृति, एकता और अखंडता को प्रतिबिंबित करते हुए निकलने वाली एक उत्तम पत्रिका है। देश के कोने-कोने से, विश्व की विविध जगहों के कवि लेखक अपने कृतियों के माध्यम से इस भाषा क्षेत्र को महत्वपूर्ण बनाने में भागीदार हो रहे हैं। उन सभी साहित्यिक सृष्टिकर्ताओं के प्रति भाषा के पाठक (पढ़ने वाले) ऋणी बनते हैं। 'भाषा' के द्वारा हिंदी भाषा का विकास, प्रसार-प्रचार विश्व के सभी प्रांतों में विस्तृत रूप से पहुँचाने का प्रयास अत्यंत सराहनीय है। इस पत्रिका के माध्यम से अहिंदी भाषी लोगों में हिंदी भाषा के प्रति रुचि और गहरी होती जा रही है। भाषा के पीछे 'भाषा' की उन्नति को लक्षित कर सदा निरंतर प्रयासरत परिश्रमी संपादन मंडल के साथ हिंदी निदेशालय के प्रूफ रीडर्स, छपाई

और पुस्तकाकृति प्रदान करके घर के दरवाजे तक पहुँचाने वाले सभी भाषा परिवार के सदस्य और डाक विभाग का भी योगदान प्रशंसनीय है। इन सभी लोगों में एका न हो तो सारा प्रयास अधूरा हो जायेगा। पाठकों की ज्ञान तृष्णा को तृप्त करने वाली 'भाषा' को हम भाषा-प्रेमी पाठक धन्यवाद देते हैं।

एन. फणि प्रशांत
घ. सं. 27/64 कोज्जिलिपेटा, मचिलीपट्टणम-521001,
कृष्णा जिला, आंध्र प्रदेश

'भाषा के जिस सुचारू, सुरुचि और समय से सभी अंक निकल रहे हैं, उसके लिए हार्दिक बधाई। इतनी महत्वपूर्ण पत्रिका का संपादन आसान काम नहीं है। आपने 'भाषा' को उसके पुराने तेवर दिए, हमारी शुभकामनाएँ। यह इसी तरह समस्त अर्थों के साथ वर्ष भर प्रकाशित होती रहे।

किश्वर सुल्ताना
द्वारा डॉ. जेड. ए. सिद्दीकी चौक मोहम्मद सईदखान
लंगर खाना, रामपुर-244901

मंटो : उसका समय और आज

डॉ. नरेंद्र मोहन

मंटो की ऊबड़-खाबड़, संकटों और चुनौतियों भरी ज़िंदगी के उतार-चढ़ावों में एक अंतर्निहित लय है। यह लय सांस्कृतिक और सभ्यतामूलक आधारों और सरोकारों के साथ है। यही लय उसे हिंदी-उर्दू का एक बड़ा लेखक बनाती है। इसी की बदौलत वह भारतीय साइकी का उसी तरह हिस्सा बन चुका है जैसे कबीर, बाबा फरीद, रवींद्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद आदि लेखक। इस तरह से देखें तो मंटो के संदर्भ को ग्रहण किए बिना आजादी या भारत-विभाजन के बाद के इधर या उधर के साहित्यिक सिलसिलों को समझना मुश्किल है। इस बात को इस तरह भी कहा जा सकता है कि वह न पाकिस्तानी मंटो है न हिंदुस्तानी मंटो। उसकी वफादारी इंसानियत से है। मंटो की दृष्टि में, एहसास में, मजहब में, रंग और नस्ल का, देश और राज्य का कोई भेदभाव नहीं दिखता। विभाजन के बाद उसने खुद को टोबा टेकसिंह की तरह 'नो मैंस लैंड' में खड़ा महसूस किया था, वह 'नो मैंस लैंड' जो हर लेखक के जीने-मरने की जगह है, किसी की कम, किसी की ज्यादा।

मंटो ने 'एक ख़त' कहानी में एक जगह लिखा है, 'मुझे यह कितना बड़ा इत्मीनान है कि मैं जो कुछ महसूस करता हूँ, वही जबान से बयान करता हूँ।' संवेदना और अभिव्यक्ति की ऐसी सच्चाई और एकतानता विरले लेखकों में होती है। भाषा और शिल्प को तराशने और सजाने में उनकी दिलचस्पी नहीं होती। रचना के भीतरी दबावों से, कहानियों की अंदरूनी सच्चाइयों से भाषा और शिल्प एक खास अंदाज में दमकने लगते हैं। ऐसे लेखक लीकों पर नहीं चलते, बंधी-बंधाई विचार-सरणियों का अनुसरण नहीं करते। वे अपना रास्ता खुद बनाते

हैं- अपने अनुभवों और विचारों के बल पर। वे अनुभव और परिस्थिति को एक-दूसरे में ढालते हुए, दोनों को टकराव में नियोजित करते हुए कहानियाँ लिखते हैं। ऐसे लेखक शुरू से आखिर तक संवाद और जिरह करते रहते हैं, आत्म-संघर्ष और आत्मालोचन के लंबे दौरों में से गुजरते हैं और इस तरह ज़माने की चालू नैतिकताओं से पल्ला झाड़, बेखौफ हो सच का दामन थाम लेते हैं और उसे साहसपूर्वक अभिव्यक्त करने का जोखिम उठाते हैं। जाहिर है हक की खातिर सब कुछ गवाँ देने वाला ही उसके साथ चल सकता है। गहराते संकटों के बीच और ताप के तायें हुए दिनों में उसने जो बेजोड़ कहानियाँ लिखीं, वे 'कागज की लेखी' के बजाय 'आँखिन देखी' के तल्खी भरे विचारों और झंझावतों को लिए हुए हैं। इस 'आँखिन देखी' में वह खुद ही नहीं, लोग और समाज भी शामिल हैं।

मंटो ने जो कुछ लिखा है, उसे पूरी तरह से जाना ही नहीं, जिया भी है। कथ्य का जो सरमाया उसके पास था, उसे उसने मेहनत से खुद कमाया था, खतरों से भिड़ कर जुटाया था और उसे फराखदिली से अपने लेखन के जरिए लुटाया भी था। उनके कथ्य में इसीलिए कोई दुर्बोधता नहीं है। कहानी कहते-कहते वह बेशक कहीं का कहीं पहुँच जाए, उसकी आँख अपने कथ्य और संवेदना पर एकाग्र रहती है। मंटो इस शैली के उस्ताद हैं। उसकी कहानियाँ कौमी जिंदगी की समस्याओं और स्वाधीनता-संघर्ष से जुड़ी हों या औरत-मर्द के रिश्तों से, यौन व्यवहारों या विभाजन से संबंधित हों या सामाजिक विसंगतियों से, मंटो की यह खास शैली हर जगह मिलेगी।

मंटो की कहानियाँ पाठकों की अंतश्चेतना को बुरी तरह झकझोरने वाली, तिलमिला देने वाले विचारों तक ले जाने वाली और गहरी बेचैनी पैदा करने वाली हैं। पर यह बेचैनी महज व्यक्तिगत नहीं है, मुल्क और कौम की बेचैनी से जुड़ी हुई है। मंटो ने एक जगह लिखा है, 'अदब दर्जा हरारत है अपने मुल्क का, अपनी कौम का। वह उसकी सेहत और बीमारी की खबर देता रहता है।' मंटो के अफसाने, उनके नाटक इस सेहत और बीमारी की खबर देते रहते हैं- अपने खास अंदाज में। उसकी बेचैनी कहानियों की मार्फत पाठकों तक सीधी पहुँचती है और पाठक उत्तेजित और विह्वल हो जाते हैं। मंटों की कहानियों में यह बेचैनी अस्मिता के संकट के विभिन्न रूपों में मुखर हुई है।

मंटो ने अपने वक्त का भरपूर जायजा लिया है- सिर्फ बाहरी तौर पर नहीं, बल्कि भागीदारी निभाते हुए, हस्तक्षेप करते हुए। अपने अफसानों में वह बाहर को अंदरूनी दुनिया में कुछ इस तरह ले जाता है कि घटनाएँ और पात्र नए रूपों में सामने आ जाते हैं। विभाजन जैसे हादसे को ही नहीं, हर घटना-दुर्घटना और चरित्र को वह भीतरी वारदात के रूप में कुछ इस तरह आत्मसात करता है कि बाहरी-भीतरी यथार्थ की कई सतहें एक साथ खुलती जाती हैं। किसी हादसे या घटना को वह जिस्म से, जहन से रूह की गहराइयों और ऊपरी सतहों से 'लोअर डैप्पस' तक जिस तीव्रता से अपनी कहानियों में ले गया है, वैसा शायद ही कोई अन्य लेखक कर पाया हो। मनुष्य होने की नियति और पीड़ा के साथ वह बँटवारे जैसी बड़ी त्रासदी को अपने भीतर उतार ले गया और ऐसा करते हुए मानवीय क्षति के तीव्र एहसास से गुजरने लगा और उन जगहों की निशानदेही करने लगा जहाँ आदमी निपट अकेला हो जाता है- हैवानियत से घिरा, इंसानियत से लबरेज। इस दृष्टि से 'स्याह हाशिये' की लघुकथाओं को भला कौन भूल सकता है? वहशीपन और क्रूरता की निचली सतहों तक झाँक कर उनका हल्का-फुल्का हास्य-व्यंग्यपूर्ण नाटकीय विधान इन लघुकथाओं की खासियत है। ये एक बड़ी त्रासदी के टुकड़े हैं। यकीन नहीं होता कि तब के तरक्कीपसंद आलोचकों ने व्यंग्य-विधान वाली इन मार्मिक कहानियों का मजाक उड़ाया होगा और कहा होगा कि मंटो ने लाशों की जेबों से सिगरेट के टुकड़े अंगूठियाँ और इसी किस्म की चीजें निकाल कर जमा की हैं जब कि मंटो ने उस दौर के आदमी की फितरत को उभारती, दहला देने वाले दंगों और विद्रूप स्थितियों की एक दृश्यात्मक कथा-शृंखला रच दी थी। बाहर और भीतर के तनाव का, घटना के भीतरी वारदात बनने की अंतर्क्रिया का संयोजन और शिल्प मंटो की कहानी-कला की ऐसी अपूर्वता है जो उसे अपने समय का ही नहीं, हमारे समय का भी एक बड़ा लेखक बना देती है।

इसी कला का हिस्सा है मंटो की सामाजिक-राजनैतिक सोच। इसी सोच का हिस्सा है चचा साम के नाम उनके नौ खत, जब कि 'तमाशा', 'स्वराज्य के लिए', 'नारा', 'लाइसेंस', 'नया कानून' जैसी कहानियों में ही नहीं, 'टोबा टेकसिंह', 'यजीद', 'मोजेल' और बँटवारे से जुड़ी अन्य कहानियों में भी यह सोच बड़ी बारीकी से गुंथी हुई है। मानव-मन की अनोखी परतों को उघाड़ने

वाली यह सोच ('मम्मद भाई', 'बाबू गोपीनाथ', 'जानकी' कहानियाँ) जटिल और बहुआयामी चरित्रों की कचोट और आहत अहं ('हतक', 'मम्मी', 'मेरा नाम राधा है') से भी जुड़ी हुई है।

मंटो ने तवायफों पर लिखा हो या औरत-मर्द के रिश्तों पर, वह अपने पात्रों के प्रति बेसरोकारी के रवैये के बावजूद इन पात्रों के प्रति उसका गहरा सरोकार, तटस्थता के बावजूद गहरी आत्मीयता और अंतरंगता इन कहानियों में झलकती रहती है। सौगंधी, सुल्ताना, बाबू गोपीनाथ, मम्मद भाई, खुशिया जैसे बीसियों पात्रों की अंधकारपूर्ण परतों में दबी-सिमटी भावनाओं को, इच्छाओं-आकांक्षाओं को, विचारों सरोकारों को, विसंगतियों-असंगतियों को मंटो ने बड़ी कलात्मकता से उघाड़ा है। ये उसके आत्म में अटकी हुई चिंगारियाँ हैं जिन्हें उसने अफसानों का रूप दिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो मंटो ने वेश्या में औरत और औरत में वेश्या की तलाश की है। यह तलाश वह इस तरह करता है कि विसंगतियाँ उजागर होती चलती हैं। अबू सईद कुरैशी ने ठीक ही कहा है: "अगर उसकी बातें कुछ लोगों को समझ में नहीं आ सकीं तो उसका नहीं, उनकी समझ का कसूर है। उसने महात्मा बुद्ध की तरह वेश्या को सीने से लगा लिया और मसीह की मानिंद समाज के कोढ़ियों के नासूर साफ किए और बताया कि इन फोड़ों की जगह कहाँ है"। उन लोगों की विकृत मानसिकता के बारे में क्या कहें जिन्होंने इन कहानियों के पात्रों को वीभत्स, भयानक और अनैतिक कहने में कोई कसर न छोड़ी। जंग खाए इखलाक के ठेकेदारों को भला यह कैसे समझ में आता कि उन जगहों में वह इंसान के वास्तविक स्वरूप को ढूंढ रहा था।

मंटो की कहानियों में सामाजिक-राजनैतिक पाठ के बरक्स कई आशयों-मंतव्यों में लिपटा हुआ एक मानवीय पाठ है जो हमें अपनी गिरफ्त में इस तरह ले लेता है कि सामाजिक और राजनैतिक पाठ की कलई खुलने लगती है। ध्यान से देखें तो राजनैतिक पाठ के नीचे एक सांस्कृतिक-सभ्यतामूलक पाठ है और उसके नीचे दोनों से जुड़ा-तना मानवीय पाठ है जिसे मंटो इस रचना-कौशल और कलात्मकता से उठाते हैं कि राजनैतिक पाठ तार-तार हो जाता है। इस तरह से देखें तो उनकी कहानियाँ सामाजिक विसंगतियों-विरूपताओं और राजनैतिक कारगुजारियों पर स्वत: एक टिप्पणी बनती जाती हैं।

आज के वक्त में जब हम अपने गिर्द कई तरह की विसंगतियों-विद्रूपताओं और विस्थापन के विकट सिलसिलों को फैलता हुए देखते हैं तो मंटो की याद आती है और उसकी कहानियों के पात्र हमें हॉन्ट करने लगते हैं। 'टोबा टेकसिंह' के बिशनसिंह की. "ओ पड़ दी गिड़ गिड़ दी, एक्स दी बेध्याना दी.... हिंदुस्तान ऑफ दी पाकिस्तान ऑफ दी दुर फिट्टे मुँह की" बड़बड़ाहट सुन कर बताइए, क्या आप विभाजन के अंधेरे से इतिहास के पागलपन में नहीं उतर जाते और बेहद विचलित नहीं हो जाते। दरअसल, 'खोल दो', 'ठंडा गोश्त' और 'टोबा टेकसिंह' जैसी कहानियाँ पागल बना देने वाले माहौल में अकेला पड़ते जाने की कहानियाँ भी हैं। दंगों से दहशतजदा हो कर मर्दानगी गवां बैठने वाला ईशरसिंह क्या आज भी आपका पीछा नहीं कर रहा? 'हतक' की सौगंधी क्या आज भी हमारे आस-पास नहीं मंडरा रही?

कहानी में रचना-विधान में अंत का बड़ा महत्व है। मंटो को कहानी अन्त करने के फन में कमाल हासिल है। 'खोल दो' कहानी ही लें। इस कहानी का अंत पढ़ते हुए एक पल मुझे लगा मैं वह डॉक्टर हूँ जो सराजुद्दीन से कहता है, 'खिड़की खोल दो'। दूसरे पल मुझे लगा मैं सकीना हूँ जो बेजान हाथों से सलवार नीचे सरका देती है। तीसरे पल मैं सराजुद्दीन में बदल जाता हूँ और खुशी से चिल्लाता हूँ- 'जिंदा है, मेरी बेटी जिंदा है' और चौथे पल मुझे लगा, मैं ही वह डॉक्टर हूँ जो सिर से पैर तक पसीने में गर्क हो गया। ये चारों पल जैसे ही जुड़ने लगे, मुझे लगा मैं मंटो के आसपास हूँ। उसकी काया और रूह में प्रवेश कर गया हूँ और कहानी के नए-नए अर्थ मेरे सामने खुलने लगे हैं। ऐसे ही क्षणों में मंटो की जिंदगी और कहानियाँ मेरे लिए एक दूसरे में घुलती गई हैं। 'खुशिया' कहानी के साथ भी यही हुआ। कुछ लोगों ने जब इसे बनावटी कहानी कहा तो मंटो ने तिलमिला कर कहा, 'मैं हूँ वो खुशिया'। सत्यार्थी ने कहा, 'काश, मैं खुशिया होता'। आज 21वीं सदी के दूसरे दशक में कहानी पढ़ने के बाद जब मैं यह कहता हूँ, 'मैं खुशिया हूँ', तो उसकी ध्वनियों के अर्थ-विस्तार को आप समझ सकते हैं।

कई लोग हिकारत भरे लहजे में कहते हैं: "नाहक मंटो को उठाए हो। क्या हैं मंटो? पी पी कर मर गया।" मुझे फैज अहमद फैज का 'एलिस के नाम खत'

271 CHD / 2018—2A

याद आ गया है, "चेखव, फ्रायड और मोपासा और न जाने कितने-कितने विषयों पर गर्म बहसें होती थी.... बहुत पीता था? बहुत बेकायदा जिंदगी बसर करता था, सेहत का सत्यानाश कर लिया था। लेकिन यह कोई नहीं सोचेगा कि उसने ऐसा क्यों किया था। ऐसे ही कीट्स ने भी अपने को मार रखा था। मोजार्ट ने भी। जब आर्थिक हालत की वजह से फन और जिंदगी एक दूसरे के संघर्ष में हों तो दोनों में से एक की कुर्बानी देनी पड़ती है। मंटो ने फन की खातिर जिंदगी की कुर्बानी दे दी।" उसकी कहानियों में झाँकते हुए वहाँ पहुँचा जा सकता है जहाँ जिंदगी और मौत एक ही सिक्के के दो पहलू नजर आने लगते हैं। मंटो उस मुकाम पर पहुँचा था और जिंदगी और मौत का स्वाद एक साथ चखा था।

इसमें संदेह नहीं था कि मंटो की कहानियाँ अपने समय की सीमा को लांघ कर हमारे आज से अनायास आ जुड़ती हैं। अतीत से वर्तमान से होती हुई ये कहानियाँ कला और सच की बेजोड़ और बेबाक अभिव्यक्ति के साथ भविष्य में दाखिल होने का आभास कराती हैं। इनमें कहीं भी दोहराव नहीं है; न वस्तु में, न शिल्प में, न भाषा में। हर कहानी दूसरी कहानी से जुदा है और उसका ट्रीटमैंट भी अलग है। संवेदना की धार में बिधीं हुई ये कहानियाँ वृत्तांत को कब भीतर से फोड़ दें, विचार की किस तल्खी से या अंत के किस अप्रत्याशित मोड़ से पाठक को हतप्रभ कर दें, कहना कठिन है।

शारीरिक तौर पर मंटो हिंदुस्तान से पाकिस्तान, बंबई से लाहौर जरूर चला गया मगर वह दोनों देशों और महानगरों के बीच लगातार पंख फड़फड़ाता रहा, फिनिक्स पक्षी की तरह अपनी ही आग में जलता-मरता रहा, अपने अफसानों की राख से पुनर्जीवित होता रहा और लोगों की स्मृतियों में नई-नई तरह से कौंधता रहा- बीसवीं सदी में, इक्कीसवीं सदी में भी और शायद आने वाली पीढ़ियों में भी यह सिलसिला जारी रहेगा।

– 239-डी, एम.आई.जी. फ्लैट्स, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

❑❑❑

271 CHD / 2018—2B

राष्ट्रवाद और भाषा

दयाप्रकाश सिन्हा

इस आलेख के माध्यम से यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि राष्ट्रवाद और भाषा अविभाज्य रूप से जुड़े हैं। किसी भी राष्ट्र में, राष्ट्रवाद के विकास के साथ उस राष्ट्र की भाषा या भाषाओं की उन्नति होती है और राष्ट्रवाद की भावना के क्षरण के साथ उसकी भाषाओं की अवनति। आज भारत में हिंदी ही नहीं, अपितु अन्य सब राष्ट्रीय भाषाओं, जैसे तमिल, तेलुगु, बंगला आदि भाषाओं का अवमूल्यन हुआ है। उसका मुख्य कारण है देश में राष्ट्रवाद का क्षरण।

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि राष्ट्र क्या है? राष्ट्र को परिभाषित करना बहुत कठिन कार्य है। अनेक विद्वानों ने इसे अलग-अलग व्याख्यायित किया है। मैंने इसे अपनी तरह से समझने की कोशिश की है।

परिवार एक 'बायलोजिकल' (जैविक) इकाई होता है। इसके सब सदस्य एक दूसरे से रक्त-संबंध से जुड़े होते हैं। परिवार जब कालांतर में बढ़ते-बढ़ते इतना बड़ा हो जाता है कि बहुत बड़े भूभाग में बिखरे एक वंश का रूप ले ले, तो उसे 'क्लैन' कहते हैं। यह 'क्लैन' बढ़ते-बढ़ते 'ट्राइब' (कबीले) का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। कबीले के सदस्यों में एकत्व का आधार ही रक्त-संबंध होता है। जब विभिन्न कबीलों के सदस्य, जिनके आपस में रक्त-संबंध न हों, एक साथ रहते हुए, अपनी कबीलाई या क्षेत्रीय पहचान से ऊपर उठकर, एक-दूसरे के निकट आते हैं तथा मानसिक और भावनात्मक रूप से एकत्व अनुभव करते हैं, तो वह पहचान 'राष्ट्र' का स्वरूप लेती है। 'राष्ट्र' के निर्माण में रक्त-संबंध की कोई भूमिका नहीं है। इस प्रकार राष्ट्र एक 'बायलोजिकल कॉन्सेप्ट' (जैविक अवधारणा) नहीं है।

प्राय: सहज बातचीत में 'सिटीजनशिप' (नागरिकता) तथा 'नेशनेलिटी' (राष्ट्रीयता) को पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार 'सिटीजन' (नागरिक) तथा 'नेशनल' (राष्ट्रिक) भी एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। यह तथ्यपरक नहीं है। 'सिटीजनशिप' तथा 'सिटीजन' विधिक शब्द हैं, जबकि 'राष्ट्रीय' और 'राष्ट्रिक' विधिमान्य शब्द नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति जो भारतीय मूल के माता-पिता की संतान है और भारत में जन्मा है, वह देश के विधान के अंतर्गत ही भारतीय 'सिटीजन' (नागरिक) माना जायेगा। कोई भी विदेशी विधिक प्रक्रिया के अंतर्गत ही भारतीय 'सिटीजनशिप' (नागरिकता) प्राप्त कर सकता है। इसके बाद ही वह विधिक रूप से भारतीय 'सिटीजन' (नागरिक) माना जाएगा। इसके विपरीत 'राष्ट्रीयता' (नेशनेलिटी) और 'राष्ट्रिक' (नेशनल) विधिसंगत शब्द नहीं हैं। विधान में राष्ट्र (नेशन), राष्ट्रवाद (नेशनलिज्म), राष्ट्रिक (नेशनल) आदि परिभाषित नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र एक 'लीगल कॉन्सेप्ट' (विधिक अवधारणा) नहीं है।

तब फिर राष्ट्र क्या है?

राष्ट्र एक भावनात्मक अवधारणा है। इसको विस्तार से समझने की आवश्यकता है।

रक्त, धर्म, भाषा, धंधा, क्षेत्र आदि के द्वारा एक-दूसरे से संबद्ध अथवा असंबद्ध जन जब अपनी सामूहिक पहचान स्वीकार करते हैं, तो राष्ट्र अस्तित्व में आता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उस राष्ट्र के सब राष्ट्रिकों की अन्य पहचानें विलुप्त हो जाती हैं। वे अपनी अन्य छोटी-छोटी पहचानों को जीवित रखते हुए ही भावनात्मक स्तर पर सर्वाधिक बड़ी पहचान 'राष्ट्र' के प्रति निष्ठावान होते हैं। उनकी इस बड़ी पहचान में छोटी-छोटी पहचानें गौण हो जाती हैं। उदाहरण के लिए हम सब भारतीय अपने आप को भारत राष्ट्र का सदस्य मानते हैं। भावना के धरातल पर भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना हमारी सबसे बड़ी पहचान है। साथ ही संभव है कि हम किसी धर्म को मानते हों। वह हमें एक धार्मिक पहचान देता है। हम एक प्रदेश में जन्मे हों, या उसमें कार्य करते हों, तो वह हमें निवासीय या क्षेत्रीय या प्रदेशीय पहचान देता है। सब पहचानों को स्वीकार करते हुए, जब हम अपने आप को भारत राष्ट्र का सदस्य मानते हैं, तो अन्य पहचानें आच्छादित हो जाती हैं।

सैकड़ों वर्षों की अवधि में जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि छोटी-छोटी पहचानों से निरपेक्षित राष्ट्रवाद की भावना धीरे-धीरे स्वत: विकसित होती है। एक भूमि पर साथ-साथ रहने, साझे इतिहास, साझी भाषा, साझे धर्म, साझी चुनौतियों, साझे उल्लास-उत्सवों और साझी आपदाओं की भी राष्ट्र-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हजारों साल का सहजीवन और सहसंघर्ष रंग-रूप, भेष-भाषा, खान-पान और पंथ-आस्था में एक-दूसरे से नितांत भिन्न, विविध जनों में एकत्व की भावना उत्पन्न करता है, जिसकी अभिव्यक्ति राष्ट्र के रूप में होती है। किंतु विचारशील नेतृत्व ही किसी भी जन को दिशा देते हुए राष्ट्रीय चेतना को सघन करता है और राष्ट्र का निर्माण करता है।

राष्ट्रीय चेतना ही राष्ट्रवाद के मूल में है। जब राष्ट्रीय चेतना दुर्बल होती है, तो राष्ट्र बिखरने लगता है और राष्ट्रीय चेतना के दुर्बल होने के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे जाति, धर्म, क्षेत्र आदि की छोटी-छोटी मान्यताएँ संपुष्ट होकर जातिवाद, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, मजहबी उन्माद का भीषण रूप लेकर राष्ट्र की बड़ी पहचान को चुनौती देने लगें या विरोधी शक्तियों के एजेंट राष्ट्रजन में फूट डालने में सफल हो जाएँ या दिशाहीन, बौने लोग नेतृत्व प्राप्त कर लें, नेतृत्व बिक जाए या ऐसा ही कुछ और। कुछ विचारधाराएँ भी राष्ट्रवाद को नकारती हैं। साम्यवाद राष्ट्रभावना को नकार कर अपने अनुयायियों में साम्यवादियों की अंतरराष्ट्रीय एकात्मकता में विश्वास करता है। इसी प्रकार इस्लाम भी देश और राष्ट्र की मर्यादाओं को अस्वीकार करते हुए इस्लामिक उम्मा को मानता है। वैश्विक बाजारवाद भी राष्ट्रवाद को क्षीण कर रहा है।

राष्ट्रीयता की रीढ़ है भावना और भावना कभी चिरस्थायी नहीं होती। प्रेम, क्रोध, वितृष्णा आदि भी भावनाएँ हैं। यह भावनाएँ चिरस्थायी नहीं रहतीं और उन्हें बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्न करना पड़ता है। राष्ट्रवाद भी एक भावना है। अतएव राष्ट्रवाद की चेतना का भी क्षरण स्वाभाविक है। यह चिरस्थायी तब ही हो सकती है, जब सुविचारित रूप से उसे सतत संपुष्ट किया जाए। इस संदर्भ में राजनैतिक और बौद्धिक नेतृत्व का यह दायित्व बनता है कि वे राष्ट्रवाद की भावना और राष्ट्रीय चेतना को बराबर बनाए रखने और सघन करने के लिए सतत उपाय करते रहें।

राष्ट्र के निर्माण में भाषा का महत्व नींव के पत्थर के समान है। जैसे नींव का पत्थर कमजोर हो जाए या अपने स्थान से हिल जाए तो भवन गिर जाता है, उसी प्रकार भाषा के नष्ट होने या काट दिये जाने पर राष्ट्र भी पतित हो जाता है।

इतिहास साक्षी है कि सभी आक्रमणकारी पराजित देशों पर अपना आधिपत्य सुदृढ़ करने के पहले उनकी भाषा नष्ट करते हैं। विजित जन का प्रतिरोध तोड़ने के लिए उनपर अपनी भाषा थोपते हैं। अरबी साम्राज्यवादी इस्लाम का जब विस्तार मिश्र, ईरान, तुर्की, अफगानिस्तान आदि देशों में हुआ, तो उसने वहाँ अरबी भाषा को थोपा था। इन देशों की प्रचीन भाषाओं और लिपियों को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट करके उनको अपने गौरवशाली अतीत से काट दिया था। भाषा के साथ विजित देशों का आत्मविश्वास भी तोड़ दिया। दक्षिण अमरीका के ब्राजील में पुर्तगाली बोली जाती है और क्यूबा, चिली, मैक्सिको, अर्जेंटीना आदि देशों में स्पेनिश भाषा, क्योंकि इन देशों को विदेशियों ने आक्रांत कर अपनी भाषाएँ थोप दी थीं।

इंग्लैंड के इतिहास से :

राष्ट्रीय चेतना और भाषा के रिश्ते का सर्वाधिक सटीक रूपायन इंग्लैंड के इतिहास से प्राप्त होता है। सन् 1066 में नॉरमन (फ्रांसीसी वंशज) राजा विलियम ने इंग्लैंड को पराजित करके वहाँ नॉरमन शासन की नींव डाली। उसने फ्रेंच को राजभाषा घोषित किया। तीन सौ वर्षों में फ्रेंच भाषा इंग्लैंड में राजकाज, सामंत वर्ग, उच्चाधिकारियों, अदालतों, स्कूलों और विद्यालयों की भाषा बन गई। पार्लियामेंट में भी फ्रेंच का बोलबाला हो गया। अंग्रेजी गाँव और अनपढ़ों की भाषा बनकर अंतिम सांसें गिनने लगी। फ्रेंच बोलना सभ्यता की पहचान बन गया। जो फ्रेंच न जाने, वह असभ्य। उस समय इंग्लैंड में अंग्रेजी की स्थिति वैसी ही सम्मानहीन और दुत्कारी-सी थी, जैसी आज भारत में हिंदी की है। उस समय पराजित अंग्रेजी समाज आत्मविश्वासहीन था, गौरव और राष्ट्रीय चेतना से शून्य।

सन् 1338 में इंग्लैंड के नॉरमन (फ्रांसीसी वंशज) राजा एडवर्ड तृतीय का युद्ध फ्रांस के राजा फिलिप षष्ठम् से हो गया। यह युद्ध रुक-रुक कर लगभग सौ वर्षों तक चला। इस युद्ध में नॉरमन राजा को इंग्लैंड की पराजित अंग्रेज प्रजा की सहायता की आवश्यकता थी। उनके सहयोग के बिना युद्ध

जीतना संभव नहीं था। इसलिए उनका हृदय जीतने के लिए लगभग तीन सौ वर्षों के शासन के बाद फ्रांसीसी के स्थान पर उसने अंग्रेजी को राजभाषा घोषित किया। सन् 1362 में पहली बार इंग्लैंड की पार्लियामेंट को उन्होंने फ्रेंच भाषा में संबोधित नहीं किया। उसके स्थान पर अंग्रेजी में संबोधित किया।

इसने पूरे अंग्रेजी समाज में जैसे नए प्राण फूंक दिए। राष्ट्रीयता के ज्वार ने थके-हारे, गिरे-पड़े अंग्रेजी समाज को ऐसा संगठित किया कि उन्होंने फ्रांस को मिट्टी चटाकर ही दम लिया। भाषा के पुनरुद्धार ने राष्ट्र को उठा कर खड़ा किया।

मैकॉले का सपना : भारतीय संदर्भ

ईस्ट इंडिया कंपनी का सन् 1830 तक भारत के अधिकांश भू-भाग पर कब्जा हो गया था। गवर्नर जनरल सहित ईस्ट इंडिया कंपनी के सभी उच्चाधिकारी चिंतित थे कि किस प्रकार भारत में अंग्रेजी साम्राज्य को चिरस्थायी बनाया जाए। उस समय कंपनी के आगे एक और प्रश्न भी था। इतने बड़े भू-भाग की भारतीय जनता के स्कूलों का पाठ्यक्रम क्या हो? क्या उनको पारंपरिक संस्कृत पाठ्यशालाओं और मुस्लिम मकतबों के अनुसार पढ़ाया जाए या कि इंग्लैंड के स्कूलों के नमूने पर शिक्षा दी जाए? अधिकारियों का एक दल हिंदुस्तानियों की परंपरागत शिक्षा के पक्ष में था, तो दूसरा अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में। कंपनी के अधिकारी अपने परामर्श में एकराय नहीं थे। उनके विवाद का अंत लॉर्ड मैकॉले के सुझाव ने किया, जिसे गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक ने स्वीकार करके अंग्रेजी को भारतीयों की शिक्षा का माध्यम बनाने का आदेश दिया।

लॉर्ड मैकॉले के सुझाव में यह तर्क था कि अंग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा और उसे चिरस्थायी बनाने में भी कामगार होगी। उसने गवर्नर जनरल को सन् 1835 में लिखे अपने 'मिनिट्स' में लिखा कि अगर हिंदुस्तानियों को अंग्रेजी में शिक्षित करेंगे तो, "हम एक ऐसे वर्ग का निर्माण करेंगे जो केवल रंग और रक्त में हिंदुस्तानी होगा, लेकिन अपनी पसंद, अपनी सोच, अपनी नैतिकता और बुद्धि में एक अंग्रेज होगा, और जो हमारे और लाखों हिंदुस्तानियों की प्रजा के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, बिचौलिए का काम करेगा।"

मैकॉले का सपना सच ही हुआ। कुछ ही वर्षों में अंग्रेजी स्कूलों ने हजारों-लाखों 'भूरे अंग्रेजों' की फौज तैयार कर दी जो अंग्रेजों के समान ही भारत और भारतीय संस्कृति, सभ्यता, विरासत और उससे संबंधित हर चीज को हेय-दृष्टि से देखते थे। कालांतर में, ये 'भूरे अंग्रेज' भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के सबसे बड़े हिमायती और स्तंभ सिद्ध हुए। स्वाभाविक रूप से इन 'भूरे अंग्रेजों' में राष्ट्रीय चेतना का एकदम अभाव था।

बाद में सुभाष बोस के दबाव में गांधीजी ने पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य (दिसंबर, 1929 में) स्वीकार तो किया, किंतु जब देश की आजादी का वक्त आया तो उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को पूर्ण स्वराज के स्थान पर अंग्रेजी ताज के अंतर्गत आधी आजादी (डोमिनियन स्टेटस) स्वीकार लिया। पूर्ण स्वराज के लिए कोई आग्रह नहीं किया। अपना अरबों-खरबों का निवेश भारत से निकाल लेने के बाद ही अंग्रेजों ने भारत को 26 जनवरी, 1950 को पूर्ण स्वराज दिया।

'भूरे अंग्रेजों' की अंग्रेज राज को की गई सेवाओं को अंग्रेज नहीं भूले, इसलिए देश को आजाद करके सत्ता इन्हीं को सौंप गए।

राष्ट्रीय चेतना का क्षरण और हिंदी का पतन :

जब से 'भूरे अंग्रेज' जिनके नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रवाद क्षीण हुआ था, देश की आजादी के बाद सत्तासीन हुए, तो राष्ट्रवाद का और पतन स्वाभाविक था। राष्ट्रवाद के पतन के साथ ही दबे-पड़े जातिवाद, क्षेत्रवाद और मजहबी उन्माद के पिशाच प्रकट हो गए। 'भूरे अंग्रेजों' का राष्ट्रवादहीन नेतृत्व कभी इस पड़ोसी देश, कभी उस पड़ोसी देश से पिटता रहा और अपनी झेंप मिटाने के लिए शांति-शांति का जाप करता रहा।

संविधान सभा ने एक स्वर में हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव पारित किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री को यह स्वीकार नहीं था। इसके बावजूद जब संविधान सभा ने उपर्युक्त प्रस्ताव पारित किया, तो यह निर्णय लिया गया कि हिंदी राजभाषा के रूप में पंद्रह वर्षों के बाद लागू की जाएगी। तब तक अंग्रेजी पहले के समान बनी रहेगी।

इस बीच 1961 में देश के सब मुख्यमंत्रियों ने एकमत से यह प्रस्ताव पारित किया कि देश की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी स्वीकार की जाए,

जैसे यूरोप की सभी भाषाएँ रोमन लिपि में लिखी जाती हैं। उनका तर्क था कि यह राष्ट्रीय एकता की दिशा में समुचित कदम होगा। किंतु जब यह प्रस्ताव केंद्र सरकार के पास गया तो, उसने इसे ठंडे बस्ते में डालकर खत्म कर दिया। देश ने राष्ट्रीय एकत्व का एक बड़ा अवसर खो दिया।

आज देश की स्थिति यह है कि देश की 100 करोड़ जनसंख्या में से यदि 99 करोड़ 95 लाख हिंदी को एकमात्र राजभाषा बनाना चाहें और अगर किसी राज्य के मात्र 5 लाख लोग न बनाना चाहें तो हिंदी एकमात्र राजभाषा नहीं बन सकती। अंग्रेजी अपने सिंहासन पर पूर्ववत् बनी रहेगी सदा-सदा के लिए।

भारतीय भाषाओं का दर्द :

आज हिंदी समेत सभी अन्य भाषाएँ जैसे तमिल, तेलुगु आदि अपने ही देश में निष्कासित, तिरस्कृत हैं, जबकि विदेशी भाषा अंग्रेजी हिंदुस्तानियों के सर माथे पर है। ऐसा तो होना ही था। स्वतंत्रता-संघर्ष के दिनों से ही देश पर हावी 'भूरे अंग्रेजों' ने आजादी के बाद सत्ता पर कब्जा करके देश को आत्मविश्वासहीन बनाकर भारतीयों के राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना को क्षीण कर दिया। वे अपनी भाषाओं को कैसे सम्मान की दृष्टि से देख सकते हैं? भारतीय राष्ट्रवाद के पतन के साथ भारतीय भाषाओं का पतन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

कुछ दिनों पहले मेरे नाती ने पूछा कि आपके छोटे भाई का जन्म किस सन् में हुआ था। मैंने बताया – सन् सैंतीस में। मेरा उत्तर उसकी समझ में नहीं आया। उसने पूछा – सैंतीस माने? मैंने बताया – 'थर्टी सेवन'। वह समझ गया। यही बात जब मैंने अपने एक मलयाली मित्र को बतायी तो वे हँसने लगे। मैंने पूछा, इसमें हँसने की क्या बात है? वह बोले – मेरे पोते का भी यही हाल है। अगर मैं उससे मलयाली में कहूँ 'मुपत्तियेल'। वह तुरंत पूछेगा – व्हाट? जब मैं कहूँगा 'थर्टी सेवन', तब वह भी समझ जाएगा।

आज नई पीढ़ी के मध्यवर्गीय बच्चे, चाहे वह हिंदी प्रदेश के हों, या बंगला, तमिल, ओडिया, कन्नड आदि हिंदीतर भाषी प्रदेशों के, अपनी मातृभाषा भूलते जा रहे हैं और मातृभाषा के साथ राष्ट्रीय चेतना को भी।

मेरे एक मित्र कन्नड के प्रख्यात लेखक हैं। वे बताने लगे कि उनका बेटा कन्नड बोल तो लेता है, लेकिन लिखना-पढ़ना नहीं जानता। उसकी कन्नड साहित्य में कोई रुचि नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि नई पीढ़ी के संभ्रांत घराने

के खूब पढ़े-लिखे लड़के कन्नड न पढ़ना जानते हैं और न पढ़ना चाहते हैं। कन्नड का साहित्य इतना समृद्ध है, इतना श्रेष्ठ है कि विश्व के किसी भाषा के साहित्य से कम नहीं है। अचानक उनके स्वर में हताशा आ गई। वह बड़ी पीड़ा से बोले – *कौन पढ़ेगा यह साहित्य? क्या यह ऐसे ही नष्ट हो जाएगा? बहुत-सी ऐसी जनजातियाँ हैं, जिनकी केवल बोलने की भाषा है; लिखी नहीं जा सकती, क्योंकि उनके पास लिपि नहीं है।* उनकी खाली निगाहों में दर्द उभर आया – *क्या कन्नड भी इसी तरह बोलने की भाषा बनकर रह जाएगी?* मैं इसका उत्तर नहीं दे सका। क्या उत्तर देता।

यह दर्द केवल कन्नड का नहीं है। यह दर्द भारत की सभी राष्ट्रीय भाषाओं का है। कब्र में मैकॉले मुस्कुरा रहा है।

– बी-255, सेक्टर-26, नोएडा-201301

❑❑❑

हमारी कला-दृष्टि और रचना-कर्म

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

कला - दृष्टि और रचना-कर्म का अविनाभाव संबंध है। "कला-दृष्टि" इस पूरी प्रक्रिया का पूर्व पक्ष है और रचना-कर्म उसका उत्तर पक्ष है। पूर्व पक्ष का संबंध भावन से है और उत्तर पक्ष का सर्जन से। कारण कि बिना भावन के रचना की जमीन तैयार हो ही नहीं सकती। यह भावन जितना गहरा होगा, उतना ही लोकव्यापी होगा। शिक्षा-ग्रंथों में हमें इसका आधार भी प्राप्त है। यथा-

आत्मा बुद्धया समेत्यर्थान मनो युङक्ते विवक्षया।
मन कायाग्नि माहन्ति स प्रेरयति मारूतन्।

इसका अर्थ है आत्मा अपनी बुद्धि का प्रयोग करके वक्तव्य या विवक्षित अर्थों का संकलन करती है। तब आत्मा मन को बताती है कि इस अर्थ का शब्द के माध्यम से प्रकाशन किया जाए। आत्मा की प्रेरणा से मन सक्रिय होता है और वह हमारे शरीर के भीतर रहने वाली अग्नि को प्रेरित करता है। अग्नि यहाँ तेज अथवा शक्ति के लिए प्रयुक्त है। इस अग्नि से प्रेरित होकर शरीर के भीतर की वायु उत्क्षेपित होती है। इसी वायु से उच्चारण की क्रिया संपन्न होती है। यही कारण है कि सभी ललित कलाओं में भावन के धरातल पर समानता बनी रहती है। अनुभूतियों को सर्जन के धरातल पर लाते ही अभिव्यक्ति पक्ष या अभीष्ट विधा के अनुरूप रचना-कर्म में अंतर प्रारंभ हो जाता है। कहीं उनके साधन शब्द बनते हैं और कहीं तूलिका और रंग आदि। वस्तुत: यह रचयिता के सर्जन कर्म में लीन मन का विश्लेषणात्मक अध्ययन है। प्राचीन काव्यशास्त्र की शब्दावली में रचना-प्रक्रिया कवि-कर्म संबद्ध है, सहृदय, पाठक या श्रोता की अनुभूतियों

से नहीं। सर्जन कर्म में लीन मन तथा सर्जन काल में अपेक्षित मूर्तामूर्त उपकरणों के विश्लेषण के माध्यम से सच पूछिए तो उसमें मेकेनिज्म को समझने की चेष्टा की जाती है। वास्तविकता यह है कि रचनाकार के संपूर्ण व्यक्तित्व, मनोविकास, सारस्वत सिद्धि और सांस्कृतिक संपन्नता का प्रभाव उसकी रचना में निहित रहता है। अमूर्त भावों, इंद्रिय-ग्राह्य बिंबों द्वारा रचना को मूर्त बनाना ही रचनाकार का मुख्य कार्य होता है। रचना की सृष्टि रचनाकार के अपने अंतर्जगत की उन चिदनुभूतियों से होती है, जिन्हें वह कुछ क्षण पहले अपने बहिरंग नेत्रों से देख चुका होता है। रचनाकार की आँखों में पूरा हृदय स्पंदित होता है। यही नहीं, यह स्पंदित हृदय भी लोचनयुक्त होता है। यही कारण है कि जब रामचरितमानस में दशरथ कहते हैं कि 'मारेसिम मोहि कुठाऊँ', तो भौतिक रूप में कैकेयी उन्हें नहीं मारती है, अपितु उनका भावजगत (हृदय) आहत होता है। यही कारण है कि हमारी अपनी काव्य- परंपरा में अनेक नयनहीन महाकवि हुए हैं, भौतिक चक्षु-रहित आज अनेक व्यक्ति श्रेष्ठ कलाकार के रूप में ख्यात हैं। यह उनकी अपनी अंतर्प्रज्ञा दृष्टि है।

जहाँ तक हमारी कला-दृष्टि का प्रश्न है, वह सनातनी एवं रागमयी है। सनातनता इसका शरीर है और रागात्मकता इसकी आत्मा है। इस सनातनता में भारतीय दर्शन, अध्यात्म एवं शाश्वत जीवन-मूल्यों की अंतर्धारा प्रवाहमान है। यह वेदों में वाक् रूपा है। इस रूप में कला शक्ति है और उसका आचरण करना भक्ति है। हमारी कला प्राणी मात्र के कल्याण की भावना पर आधारित है। सहृदयता और संवेदन इसका हृदय तत्व है। सत्य, शिव और सुंदर के प्रति आग्रह ही इसे उदात्त बनाता है। इसका मुख्य सूत्र है- सर्वजन हिताय। कला की सही पहचान उसकी संप्रेषणीयता है। यदि वह समाज जीवन को प्रभावित कर उसे संदृष्टि दे सकती है, तो वह कला है अन्यथा वह मन की विकृति ही कही जाएगी। भारतीय कला का समग्र-दर्शन एक गहरे विश्वास पर केंद्रित है। अभिज्ञानशाकुंतलम में कालिदास ने इस विश्वास को व्यक्त किया है----

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी पादास्तामभितो निषण्णहरिणो रीगुरो: पावना:।

शाखालंबितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यध: शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डुयमानां मृगीम्।

अर्थात् राजा कहता है---- सुनो, अभी मालिनी नदी बनानी है, जिसकी रेती में हंस के जोड़े बैठे हों। उसके दोनों ओर हिमालय की वह तलहटी दिखानी है, जहाँ हिरण बैठे हुए हों। मैं एक ऐसा पेड़ भी खींचना चाहता हूँ, जिस पर वल्कल वस्त्र टंगे हों और जिसके नीचे एक हिरणी अपनी बाईं आँख काले हिरण की सींग से रगड़कर खुजला रही हो। इसमें अत्यंत नुकीले सींग से आँख जैसे नाजुक अंक को खुजलाना बड़े विश्वास की बात है। इसमें कला-बोध, भाव-बोध और परंपरा-बोध एक साथ संगमित हैं। भारत में सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राह्मण (5/1) में कला को पारिभाषित करने का यत्न हुआ है। यहाँ किसी कृति को कला की संज्ञा प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक माना गया है कि वह विशेष प्रकार से तैयार की गई हो तथा छंदयुक्त हो। यहाँ छंद से तात्पर्य लयात्मक और उसके संसर्जन के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले उपादानों में प्राप्त होने वाले संतुलन से है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं, उपनिषदों के अनेक श्लोकों, ब्राह्मण ग्रंथों एवं आरण्यकों में ऐसे अनेक दृष्टांत उपलब्ध हैं।

'ध्वन्यालोक लोचन' में अभिनवगुप्त ने स्पष्ट कहा है कि कला एक प्रकार का आनंद उत्पन्न करती है, जो अलौकिक है। मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' में कहा कि कला आह्लादमयी अनुभव है और इसी में इसे परानिवृत्ति के अनुभव के रूप में व्याख्यायित किया गया है। इन सबका भाव यही है कि कलानुभव ही परम आह्लाद का अनुभव है।

इस प्रकार के और भी संदर्भ, अनुभव, दृष्टि और सोच हमें अश्वघोष के 'बुद्धचरितम्', भास के 'स्वप्नवासवदत्ता', शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' और हाल की 'गाथासप्तशती' में प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों से जो अनुभूति होती है, वह कलानुभूति "होने" की अनुभूति है, जानने की नहीं। इसी प्रकार गहरे कलानुभवों के अनेकानेक संदर्भ हमें--- विष्णुधर्मोत्तर पुराण, यशोधर के 'जयमंगलतिलक' वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में चित्रकला से संबंधित अध्याय, 'शिल्परत्नम्' के 'चित्रलक्षणम्' नामक अध्याय, 'नारदशिल्पशास्त्र', 'अभिलषितार्थ चिंतामणि', 'अग्निपुराण' जैसे ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। कौपतीक उपनिषद् में कहा गया है--- 'मानसिप्रतिरूपा चाक्षुषि' अर्थात् जो दृश्य वास्तविक है, वह मात्र मानस का प्रतिबिंब है। बुद्ध कहते हैं- "चित्तं चित्तेनेव चित्तिनम्" अर्थात् किसी भी चित्त

का बोध मस्तिष्क में ही होता है। वास्तविकता तो यह है कि देखने का सही कार्य तो मस्तिष्क ही करता है, बाह्य नेत्र तो यंत्र भर हैं।

इस प्रकार से "कलासमाधि दशा का नाम है।" कारण कि एक ऐसी स्थिति आती ही है जिसमें कलावस्तु और कलाकार संपृक्त हो जाते हैं। अभिलषितार्थ चिंतामणि में कहा गया है--- 'चितयेत् प्रमाणम् तद् इष्टम् चित्तम् निवशयेत्। --- अर्थात् पहले अनुपातों में विचार करो, फिर उसका कल्पना-चित्र तैयार करो। इसी प्रकार की बात शुक्रनीतिशास्त्र में की गई है। --- ध्यात्वा कुर्यात् अर्थात् काम तब करो जब दृष्टि मिल जाए। कुल मिलाकर ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन परंपराओं में कल्पना चित्र की प्रक्रिया एक जैसी ही है। कला कौशल सापेक्ष्य होता है और यह कौशल ही योग है। गीता का वाक्य है- योग: कर्मसु कौशलम् - अर्थात् कर्म में योग ही कौशल है। इससे इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। इस कौशल की संसिद्धि का कारण यह भी है कि कला पारंपरिक एवं वंशानुगत होती है। इसीलिए हमारे यहाँ कला के घराने पाए जाते हैं। इन घरानों का उद्देश्य कला को किसी न किसी प्रकार से जीवित रखना होता है, चाहे उसके लिए कितना ही त्याग क्यों न करना पड़े। ऐसी साधनाजन्य कला ही मनोभावों को व्यक्त करने वाली और गहनानुभूतियों से संपृक्त होती हैं। यही कारण है कि लगभग सभी भारतीय कलाओं में लयात्मकता और रैखिकता पाई जाती है। विष्णुधर्मोत्तर में तो यहाँ तक कहा गया है कि "प्रतिमाओं को जीवन से परिपूर्ण दिखना चाहिए, जिससे लगे कि वे सांस ले रही हैं।" इस प्रकार की कलाकृतियों में प्रकृति और जीवन के नियमों का यथावत् सामंजस्य पाया जाता है। चार पुरुषार्थों में से कला का संबंध 'काम' से है। कारण यह कि बिना इसके कलादृष्टि का उदित होना असंभव है। 'कला' वस्तुत: मानसिक, सौंदर्यात्मक और जनात्मक क्षमता की वह संसृष्टि है, जिसके एक 'आकारित' रूप में ही अनेक भाव-छवियाँ दिखा सकने का गुण निहित हो। उसे उसका प्रत्येक द्रष्टा अपनी कला-दृष्टि से देखता हुआ, उसे अपने-अपने संदर्भों से जोड़ लेता है। अर्थात् उसमें उसे अपना ही संदर्भ दिखाई पड़ता है। इसी को कला का बोलना कहा जाता है। सही अर्थों में कला पूरी मनस् सृष्टि की एक समग्र अनुभूति है। एम. हिरियन्ना ने लिखा है कि आदर्शवादी वेदांत के अनुसार अपनी वैयक्तिकता

को अस्थायी रूप से ही सही, भुला देना ही कला-प्रवृत्ति की विशेषता है, जबकि यथार्थवादी सांख्यदर्शन के अनुसार, यह प्रकृति जगत से पलायन के कारण है। वेदांत के अनुसार जहाँ कला यथार्थ के लिए मार्ग तैयार करने का काम करती है, वही सांख्य इसे यथार्थ से विचलन मानता है। एक प्रकृति में श्रेष्ठता उद्घाटित करता है और दूसरा प्रकृति से बेहतर किसी चीज को गढ़ रहा है (आर्ट एक्सपीरियंस 1954 पृ. 15-16) शतपथ ब्राह्मण (III - 2, 15) और तैत्तिरीयब्राह्मण (II - 7, 15) में कहा गया है-- चित्तेनव: चिंतितंति चित्ताकारेण चिंतित्वा कत्तता चितेन चिंतितम नाम: (तात्पर्य यह कि जितनी भी कलाकृतियाँ हैं, सभी दिमाग की उपज हैं। शिल्प (कला) की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में ऐतरेय में आया है-- "आत्मानं संस्कुरूते" अर्थात् आत्मोत्कर्ष के लिए कला साधन है। यह आत्म-उत्कर्ष ही संस्कार है। इस प्रकार से कला हमारा संस्कार करती है अथवा कला से हम संस्कारित होते हैं। ब्राह्मण काल में संस्कार का अर्थ था जीवन भूमि की जुताई-गोड़ाई, जिससे कि जीवन समुन्नत बने।

इस प्रकार से कला एक प्रकार से मनुष्य की रचनात्मक इच्छा है। विविध क्षेत्रों में इसके विविध नाम- रूप हैं, जैसे संगीत में लयात्मक स्वर, मूर्ति-चित्र और वास्तु में रेखा, रंग, प्रकाश, छाया और नृत्य तथा नाटक में भाव-भंगिमाओं का नियोजन किया जाता है। कला अपने तत्कालीन स्तर पर धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करने की कोशिश करती है। इन सब में महत्वपूर्ण है– मोक्ष अर्थात् बौद्धिक तथा आध्यात्मिक मुक्ति। भारतीय कला चिरंतनता की पक्षधर है। वह खंड में नहीं, अखंड में विश्वास करती है। इसमें एक सहज स्थिरता, योगियों जैसी प्रशांति और निवृत्ति भी दृष्टिगत होती है। इसकी यही दृष्टि चिरंतन की संज्ञा से अभिहित की जाती रही है। इस रूप में कला हमारे समाज की एक नैतिक जीवनचर्या बन जाती है। हमारी कला-प्रक्रिया में नैतिकता एक स्थायी मानदंड है। इसलिए कलात्मक गतिविधियों को नैतिक गतिविधि माना गया है। भारतीय चिंतन में श्रेष्ठ और महान की और सौंदर्य की धारणाएँ एक-दूसरे की पर्याय रही हैं। कारण कि जो श्रेष्ठ होगा, वह सुंदर तो होगा ही। यही कारण है कि कला में यह सामर्थ्य होती है कि वह मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने में बहुत

सार्थक भूमिका का निर्वाह करती है। इस संदर्भ में श्रीकृष्णादास का कथन बहुत महत्वपूर्ण है– "मैं यह कहना चाहूँगा कि कला में नैतिकता का आग्रह कुछ ऐसा ही है, जैसे दिन में रोशनी का आग्रह हो या यों ही कहा जाए कि सूर्य में किरण का आग्रह। जो वस्तु अनैतिक है, वह कलापूर्ण कैसे होगी, यह मेरी समझ के बाहर है (अभिज्ञान पृ. 43)। और वे आगे लिखते हैं-- "हम मंगल के लिए संघर्ष करते हैं, मंगल के पूर्व विजय के लिए संघर्ष करते हैं, उसी संघर्ष में साथ देने वाले तथा प्रेरणा देने वाले साहित्य मंगलपूर्ण होंगे।" (वही पृ. 44) मार्क्सवादी समीक्षक नामवर सिंह ने भी लिखा है-- "कलाकार को अनैतिक होने का कोई अधिकार नहीं हैं। दंड देने का अधिकार उसी को है, जिसमें दंड देते समय करुणा का अंश झलक जाए। बच्चे को दंड माता दे सकती है। आपकी अपनी आत्मा स्वयं बता देगी, इसीलिए पहले आप देखें कि जो लिख रहे हैं वह कोई कुरुचिपूर्ण विषय तो नहीं है (पृ. 47)।

कला और धर्म का हमारी परंपरा में प्रकाश्य-प्रकाशक संबंध है। समस्त प्रदर्शनकारी कलाओं के माध्यम से धर्म के अनेक गूढ़तम रहस्य आकारित होते हैं। कला एक सामाजिक आचरण बनकर धर्म द्वारा भी अभिव्यक्ति होती है। स्पष्ट है कि धर्म के प्रचार में कला की अहं भूमिका होती है। मनुष्य के जीवन से जुड़े सारे संदर्भ चाहे भोजन हो, वस्त्र अथवा आवास, सभी में कला अंत:सलिला सरस्वती की भाँति प्रवाहमान है। इसीलिए हमारे यहाँ कलानुभूति अथवा सौंदर्यानुभूति तथा ब्रह्मानुभूति अथवा धर्मानुभूति को जुड़वा भाई के रूप में माना गया है। भट्टनायक ने कलाकार की तुलना योगी से करते हुए कहा है कि अंतत: दोनों उस स्थिति को प्राप्त करते हैं जहाँ न दुख होता है, न इच्छा, न अशांति, न उद्विग्नता। गुणात्मक दृष्टि से दोनों की अनुभूति सात्विक अर्थात् सहज शांत और वैचारिक है। इन्हीं अवधारणाओं की अभिव्यक्ति कालांतर में आचार्य विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' में हुई। रसानुभूति के संदर्भ में उनका कथन है-- "रसास्वादन गुणसंपन्न व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इसका आस्वादन सत्व की निष्पत्ति द्वारा होता है। यह पूर्ण विवेक, मोक्ष और आत्मलोक है। किसी ज्ञातव्य वस्तु से इसका कोई संबंध नहीं होता। ब्रह्मानुभूति का जुड़वा भाई, यह असाधारण, अचमत्कार द्वारा प्रदीप्त होता है। इसका आस्वादन ऐसे किया

जाता है जैसे कि यह हमारे व्यक्तित्व का अविभाज्य हो। अत: आश्चर्य नहीं कि रसानुभूति को धार्मिक अनुभूति के समान समझा गया। यहाँ तक कि दोनों तरह की अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए एक ही तरह की शब्दावली और भाषा का उपयोग किया जाता है। इस संदर्भ में विचारणीय यह है कि कला धर्म नहीं है, और न ही धर्म कला। प्रकृतित: दोनों में अंतर है। जहाँ धार्मिक अनुभूति स्थायी होती है, वहीं रसानुभूति अस्थायी होती है। अभिनवगुप्त का मत है कि "धार्मिक अनुभूति व्यक्ति को जीवन से परे ले जाती है। परमात्मा से एकाकारता की उत्कृष्ट इच्छा करने वाला प्राणी स्वयं को उन सब चीजों से दूर हटाता जाता है जिन्हें वह समझता है कि उसे नाम और रूप की दुनिया में दैनिक जीवन की व्यावहारिक चीजों के साथ बाँधते हैं। अत: धार्मिक गतिविधि जिस लक्ष्य-पूर्ति के लिए कर्म करती है, वह इन सबसे परे होता है। परंतु कलात्मक गतिविधि अनिवार्यत: दैनिक मानव जीवन की, नाम रूप की दुनिया से संबंधित होती है। और कलात्मक अनुभूति इसी से उत्पन्न होती है। कलात्मक अनुभूति आत्मनिर्भर होती है। इसके अतिरिक्त वह धार्मिक और आध्यात्मिक आह्लादपूर्ण अचेतावस्था में पहुँचा देती है, जैसा कि सौंदर्य-अनुभूति में नहीं हो पाता, कम से कम पूर्ण रूप से तो नहीं। वस्तुत: कलाकार और पाठक/श्रोता/दर्शक सौंदर्य की परमानुभूति के समय भी जीवन को पूरी तरह से भूल नहीं पाते, बल्कि वे हर क्षण उसके प्रति सचेत रहते हैं। सौंदर्यानुभूति जीव को नाम और रूप की दुनिया में शुद्ध आनंद (रस) की अवस्था में पहुँचा देती है। धार्मिक और आध्यात्मिक अनुभूति प्राणी को पूर्ण मोक्ष या निर्वाण की दुनिया में नाम और रूप के समस्त बंधनों से दूर ले जाती है। कुल मिलाकर प्रभाव एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत होता है।

कला और संस्कृति में भी अटूट संबंध है। कला के माध्यम से जहाँ संस्कृति की विराटता, उसकी अक्षुण्ण परंपरा और विविध भूमियाँ अभिव्यंजित होती हैं, वहीं संस्कृति हमारी कला दृष्टि को विषयगत एवं समृद्धि प्रदान करती है। वैदिक साहित्य में संस्कृति के लिए अथर्ववेद में 'कृषि' शब्द का प्रयोग हुआ है। कृष् धातु से व्युत्पन्न इस शब्द का अर्थ है-- जोतना। इस रूप में कृषि का अर्थ हुआ जोतने का कार्य, फल अथवा परिणाम। ऐतरेय ब्राह्मण में इसका अर्थ

271 CHD / 2018—3A

है-- 'स्व' की उन्नति। इसका तात्पर्य हुआ- अपनी जीवन-भूमि को जोतना या संस्कृत करना, जबकि कृषि का सीधा अर्थ है खेतों को जोतना और फसल उपजाना। अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' तथा जर्मन शब्द 'कुल्टर' लेटिन के 'कल्ट' से ही व्युत्पन्न है। 'कल्ट' शब्द का अर्थ है– खेती करना। स्पष्ट है कि वह कृषि के ही अर्थ में है। कालांतर में यह अपने व्यापक सामाजिक अर्थ में विस्तार पाकर जीवन-भूमि को जोतने का अर्थ देने लगा। इस रूप में 'कृषि' तथा 'कल्चर' दोनों ही शब्द भारत–यूरोपीय जीवन, भाषा तथा विचार की एक जैसी पद्धति से व्युत्पन्न हैं। एग्रीकल्चर, सेरीकल्चर, फिसीकल्चर, ब्लडकल्चर आदि शब्दों में यही कल्चर 'पद' ही है। इसका तात्पर्य हुआ किसी एक बीज या कोशिका से अगणित बीज तथा कोशिका का उत्पादन करना। यही उद्देश्य खेती करने का भी है। जैसा कि मूलार्थ है-- "चीयते बाहि रास्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषि:"। मध्यकालीन ईसाई विज्ञान संस्कृति को इसी अर्थ में समझते थे और पारंपरिक प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत के लोग भी इसी अर्थ में इसे लेते थे। हमारे मध्यकालीन संत, हमारे संत कवि तथा कथावाचक संत मध्यकालीन सदियों के दौरान जीवन-भूमि को जोतने की आवश्यकता पर लगातार जोर देते रहे ताकि जीवन की प्रवृत्तिमूलक गुणवत्ता तथा अर्थ को सुधारा जा सके। अठारहवीं सदी के मध्य बंगाल के संत कवि रामप्रसाद अपने एक पद में गाते रहे थे-- "अरे आदमी के मन, तू मानव-जीवन भूमि को जोतना नहीं जानता। तूने इस अनमोल जमीन को ऐसे परती छोड़ दिया है। यदि तूने इसे जोता होता तो बदले में सोने की पकी हुई फसल काटने को मिलती।" यहाँ पर खेती करने के लिए संस्कृत शब्द 'कृषिकाज' या 'कृषि कर्म' का प्रयोग किया जाता है और पारसी में इसके लिए शब्द है 'आबाद'। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है कि यह मानव के संदर्भ में 'कल्चर' तथा 'कृषि' का ही विस्तृत अर्थ देता है।

(कला के आयाम पृ. 161) ऐतरेय का ऋषि कहता है-- आत्मानं संस्कुरूते। तात्पर्य- आत्मसंस्करण के लिए अपने को शिल्प या कला के साथ सन्नद्ध करना। इसी भावभूमि पर कला अपने आप को सुसंस्कृत करने का साधन है। अर्थात् कला एक प्रकार का संस्कार है। यह संस्कार ही स्व को उच्चस्थिति प्रदान करने का साधन है। इस रूप में कला एक ऐसी मानवीय सृष्टि है जो मनुष्य को ऐसी उच्चभूमि पर पहुँचाती है, जहाँ पहुँचकर वह अपनी

271 CHD / 2018—3B

मानवीय कमजोरियों से ऊपर उठकर केवल समत्व का पोषक हो जाता है। अब जहाँ तक कला और संस्कृति के संबंध की बात है, उस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति जीवन का विस्तार है और कला उसकी ज्ञापिका क्रिया है। इस प्रकार संस्कृति और कला का प्रकाश्य-प्रकाशक संबंध है। काल के अनंत प्रवाह में संस्कृति वह चैतन्य प्रस्थान है जो मानव को अपनी पूरी जातीय परंपरा पर गौरव करने का अवसर प्रदान करती है। यहीं पर कला उस प्रवाह की ज्ञापिता अथवा जीवनदायी छवि का नाम है, जो नाना रूपों अथवा छवियों में हमारे सामने आती है। इस प्रकार कला जहाँ किसी कलाकार के लिए अपनी जीवन भूमि को सुसंस्कृत करने का एक सक्षम साधन है, वहीं वह उसकी जीवन भूमि को भी संस्कृत करती है जो कलाकार द्वारा निर्मित कृति पर सहानुभूतिपूर्वक रचनात्मक दृष्टि से जानते हुए अपने भीतर एक प्रतिक्रिया अनुभव करने की स्थिति में होता है। यही नहीं, कला मानवीय अनुभूतियों तथा भावनाओं, इंद्रियों और संवेदनाओं को अनुशासित तथा संस्कृत करने का एक बहुत प्रभावकारी माध्यम है और इस प्रकार कला चरित्र तथा व्यक्तित्व को परिशुद्ध करने में भी विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करती है।

समग्रता में भारतीय हिंदू या मुस्लिम या ईसाई-मानस तथा चेतन में कोई ऐसा भेद नहीं है, जो आपस में किसी प्रकार का भेदभाव बनाने का काम कर सके। जब मैं पीछे दृष्टि घुमाकर कला और साहित्य के पारंपरिक भारतीय संधि-योजनों पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे लगता है कि इस पूरे रूपक के साथ-साथ इन उच्च महान परंपराओं ने जब भी और जहाँ से भी जरूरी समझा, वहाँ से अपने स्रोतों का निर्माण किया।

इस पूरे विवेचन से छनकर कला का जो रूप आता है, वह इस प्रकार है–

(1) कला मनुष्य की रचनात्मक इच्छा है।

(2) कला आह्लादमयी अनुभव है। इसका अनुभव ही परम आह्लाद है। यह परम आह्लाद ही आनंद है।

(3) कला एक प्रकार का आनंद उत्पन्न करती है। यह आनंद अलौकिक है।

(4) कला अपनी आत्मा को संस्कृत करने का साधन है। वह एक क्रिया है। इस क्रिया के तीन सोपान हैं। पहले सोपान में यह स्वयं के लिए मन तथा इंद्रियों के लिए आनंददायी बनती है। इससे व्यक्ति आकर्षित होता है। दूसरे सोपान में आनंदानुभूति कराती है। यह आनंद की अनुभूति ही ब्रह्मानंद की अनुभूति है। तीसरे सोपान में यह कलाकार को उसके दर्शक, श्रोता या पाठक से जोड़ती है और दूसरी ओर उसे ईश्वरीय क्रम से। इस प्रकार से यह एक ईश्वरीय कार्य है।

(5) कला में रस या अनुभूति की विषयवस्तु की प्रधानता होती है। यही किसी कलाकृति को रचनात्मक स्तर पर महत्वपूर्ण बनाती है।

इन संदर्भों के अतिरिक्त कला-दर्शन की तमाम ऐसी छवियाँ हैं जो अभी अनिर्दिष्ट पड़ी हुई हैं, जिनकी सूक्ष्म भाव-संपदा की समग्रानुभूति कर पाना बहुत बडी साधना का कार्य है।

– विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
जबलपुर (म. प्र.)

❑❑❑

निर्वचन और अनुवाद का अंतर्संबंध

डॉ. हीरालाल बाछोतिया

भाषाओं के बीच संप्रेषण का सफल माध्यम है अनुवाद, जो एक सृजनात्मक प्रक्रिया है। अनुवाद का शाब्दिक अर्थ है – किसी के बाद कहना, किसी कथन के बाद अनुवर्ती कथन, पुनः कथन या पुनरुक्ति। पूर्व में व्याख्या रूप में पुनः कथन या पुनर्कथन की प्रक्रिया थी। यह वही अनुवाद था जो प्रायः उसी भाषा में किया जाता था। किंतु आज उन विचारों को भिन्न भाषा में कहना या रूपांतरित करना अनुवाद है। अर्थात् एक भाषा में कही गई बात को या बातों को दूसरी भाषा में कहना ही अनुवाद है।

नायडा के अनुसार स्रोत भाषा में कही गई बात को लक्ष्य भाषा में उसके सहज और निकटतम समानार्थी शब्द द्वारा व्यक्त करना अनुवाद है और यह समानता अर्थ तथा शैली दोनों की होनी चाहिए। यद्यपि प्रथम स्थान अर्थ का है। डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव अनुवाद को भाषांतर कहते हैं। उन्होंने भाषांतर को प्रतीकांतर का भेद माना है। उनके अनुसार एक प्रतीक (या प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त विचार (या विचारों) को दूसरे प्रतीक (या प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त करना प्रतीकांतर है। आशय यह है कि अनुवाद में एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के प्रतीक व्यवहृत होते हैं।

जब दो भिन्न भाषा-भाषी परस्पर बातचीत के लिए प्रस्तुत हों और उन्हें एक दूसरे की भाषा की जानकारी न हो, तो ऐसी स्थिति में आशु-अनुवाद या निर्वचन की आवश्यकता पड़ती है। आशु-अनुवाद को प्रायः इंटरप्रेटेशन कहा जाता है। आशु-अनुवाद या निर्वचन का अर्थ भी इंटरप्रेटेशन से ही है। इस प्रकार

एक भाषा के कथन को दूसरी भाषा में लिखित रूप से प्रस्तुत करने को अनुवाद कहा जाता है, जबकि किसी भाषा के कथन को दूसरी भाषा में तत्काल मौखिक रूप से प्रस्तुत करने को आशु-अनुवाद या निर्वचन कहा जाता है।

इसमें एक भाषा में कही गई बात का तत्काल या पूरे वक्तव्य के तुरंत बाद दूसरी भाषा में पुर्नप्रस्तुतिकरण किया जाता है। आशु-अनुवादक को दुभाषिया और अंग्रेजी में 'इंटरप्रेटर' कहा जाता है। लेकिन हिंदी में 'इंटरप्रेटर' का अर्थ टीका, व्याख्या, निर्वचन है। अत: इसे आशु-अनुवाद कहना ही तर्कसंगत है। निर्वचन या आशु-अनुवाद सामान्य अनुवाद की ही एक विशिष्ट मौखिक प्रक्रिया है, जो सामान्य अनुवाद से थोड़ी भिन्न है। आशु-अनुवाद से यह अपेक्षा होती है कि वह भाषा शैली एवं संप्रेषणीयता की दृष्टि से बोधगम्य हो। वह श्रोता या श्रोतावर्ग को सहज ही समझ में आ सके। इसके लिए आशु-अनुवाद या दुभाषिये को क्षेत्र विशेष में प्रचलित शब्दावली का भी ज्ञान होना चाहिए ताकि उसका अनुवाद सफल हो सके। इसके साथ ही आशु-अनुवादक को वक्ता के बोलने की शैली, उच्चारण संबंधी गुण-दोषों की जानकारी भी होनी चाहिए, ताकि आंचलिक प्रभाव को भी अनुवादक समझ सके।

अनुवाद मूल भाषा के लक्ष्य भाषा में वाक्य-प्रति-वाक्य, उपवाक्य-प्रति-उपवाक्य, पदबंध-प्रति-प्रतिबंध, पद-प्रति-पद और प्रत्यय-प्रति- प्रत्यय होता है। अनुवाद में भाषा माध्यम होती है जो दो स्तरों पर होती है– मौखिक (श्रव्य) और लिखित (दृश्य)। मौखिक अनुवाद के अवसर बढ़ते जा रहे हैं। ऐसी गोष्ठियाँ या बैठकें, जिनमें एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग होता है, मौखिक अनुवाद के सहारे ही चलती हैं। मौखिक अनुवाद के भी मुख्य दो रूप हैं– सहकालिक मौखिक अनुवाद और क्रमिक मौखिक अनुवाद।

मौखिक अनुवाद या निर्वचन की मुख्य समस्या है मौलिकता, जिसमें अतिशीघ्रता मुख्य निष्पत्ति है। दुभाषिये के पास 'पूर्ण समयाभाव से भी कम समय' (लैस टाइम दैन नो टाइम एटऑल) होता है। उसे बहुत शीघ्रता में मौखिक पाठ का बोधन कर उसे लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना होता है।

सहकालिक दुभाषिया (Interpreter) व क्रमिक दुभाषिया वास्तव में अनुवाद का ही कार्य अत्यंत तीव्र गति से करते हैं। उदाहरण के लिए सहकालिक दुभाषिया प्राय: वाक्य को अनुवाद की इकाई बनाता है, जबकि क्रमिक दुभाषिया

'अनुच्छेद' को जो काफी लंबा भी हो सकता है। इसके लिए वह संक्षिप्तियाँ, आद्याक्षर शब्द आदि का सहारा लेता है। सहकालिक दुभाषिये की भाषा में उसी पाठ में लिखित अनुवाद की अपेक्षा अधिक शब्दों का प्रयोग हुआ मिलता है। इससे उसकी शैली में शिथिलता भी आ जाती है। मौखिक अनुवाद में प्राय: व्याख्यात्मक, होने की प्रवृत्ति होती है। मूल पाठ को यथावत् सुरक्षित न रख पाने के कारण दुभाषिये कुछ अंशों की व्याख्या (इंटरप्रिटेशन) कर देते हैं। दुभाषिए (इंटरप्रेटर) एक से अधिक मूल भाषाओं से अनुवाद करते हैं किंतु उनकी लक्ष्य भाषा प्राय: एक रहती है।

मौखिक अनुवाद की विशिष्ट स्थिति 'फिल्म डबिंग' भी है। डब करना अब एक सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकता बन गई है। इसमें मौखिक अभिव्यक्तियों और ओष्ठ संचालन में सामंजस्य बैठाना एक बड़ी चुनौती है। फिल्मों के संदर्भ में सहकालिक मौखिक अनुवाद की एक और स्थिति 'सब-टाइटलिंग' है। विदेशी फिल्मों की डबिंग न होने पर 'सब-टाइटलिंग' की व्यवस्था होती है। इसमें स्थान की समस्या सामने आती है। फिल्म के प्रति फुट पर एक सीमित संख्या में ही वर्णों का प्रयोग करना होता है। दृश्य बदलते ही पट्टी भी बदलती है। अत: सीमित वर्णों का प्रयोग कर संवाद का आशय लिखना भी एक चुनौती होती है।

अनुवाद का संबंध हमेशा दो भाषाओं-स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा से होता है। अनुवाद मूल रचना की प्रतिकृति होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मूल रचना का समस्त सौंदर्य, शोभा, वैभव, उद्वेग, रस, शैली, शब्द-विन्यास अनुवाद में भी प्रतिबिंबित होना चाहिए। कुछ संदर्भों में अनूदित कृति मूल से भी रमणीय बन जाती है। इसी में अनुवाद कला की सार्थकता निहित है।

अनुवाद के लिए दो भाषाओं पर पूर्ण अधिकार की आवश्यकता होती है। किंतु आज अनेक अनुवादकों का एक भाषा पर भी अधिकार नहीं होता। शब्दकोष एक सीमा तक ही सहायक होते हैं क्योंकि कोश में शब्दों के अनेक पर्यायवाची दिए होते हैं। आशय यह कि कोशों का सही प्रयोग करने के लिए दोनों भाषाओं पर अधिकार होना आवश्यक है।

अच्छे अनुवादक और अच्छे दुभाषिये दोनों से कतिपय प्रमुख अपेक्षाएँ इस प्रकार हैं–

(1) स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा पर पर्याप्त अधिकार।

(2) मूल लेखक से तादात्म्य।

(3) विषय का सम्यक् ज्ञान।

1. प्रत्येक भाषा की शैली तथा सांस्कृतिक परिवेश की सटीक अवधारणा अनुवादक के लिए अपेक्षित है। इस दृष्टि से अनुवादक की द्विभाषिक क्षमता एक कसौटी है। वैज्ञानिक अनुवाद में अनुवादक को वैज्ञानिक ज्ञान अवश्य होना चाहिए। साहित्यिक अनुवाद में भी अनुवादकों को मूल पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सांस्कृतिक आदि संदर्भों से परिचित होना चाहिए। साथ ही मूल कृति के शिल्प विधान, संरचना तथा तकनीक के विषय में सहज आलोचनात्मक दृष्टि अपेक्षित है। अनुवादक मूल भाषा को जानता ही न हो बल्कि उसके सभी आयामों से पूर्ण परिचित भी हो। निर्वचन में भी दुभाषिये के लिए इन बातों की अच्छी जानकारी अपेक्षित है।

2. अनुवाद की सफलता इसी में है कि मूल लेखक के प्रति श्रद्धा का भाव रखे। अनुवादक को मूल व्यक्तित्व में पहले अपने को आत्मसात् कर देना होता है तभी वह मौलिक रचना को आत्मसात् कर सकेगा और सही अनुवाद कर सकेगा। इससे उसमें सशक्ता और नवीनता आएगी जैसी मूल रचना पढ़ने पर हुई होगी।

निर्वचन में तो यह और भी आवश्यक है। दुभाषिये को निर्वचन के लिए मूल वक्ता को पूरी तरह जानना परमावश्यक है तभी वह कही गई बात में वही प्रभाव पैदा कर सकेगा जो मूल वक्ता प्रेषित करना चाहता है।

3. विषय का ज्ञान एक सीमा तक पर्याप्त होगा, परंतु अंत:दर्शन और संभावना बहुत आवश्यक है। इससे अनुवादक सहृदय पाठक तथा स्रष्टा दोनों हो सकेगें। यह बात निर्वचन के संदर्भ में दुभाषिये पर भी लागू होती है।

इस प्रकार अनुवादक की जो नई संरचना उभर रही है, वह प्रारंभिक शाब्दिक अनुवाद से भिन्नता लिए हुए है। आज अनुवाद का स्वरूप बदल गया है। मशीनी अनुवाद की भी महत्ता दिन-व-दिन बढ़ती जा रही है। वह आसान भी हो गया है परंतु दिए आदेश को ही निर्धारित शब्द समूहों में ही अनुदित करना इसकी सीमा है। अपनी मातृभाषा में परिणाम प्राप्त करने के लिए इस पर अभी

बहुत काम किया जाना अपेक्षित है। यद्यपि यह भी सच है कि कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी ने अनुवाद का कायाकल्प ही कर दिया है।

अनुवाद के द्वारा भाषा विकास में सदियों पहले आदमी ने जो माध्यम अपनाए थे वे आज पूरी तरह बदल चुके हैं। भाषा के अनुवाद का प्रयोजन सीमाओं तथा नस्लों के भेद से ऊपर पहुँच गया है। अनुवाद विधा बेहद महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली माध्यम है क्योंकि वह विज्ञापन-बाजार के समूचे विश्व की संप्रेषण व्यवस्था का केंद्रीयकरण करती है। आज अनुवाद बाजार की अनिवार्यता का ऐसा अंग बन गया है जो भाषायी आदान-प्रदान के अंतर्गत अपना विशेष स्थान रखता है।

अनुवाद और निर्वचन के अंतर्संबंधों पर चर्चा के अंतर्गत यह मानना कि दोनों एक हैं, भ्रमात्मक ही होगा। दोनों में प्रक्रियागत सूक्ष्म भेद देखे जा सकते हैं। लिखित अनुवाद दो भाषाओं के संरचनागत आधारभूत ढाँचे की अवधारणा स्पष्ट करता है। जबकि आशु-अनुवादक या दुभाषिये के लिए व्यावहारिक जानकारी भी पर्याप्त हो सकती है। आपसी बातचीत का आशु-अनुवाद तो भाषा की मौखिक जानकारी से संभव है किंतु गंभीर विषयों के अनुवाद के लिए भाषा विज्ञान तथा भाषा की संरचना की जानकारी अपेक्षित है। स्रोतभाषा से लक्ष्य भाषा तक अभिव्यक्ति के स्तर पर अनुवाद की प्रक्रिया क्रमशः पठित मानसिक-लिखित होती है जबकि आशु-अनुवाद की प्रक्रिया श्रुत-मानसिक-मौखिक होती है। लिखित अनुवादक के पास अनुवाद कार्य के लिए पर्याप्त समय होता है। उसके पास शब्दकोशों के अलावा किसी जानकार से परामर्श करने का समय भी होता है जबकि दुभाषिए के पास समय का नितांत अभाव होता है। अनुवादक मूल पाठ के अनुरूप अनुवाद की पूर्ण चेष्ठा करता है जबकि दुभाषिया मूल पाठ में प्रयुक्त शब्दों से अधिक में निर्वचन प्रस्तुत करता है और अधिक शब्दों का प्रयोग तो उसके लिए जैसे विवशता ही है। अनुवादक के पास पर्याप्त समय की सुविधा का एक परिणाम उसकी शैली में कसावट के रूप में देखा जा सकता है जबकि समय की कमी का परिणाम शैली में शिथिलता के रूप में दिखाई देता है। अनुवादक प्रायः मूल भाषा से एक ही लक्ष्य भाषा में अनुवाद करने में प्रवीणता रखता है जबकि दुभाषिया एक से अधिक मूल भाषा से अनुवाद या निर्वचन

करने में दक्षता रखते है। हाँ, यह अवश्य है कि उसकी लक्ष्य भाषा एक ही होती है। इन सूक्ष्म भेदों के अतिरिक्त अनुवाद और निर्वचन में आंतरिकता ही अत्यधिक है।

संदर्भ :

1. अनुवाद का सामयिक परिदृश्य - प्रो. दिलीप सिंह, प्रो. ऋषभ देव शर्मा
2. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा - डॉ. सुरेश कुमार
3. अनुवाद की सामाजिक भूमिका - रीतारानी पालीवाल
4. आशु अनुवाद - डॉ. गरिमा श्रीवास्तव
5. आधुनिक मीडिया दृष्टि - डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू

– के. 40 एफ, साकेत, नई दिल्ली-110017

❑❑❑

बंगलादेश के भाषा-आंदोलन पर एक अंतर्दृष्टि

दानबहादुर सिंह

1948 ई. में पूर्वी बंगाल (अब 'बंगलादेश') में हुए भाषा-आंदोलन से इतिहास में कई परिवर्तन देखने को मिले। स्वाधीन पाकिस्तान की सृष्टि के पीछे जो भी कारण रहा हो, किंतु इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि वह एक नितांत चेतनाहीन कार्य था। दो भिन्न पृथक् भूमि के समुदायों का जिनका न कोई भौगोलिक सामीप्य था और न ही किसी प्रकार की जातीय एकता, ऐसी दशा में एकीकरण कदापि संभव नहीं था। टैगोर बंगलादेश के लोगों के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। किंतु पाकिस्तानी सैनिक-शासकों की दृष्टि में वे अकेले आँखों की किरकिरी थे। पश्चिमी पाकिस्तान के शासकों ने असहमत जनसंख्या पर उर्दू भाषा को बलपूर्वक थोपने की पूरी कोशिश की यहीं से देश के विघटन का बीज बोया गया।

सचमुच यह पाकिस्तान के भाग्य की एक नारकीय विडंबना थी कि बंगला भाषा हिंदुओं की भाषा के रूप में उद्घोषित की गई थी जिसको 1940 ई. में चटगाँव की एक पत्रिका में अविश्वसनीय सिद्ध किया गया था और यही पाकिस्तान के विनाश का कारण बनी। किंतु ढाका विश्वविद्यालय के अध्यापकों के साथ स्थापित मुस्लिम साहित्यिक समिति ने बंगला भाषा को और अधिक उदारभाव से प्रस्तुत करने का अथक प्रयास किया। काजी अब्दुल उदूद, काजी एम. हुसैन, अब्दुल हुसैन और अन्य जैसे अनेक मशहूर बुद्धिजीवी स्वतंत्र चिंतकों ने पूर्वी बंगाल के परंपरानिष्ठ मुस्लिम सोसाइटी के मानस-पटल को झकझोर कर रख दिया। प्रदर्शन की एक जबरदस्त कोशिश की गई थी कि

बंगला भाषा का प्रयोग करना हिंदुओं का विशेषाधिकार नहीं था। इस प्रकार यह पूरी कोशिश की गई थी कि बंगाली मुस्लिमों की भाषा 'बंगला भाषा' की पहचान रूप में एक बंगाली राष्ट्रवाद का अभ्युदय हो जाए।

इस पहचान की आवश्यकता उस घड़ी अत्यधिक महसूस की गई जब पाकिस्तान के राष्ट्रपिता जिन्ना ने मार्च 1948 ई. में ढाका विश्वविद्यालय के कर्जन हाल में दीक्षांत समारोह को संबोधित करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा था कि पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू होने जा रही है, कोई अन्य भाषा नहीं। जब उन्होंने पहली बार रमन रेसकोर्स में यह घोषणा की, उस समय किसी प्रकार का विरोध नहीं था। इस आभासी उपलब्धि से प्रोत्साहित होकर उन्होंने अपने दीक्षांत समारोह को संबोधित करते हुए पाकिस्तानी सरकार के इस फैसले को दोहराया। किंतु कालांतर में उनके इस फैसले के चार दिनों बाद ही श्रोताओं के युवा स्नातकों की ओर से एक जबरदस्त विरोध उठ खड़ा हुआ। विरोध जोर पकड़ता गया, हड़तालें शुरू हो गईं, धरने-प्रदर्शन शुरू हो गए और 11 मार्च को न्यायाधीशों की अदालत के सामने ही पुलिस फाइरिंग में एक प्रदर्शनकारी की मृत्यु हो गई। अपने शासकों के इस भेद-भावपूर्ण रवैये से बंगला देश की जनता की भावनाओं का पहला आवेग फूट पड़ा। पूर्वी बंगाल में लगभग सर्वत्र ही उस रोज शांतिपूर्ण हड़ताल की गई। इस जुलूस में जेसोर की युवा छात्राएँ सब से आगे रहीं। जिन्ना की इस घोषणा से बुद्धिजीवी वर्ग और छात्र-समुदाय तिलमिला उठे। हालांकि गवर्नमेंट प्रेस नोट में मुट्ठी भर छात्रों और तोड़-फोड़ करने वालों के बारे में समाचार परिसीमित कर दिया गया था। इस दुखद परिस्थिति में पाकिस्तानी सेना ने धीरेंद्रनाथ दत्ता को गोलियों से भून दिया था जिसके बारे में श्री कालीपाद विश्वास की कथा प्रासंगिक कही जा सकती है। समकालीन निकायों की कार्रवाइयों में धीरेंद्रनाथ दत्ता ने प्रयोग के तौर पर बंगला भाषा के साथ उर्दू की स्वीकृति के लिए 1947 में वकालत की थी, वह पाकिस्तान की असेंबली के एक मतदाता सदस्य थे। इस घटना से एक रोमांचकारी दृश्य उपस्थिति हो गया तथा बंगला भाषा के लिए उर्दू के कट्टरमतानुयायियों की अवमानना को बढ़ा-चढ़ा कर प्रकाशित किया गया। मतदाताओं ने असेंबली हाल को चारों तरफ से घेर लिया। वे उर्दू भाषा की अवमानना करने वालों को मार

देना चाहते थे। लियाकत अली ने स्थिति की गंभीरता को समझते हुए श्री दत्ता को सीधे घर वापसी के लिए एअरपोर्ट भिजवा दिया। ढाका में जहाज से उतरने के बाद श्री दत्ता ने वहाँ पर जनता की भारी भीड़ देखी और मौत का तांडव नृत्य देखा। तथापि मूल सिद्धांतों वाली कमेटी ने उर्दू को पाकिस्तान की राजभाषा स्वीकार किया।

इस स्वीकृति ने देश को जलती आग में झोंक दिया। बंगालियों ने अपने उत्कट असंतोष को समझा और इस परिणाम पर पहुँचे कि पश्चिमी शासकों ने उनके जन्मसिद्ध अधिकार से उन्हें वंचित रखा। असंतोष की आग धरातल के नीचे प्रज्वलित हो रही थी। 1949 ई. में बंगला भाषा को अरबी लिपि में लिखने की एक घिनौनी चाल चली गई। अरबी और फारसी शब्दों के साथ बंगला भाषा की शब्दावली को घाल-मेल करने की कवायद होने लगी। इस प्रकार दोनों के बीच की भौगोलिक दूरी को मिटाने के लिए और दोनों की संस्कृति को मिलाने की एक नाटकीय कोशिश होने लगी। बंगला भाषा को उर्दू के समकक्ष लाने के लिए शब्दावली में आवश्यक सुधार होने लगे। बंगलादेश के एक विद्वान और बुद्धिजीवी जनाब हसन मुरसीद ने शब्दावली में बदलाव का खुल कर विरोध किया। इससे पाकिस्तान के पूर्वी और पश्चिमी भागों में आग भड़क उठी। यहाँ तक कि अखिल पाकिस्तान ऐतिहासिक सम्मेलन के एक प्रवक्ता सुलेमान नकवी को बंगला भाषा की अवमानना करने और उसे हिंदुओं की भाषा कहने के लिए खुल्लम-खुल्ला प्रताड़ित किया गया।

फरवरी 21, 1952 ई. का ऐतिहासिक भाषा-आंदोलन केवल एक लंबे अरसे से दबाए गए असंतोष का एक स्वाभाविक विस्फोट था। पराकाष्ठा को पहुँचे हुए आंदोलन में कुल ग्यारह लोग अपने प्राणों से हाथ धो बैठे। ढाका में कर्फ्यू लगाया गया था और ढाका विश्वविद्यालय के लगभग 1,000 छात्रों को निष्कासन आदेश दिए गए थे जिसके कारण 1500 छात्र और प्रभावित हुए थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पाक सेना के हमले में सर्वाधिक हताहतों की संख्या ढाका विश्वविद्यालय में थी। मिलिट्री शासकों की दृष्टि में ढाका विश्वविद्यालय ही एक मात्र आंदोलन का केंद्र-बिंदु था। फरवरी 1952 में भाषा-आंदोलन के अनेक प्रमुख नेता गवर्नमेंट की प्रतिहिंसा के डर से भूमिगत

हो गए थे। प्रादेशिक असेंबली वाद-विवाद में चीफ मिनिस्टर जनाब नूरुल अमीन को सदस्यों की ओर से एक गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा। भूतपूर्व शासकों की दृष्टि में भाषा-आंदोलन सरकार को उखाड़ फेंकने का एक षड्यंत्र था। सदस्यों ने दावा किया कि भाषा-आंदोलन के मामले में पूर्वी बंगालियों का 99% जनमत बंगला भाषा के लिए मतदान करेगा। मार्च 27 को पाकिस्तान के युवा-लीग ने 'युवा मांग दिवस' के रूप में देखा। पूर्वी बंगाल को पहले दौर में विजय हासिल हुई। राष्ट्रीय असेंबली के बीच बंगाली और गैर-बंगालियों के बीच तीखी नोक-झोंक के बाद एक बंगाली सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति मिल गई।

उक्त आंदोलन ने इतना विराट रूप पकड़ लिया था कि 1952 ई. में ढाका के छात्र, अध्यापक और पत्रकारों ने मिलकर एक स्वर से टैगोर के मशहूर गान को खुली हवा में गुंजित किया:-

"My golden Bengal, I love you/ your sky and air for ever play their flags let in my heart."

1969 में भाषा-आंदोलन ने जन-संग्राम का रूप धारण कर लिया था। अंततोगत्वा टैगोर का उक्त गान बंगलादेश का 'राष्ट्रगान' बना।

1954 के चुनाव में पूर्वी बंगाल में मुस्लिम लीग का रवैया बंगला भाषा के प्रति निकले परिणामों से लगाया जा सकता है। पूर्वी बंगाल के लोग यह महसूस करने लगे थे कि अपनी बंगाली विरासत को जीवंत रखना कितना लाजिमी था। 1956 ई. में ढाका विश्वविद्यालय के कर्जन हाल में मुस्लिम छात्रों ने प्रख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चटर्जी के उपन्यास 'परिणीता' के प्रभावोत्पादक भाषांतर को स्टेज पर अभिनीत किया। बंगाली संस्कृति और अपनी मातृभाषा के प्रति अनुराग ने पूर्वी बंगाल में बंगाली जीवन के हर पल को समेट कर रख दिया। सितंबर 1963 में ढाका में "बंगला भाषा और साहित्य" विषयक एक साप्ताहिक संगोष्ठी आयोजित की गई थी जिसमें लोगों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। वह अपने ढंग का एक अभूतपूर्व कार्यक्रम था। तथापि अयूब खान ही ऐसे शासक थे जिन्होंने एक शिक्षा आयोग स्थापित किया। जिसने अपनी संस्तुति में कहा कि बंगला भाषा और उर्दू दोनों ही भाषाएँ स्टेट भाषाएँ होनी चाहिए और यह इस अनुच्छेद के साथ कि बिजनेस और शिक्षण कार्यों में पाकिस्तान के दो भागों के

बीच संचार-व्यवस्था के लिए बंगला और उर्दू के सम्मिश्रण से धीरे-धीरे अंग्रेजी को हटा देना चाहिए। "पाकिस्तान के लिए संकल्प लिया गया था जिससे अंतत: उर्दू एक प्रभावी भाषा के रूप में मुख्य अवयव होगी।" (श्री मनजीत मित्रा "दि स्टेट्समैन" 9 मई 1971)

अयूब सरकार ने उर्दू और बंगला के विकास को तेज करने के लिए कुछ ठोस कदम उठाए। सरकार और प्राइवेट प्रायोजकों ने सृजनात्मक लेखन कार्यों के लिए पुरस्कारों की घोषणा की। परंतु ऐसा पाया गया कि "बुनियादी लोकतांत्रिक साहित्य" तैयार करके उर्दू साहित्य के प्रति उत्कृष्ट देशप्रेमी ढूँढ़ना एक श्रम-साध्य कार्य था। उर्दू के प्रति अगाध ज्ञान और भाषा के प्रति वास्तविक श्रद्धा होनी चाहिए। यहाँ तक कि अध्ययन और अनुसंधान के इस पवित्र कार्य में ढाका की बंगला अकादमी के भीतर बंगाली संस्कृति की मुख्य धारा के बंगाली मुसलमानों के स्वतंत्र त्याग की नीतियों को सरकार में निर्धारित मानदंड से नीचे गिरा दिया गया। यद्यपि उसके पास अन्य अनेक प्रकार के कार्यकलाप के अलावा अपना स्वतंत्र अनुसंधान कार्य और प्राचीन एम.एस.एस. था। इसके अतिरिक्त उसके पास पर्याप्त मात्रा में लोकसाहित्य के संरक्षण, प्रकाशन कार्य और अनुवाद कार्यों के लिए पृथक्-पृथक् विंग थे। अकादमी के पास बंगाली मुसलमान लेखकों और कवियों के लेखन-कार्य संबंधी अनुसंधान कार्य और संरक्षण संबंधी कार्य भी था।

तथापि कालांतर में अकादमी ने बंगाली हिंदू कवि जीवनदास पर अनुसंधान कार्य के लिए छात्रवृत्ति की घोषणा की। किंतु इसके बावजूद अकादमी ने अपने नाना अनुसंधान कार्यों में महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर का कहीं उल्लेख नहीं किया। तथापि सांत्वना की बात तो यह है कि यह बंगला भाषा और साहित्य के विकास कार्यों के लिए एक मात्र सरकारी स्थान कहा जा सकता है। किंतु इस बात की आशा की जा सकती है कि भविष्य में अकादमी बंगला भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए कार्य अवश्य करेगी।

बहरहाल टैगोर बंगाल के आधुनिक साहित्य-संस्कृति के प्रतीक थे जिन्होंने पूर्वी बंगाल में उत्तरोत्तर शासन-पद्धति से अतिशय संकट उठाया। पश्चिमी पाकिस्तान के शासक और उनके सहकर्मी साथ ही साथ पूर्वी बंगाल के मुस्लिम संसर्गी आदि ने मिलकर टैगोर की रचनाओं से हिंदुत्व तत्व रिसने

की बात कही और भरपूर कोशिश भी की। इसीलिए बंगाली-संस्कृति को छिन्न-भिन्न करने की पूरी कोशिश की गई। 1965 ई. में भारत-पाकिस्तान के युद्ध के दौरान यह भी अथक प्रयास किया गया था कि विश्व-कवि के प्रकाश-पुंज को हर प्रकार से धूमिल किया जाए। काजी नजरुल इस्लाम की रचनाओं को टैगोर की तुलना में बढ़-चढ़ कर दिखाया गया। नजरुल ने जान-बूझ कर अपनी रचनाओं में उर्दू-फारसी और अरबी शब्दावली को अपनाया और टैगोर ने उसकी भर्त्सना की। टेलीविजन और रेडियो से प्रसारित होने वाले टैगोर के कार्यक्रमों पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

किंतु अभी तक कोई भी मिलिट्री शासन-पद्धति बंगला देश के बंगालियों के मानस-पाटल से टैगोर की लोकप्रियता को मिटा न सकी। बंगला देश को भली-भाँति पता है कि पश्चिमी पाकिस्तान के शासक टैगोर की अहमियत को कभी पसंद नहीं करते थे। टैगोर की जन्मशताब्दी पर हतोत्साह और अन्यमनस्कता भी दिखाई दी। तथापि बंगला देश में टैगोर की रचनाओं को धरोहर रूप में रखा गया और उनकी जन्मशताब्दी पर बैठकों, गोष्ठियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को आयोजित किया गया। टैगोर की लोकप्रियता और उनके प्रति श्रद्धा-भाव "आजाद" पत्रिका में बढ़-चढ़कर प्रकाशित किया गया।

मातृभाषा के प्रयोग पर लगाए गए नाना प्रतिबंध असफल सिद्ध हुए। लोगों के भीतर अपनी मातृभाषा के प्रति लगाव बढ़ता ही गया। बंगला देश की संतान ने अपनी मातृभाषा को "असली माता" कहकर पुकारा। 1969 ई. में भाषा-आंदोलन को जबरदस्त मान्यता उपलब्ध हुई। फरवरी 18, 1969 ई. को मिलिट्री फाइरिंग में राजशाही विश्वविद्यालय के एक युवा प्रोफेसर डॉ. समयुज्जोहा विश्वविद्यालय के फाटक पर अपने प्राणों से हाथ धो बैठे। ढाका विश्वविद्यालय में भी हिंसा का तांडव शुरू हो गया। छात्रों ने सरकारी आदेशों की अवहेलना की। बंगला भाषा को राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान करने की पुरजोर मांग रखी जिसके लिए छात्रों को गोलियाँ खानी पड़ीं। लेकिन बंगला देश के जन-समूह के आगे मिलिट्री की गोलियाँ काम न कर सकीं। बंगला भाषा को मान्यता दिए जाने के आंदोलन ने पश्चिमी पाकिस्तान के शासकों की आँखें खोलकर रख दीं। पश्चिमी पाकिस्तान के पूरे राष्ट्र में दमनकारी नीतियाँ जारी रहीं। 1971 ई. में उनके क्रोध का ज्वालामुखी फूट पड़ा। बंगला देश के भीतर शासकों ने भी राजद्रोह कर दिया।

बंगला देश के एक प्रख्यात् कवि दाऊद हैदर ने महाकवि टैगोर की महत्ता पर एक कविता लिखी:

"Rabindranath, We are here down-trodden, humiliated, tortured / In the procession for you / The people lay down their lives, and so do I, and yet for what?/ Vainly do I tire myself out calling you most sincerely./ But you do not respond / Yet I can not go away neglecting you,/ Ahead of me appears an abyss!./ We want you now, Rabindranath, / Come, and see/ we are terribly unhappy."

उपर्युक्त शायर की आर्तवाणी महाकवि रबींद्रनाथ टैगोर का आह्वान करती है, और दुख की घड़ी में हाथ बँटाने का निवेदन करती है। बंगला देश का जन-समूह स्वाधीनता के आकाश में चरमाह्लाद की उपलब्धि करेगा और महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर को भी अपनी स्वाधीनता के माध्यम से प्राप्त कर लेगा।

– कोठी नं. 3/16/3, ए.जी. कॉलेज रोड, पड़रा, रीवा 486001 (म. प्र.)

❑❑❑

271 CHD / 2018—4A

विश्वविख्यात भारतीय वैज्ञानिक

शंकर लाल माहेश्वरी

"आज का युग वैज्ञानिक युग कहलाता है। भौतिक जगत में विज्ञान के चमत्कारों ने असंभव को संभव, परोक्ष को प्रत्यक्ष दिखलाने में काफी सफलताएँ प्राप्त की हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं, आवागमन, संचार माध्यमों के साधनों को सुलभ बनाया है। प्राय: जीवन के अधिकांश क्षेत्र विज्ञान से प्रभावित हो रहे है। इंटरनेट, कंप्यूटर, टीवी, मोबाइल फोन, संचार और आवागमन आदि के साधनों के विकास के कारण संसार में बाह्य दूरियाँ कम होती जा रही हैं। दैनिक जीवन में उपयोग के लिए बिजली द्वारा संचालित शारीरिक सुविधा प्रदान करने वाले पंखे, कूलर, एयर कंडीशन, वाशिंग मशीन, रेफ्रीजरेटर एवं अन्य घरेलू उपकरण आदि उसके लिए आज्ञाकारी नौकर के समान कार्य कर रहे हैं। इनके अभाव में जीवन अस्त-व्यस्त होने लगता है। बिजली, चुंबकीय, सौर, पेट्रोल, परमाणु, रसायन, हवा, पानी आदि ऊर्जाओं के स्रोतों की खोज से मानव को भौतिक रूप से शक्तिशाली बनाने में विज्ञान की भूमिका से नकारा नहीं जा सकता।"

— डॉ. चंचल मल चौरडिया

भारत देश प्राचीन काल से ही ज्ञान-विज्ञान का प्रमुख केंद्र रहा है। हमारे पौराणिक धर्म ग्रंथों में इसका विस्तृत उल्लेख है। महाभारत काल में संजय का स्मरण होता है कि वह धृतराष्ट्र को युद्ध क्षेत्र का आँखों देखा हाल ज्यों का त्यों सुनाने में सक्षम था। उस समय की दूरसंचार व्यवस्थाएँ कितनी उन्नत रही होंगी? रामायण काल में पुष्पक विमान की गाथाएँ शीघ्रगामी परिवहन साधनों की परिचायक हैं। कहा जाता है कि भारत देश जगतगुरु की उपाधि से विभूषित था।

271 CHD / 2018—4B

विश्व का सबसे प्रथम विश्वविद्यालय 700 ईस्वी पूर्व तक्षशिला में स्थापित किया गया। इसमें 60 से अधिक विषयों के दस हजार पाँच सौ से अधिक छात्र अध्ययनरत थे। नालंदा विश्वविद्यालय चौथी शताब्दी में स्थापित हुआ जो शिक्षा के क्षेत्र में महानतम उपलब्धियों में से एक है। बाद में विकासक्रम अवरुद्ध हो गया। इस संबंध में प्रख्यात साहित्यकार डॉ. नरेंद्र कोहली ने भोपाल में आयोजित हिंदी दिवस समारोह में कहा था "तुर्क, अरबी और अफगानी हमलावरों ने भारत में सबसे पहले संस्कृत पाठशालाएँ बंद की और फिर तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को जलाकर भोजन पकाया। पुस्तकों को जलाने से हमारा ज्ञान राख में मिल गया।"

भारतीय इतिहास के कई गौरवशाली प्रसंग ऐसे है जो हमारे देश को विश्व-गुरु का दर्जा दिलाने में सक्षम रहे हैं। भारत भूमि पर कई विद्वान वैज्ञानिक अवतरित हुए जिन्होंने सैकड़ों वर्षों पूर्व ही वैज्ञानिक आविष्कारों से भारतभूमि को गौरवान्वित किया हैं जो आज भी प्रासंगिक है। अंक-पद्धति, शून्य का आविष्कार, साँप-सीढ़ी का खेल, रेडियो, वायरलेस, संचार सेवा, गणित के स्केल जैसे अनेक आविष्कार भारतभूमि की ही विशेष देन है। इतना ही नहीं, दशमलव पद्धति, शूल्व-सूत्र, शल्य-क्रिया आदि अनेक आविष्कार प्राचीन काल में ही इस धरा धाम पर सफल हो चुके है। वर्तमान में भी पश्चिमी वैज्ञानिक भारतीय ज्ञान तत्वों को अपने अनुसंधान का आधार बना रहे हैं।

प्राचीन भारतीय विज्ञानवेत्ताओं में जिनका प्रमुखता से नाम लिया जाता है, उनमें से वेदव्यास आदिशंकराचार्य, वराह मिहिर आर्यभट्ट, सुश्रुत व भास्कर जैसी महान विभूतियाँ रही हैं जो विज्ञान जगत के जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में प्रकाशवान हैं। यदि भारत के वर्तमान समय के वैज्ञानिकों को नामांकित करें तो उनमें प्रमुखत: जगदीश चंद बसु, सत्येंद्र नाथ बोस, रामानुजन, प्रफुल्ल चंद रे के नाम सर्वोपरि हैं। "भारतीय वैज्ञानिकों ने अपने कर्मो और वचनों से सिद्ध किया है कि हमारी उज्ज्वल वैज्ञानिक परंपरा रही है तथा हमारे श्रेष्ठ वैज्ञानिक बंधुओं ने अध्यात्म विज्ञान एवं तकनीकी का समन्वय कर मानव जाति के अनुकूल किरण का निर्माण किया जिसकी आवश्यकता आज का विश्व महसूस करता है।" – स्वामी विवेकानंद

प्रस्तुत लेख में भारत भूमि पर अवतरित उन प्रमुख वैज्ञानिकों का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्होंने वर्तमान में हो रहे आविष्कारों को भूमि प्रदान की और अवधारणा से अवगत कराया।

आर्यभट्ट -

समूचे ब्रह्मांड के रहस्यों का उद्घाटन करने वाले खगोल विशेषज्ञ आर्यभट्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उस समय लोग सही ढंग से गणना करना भी नहीं जानते थे। आर्यभट्ट की महानतम उपलब्धियों के कारण भारत सरकार ने 19 अप्रैल 1975 में जब प्रथम कृत्रिम उपग्रह छोड़ा तो उसका नाम आर्यभट्ट रखा। आर्यभट्ट ने संस्कृत के तीन ग्रंथों की रचना की, दस गीतिका, आर्यभटीय और तंत्र। आर्यभटीय इनका प्रमुख ग्रंथ माना गया है। इस ग्रंथ का आधार ज्योतिष से संबद्ध है। प्रस्तुत ग्रंथ में वर्गमूल, घनमूल, समानांतर एवं विभिन्न श्रेणी के समीकरणों का वर्णन है। इसी ग्रंथ में खगोल विज्ञान से संबद्ध सामग्री भी निहित है।

भास्कराचार्य द्वितीय-

प्राचीन काल के प्रमुख खगोलशास्त्री एवं गणित के प्रकांड विद्वान भास्कराचार्य द्वितीय थे। आप उज्जैन में स्थित वेधशाला के अधिष्ठाता थे। यह उस समय गणित एवं खगोल शास्त्र का प्रमुख केंद्र था। जब इनकी आयु 6 वर्ष की थी तभी इन्होंने सिद्धांत शिरोमणि नामक ग्रंथ की रचना की जिसके चार खंड थे।

1. लीलावती 2. बीजगणित 3. गोलाध्याय 4. ग्रह गणिताध्याय।

भास्कराचार्य जी ने न्यूटन से पहले ही गुरुत्वाकर्षण की अवधारणा को उजागर कर दिया था। सिद्धांत शिरोमणि में इस तथ्य को प्रकट किया गया है कि पृथ्वी आकाशीय पदार्थों को विशेष ऊर्जा से अपनी ओर आकृष्ट करती है इसीलिए आकाशीय पदार्थ पृथ्वी पर आकर गिरता है। इनका जन्म 1114 ईस्वी में हुआ था।

महर्षि चरक -

चरक आयुर्वेद विशारद के रूप में प्रख्यात है। इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ चरक संहिता में आयुर्वेद के सिद्धांतों का वर्णन किया है जिसमें आयुर्वेद की

रोगनाशक एवं रोगनिरोधक औषधियों का विवरण है। चरक ही प्रथम ऐसे चिकित्सक के रूप में प्रस्तुत हुए हैं जिन्होंने पाचन और शारीरिक प्रतिरक्षा की अवधारणा को उद्घाटित किया है। शरीर में पित्त, कफ और वात के संबंध में विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है जिसे आज भी उपचार हेतु आधार माना जाता है।

आचार्य सुश्रुत-

शल्य चिकित्सा का प्रचार-प्रसार करने वाले महान चिकित्सक आचार्य सुश्रुत को चिकित्सा जगत में सदैव याद रखा जाएगा। इनका जन्म छठी शताब्दी ईसा पूर्व हुआ था। इनके द्वारा रचित सुश्रुत संहिता में 300 से अधिक शल्य चिकित्सा पद्धतियों का वर्णन है। इसी ग्रंथ में एक सौ बीस शल्य चिकित्सा उपकरण तथा सर्जरी की आठ श्रेणियों का भी विवरण अंकित है। सुश्रुत वैद्यक की कई शाखाओं के विशेषज्ञ भी थे। मूत्राशय में पथरी निकालने की शल्य क्रिया, प्रसव कराने, मोतियाबिंद की शल्य चिकित्सा तथा टूटी हड्डियों को जोड़ने की शल्य क्रिया में विशेषज्ञ थे। शल्य चिकित्सा में रोगी को मद्यपान कराने तथा विशेष प्रकार की औषधियों द्वारा संज्ञा-हरण करके शल्य क्रिया करने से दर्द नहीं होता और बिना व्यवधान के शल्य क्रिया संपन्न की जा सकती है।

डॉ. जगदीश चंद्र बोस-

डॉ. बोस एक महान वैज्ञानिक थे। इनके आविर्भाव के समय विज्ञान संबंधी शोधकार्य नगण्य थे। ऐसे समय में इन्होंने शोधकार्य की परंपरा को प्रारंभ किया और शोध के आधार पर ही अपने द्वारा किए गए आविष्कारों को प्रामाणिकता प्रदान की। इन्होंने भौतिकी, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान तथा पुरातत्व के गहन गंभीर तथ्यों का अध्ययन किया। डॉ. बोस विश्व के प्रथम ऐसे वैज्ञानिक थे जिन्होंने रेडियो और सूक्ष्म तरंगों की प्रकाशिकी पर विशेष कार्य किया। वनस्पति विज्ञान के अंतर्गत भी इनके खोजपूर्ण सिद्धांतों को समूचा विश्व प्रामाणिक मानता है। यह वह समय था जब स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ टैगोर और राजा राममोहन रॉय ने सामाजिक उत्थान के लिए विशेष कार्य किया। डॉ. बोस को अमरीका से पेटेंट मिला जो देश के लिए गौरव की बात है।

डॉ. सी. वी. रमन-

श्री रमन प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री थे। इन्होंने प्रकाश के प्रकीर्णन पर विशेष महत्वपूर्ण कार्य किया। इसी कार्य के लिए उन्हें सन् 1930 में भौतिकी का प्रतिष्ठित नोबल पुरस्कार मिला था। इनका यह आविष्कार रमन प्रभाव के नाम से ही जाना जाता है। रमन प्रभाव स्पेक्ट्रम पदार्थों की पहचान करने और उनकी आंतरिक परमाणु योजना का ज्ञान प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन माना गया है। रमन को 1954 ईस्वी में भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1957 में इन्हें लेनिन पुरस्कार प्रदान किया गया।

श्रीनिवास रामानुजन-

भारतभूमि पर अवतरित विश्वविख्यात श्रीनिवास रामानुजन का नाम गणित के क्षेत्र में विशेष रूप से उजागर हुआ। श्रीनिवास अयंगर गणित के क्षेत्र में गौस यूलर और आर्किमिडिज से किसी प्रकार कम नहीं थे। इनके द्वारा संख्या सिद्धांत, अनत शृंखला, गणितीय विश्लेषण और निरंतर भिन्न करने के सूत्रों की देन रही है।

प्रफुल्ल चंद्र रे-

भारत के प्रसिद्ध रसायनज्ञ के रूप में आपकी ख्याति विश्व स्तर पर रही। बंगाल केमिकल्स एवं फार्मास्यूटिकल्स नामक प्रसिद्ध दवा कंपनी के आप संस्थापक रहे हैं। इन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर देश से लुप्त रसायनशास्त्रीय विद्या को नया प्रकाश दिया तथा रसायन उद्योग की स्थापना करके उद्यमिता को प्रधानता दी। आप न केवल एक रसायनज्ञ ही थे अपितु एक आदर्श शिक्षक, संस्कृतिप्रेमी तथा विविध प्रकार की प्रतिभाओं के धनी रहे हैं। आपकी विशिष्ट प्रतिभा का आकलन करते हुए तत्कालीन प्रसिद्ध विज्ञान पत्रिका "नेचर" ने इनकी आत्मकथा के प्रकाशित होने पर लिखा था। "आत्मकथा के लेखन में संभवत: प्रफुल्ल चंद रे से अधिक विशिष्ट जीवन चरित्र किसी और का हो ही नहीं सकता। इनकी आत्मकथा "द लाइफ एंड एक्सपीरियंस ऑफ बंगाली केमिस्ट" थी। आप एक शिक्षाविद् और वैज्ञानिक के रूप में सदैव याद रहेंगे।"

सत्येंद्र नाथ बोस-

श्री बोस ने अणु के क्षेत्र में महान कार्य किया। भौतिक शास्त्र में बोसान और फर्मियान नाम के दो अणुओं में बोसान अणु का नामकरण सत्येंद्र नाथ बोस

के नाम ही से नामांकित हुआ। इन्होंने तत्कालीन महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंसटाइन के साथ मिलकर बोस आंइसटीन स्टेटिस्टिक्स का अनुसंधान किया।

हरगोविंद खुराणा-

डॉ. हरगोविंद खुराणा भारतीय मूल के अमरीकी नागरिक थे। इन्हें जेनेटिक कोड की भाषा समझने और उनकी प्रोटीन संश्लेषण में भूमिका बताने के लिए सन् 1968 में चिकित्सा विज्ञान के नोबल पुरस्कार से विभूषित किया गया। इन्होंने आनुवांशिक कोड डी एन. ए. का विश्लेषण किया और उसकी खोज की। श्री खुराणा ने मार्शल और रोबोट हॉर्ले के साथ मिलकर कार्य किया था। श्री खुराणा ने अपने अनुसंधान से पता लगाया कि कोशिका के आनुवंशिक कूट कोड को ले जाने वाले न्यूक्लिक अम्ल एसिड, न्यूक्लिक ओटाइड्स किस प्रकार से कोशिका के प्रोटीन सिंथेसिस को नियंत्रित करते हैं। डॉ. खुराणा ने कृत्रिम जीन के साथ डी. एन. ए. लाइगेज का भी संश्लेषण किया जो डी. एन. ए. के अलग-अलग भागों को परस्पर जोड़ता है। इस प्रकार संश्लेषित कृत्रिम जीन वर्तमान में बायो तकनीक क्लोनिंग तथा नए प्रकार के पादप व जीवों को विकसित करने में बहुलता से उपयोग किए जा रहे हैं। श्री खुराणा की विश्व को यह विशेष देन रही है।

डॉ. मोक्षगुणम विश्वैश्वरैया

श्री विश्वैश्वरैया को वर्तमान भारत के विश्वकर्मा के रूप में पूजनीय माना जाता है। आपने अपने संपूर्ण जीवन को ही विश्व की सेवा में समर्पित कर अपने महान व्यक्तित्व का परिचय दिया। इन्होंने अपने अथक प्रयास से राष्ट्रसेवा के लिए तत्पर देश को कई इंजीनियर और वैज्ञानिक तैयार करते हुए एक आदर्श पहल की थी। आप स्वयं एक वैज्ञानिक एवं इंजीनियर थे। अपने विशिष्ट कार्यों की दृष्टि से इन्हें "भारत रत्न" की उपाधि से अलंकृत किया गया। डॉ. विश्वैश्वरैया धुन के पक्के, ईमानदार परिश्रमी व्यक्तित्व के धनी थे। आपको अपनी कार्यशैली तथा कार्यनिष्ठा के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर की उपाधि प्रदान की। इन्होंने ऊर्जा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पावर स्टेशन भी स्थापित किया था। औद्योगीकरण को विकसित करने तथा प्रेस को स्वतंत्रता दिलाने तथा समाज-हित की अनेकानेक योजनाओं को भी संचालित किया।

सलीम अली -

प्रकृतिवादी व्यक्तित्व के धनी श्री सलीम अली ने पक्षी विज्ञान को विकसित करने में सराहनीय योगदान दिया। इनकी इस क्षेत्र में विशेष सेवाओं के कारण बर्ड मेन ऑफ इंडिया के नाम से भी जाना जाता है। पक्षी जगत के लिए सलीम अली ने विशिष्ट प्रकार के अनुसंधान करते हुए अपनी प्राकृतिक ज्ञान-संपदा का पूरा उपयोग किया तथा विश्व में अपना वर्चस्व स्थापित किया।

विक्रम साराभाई -

अंतरिक्ष विज्ञान के जनक श्री विक्रम साराभाई ने भारत में अंतरिक्ष प्रोग्राम की स्थापना करते हुए 40 अंतरिक्ष प्रोग्राम की नींव रखी। इन्होंने विशेषत: आणविक ऊर्जा, इलैक्ट्रोनिक्स के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। श्री विक्रम साराभाई के नाम पर तिरुअनंतपुरम में थुंबाइक्वेटोरियल रॉकेट लांचिग स्टेशन टी ई आर एल एस और संबंधित अंतरिक्ष संस्थाओं का नाम बदलकर विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र रख दिया जो बाद में "इसरो" के एक विशेष अनुसंधान केंद्र के रूप में प्रस्तुत हुआ।

डॉ. होमी जहांगीर भाभा-

भारतीय परमाणु ऊर्जा के जनक डॉ. भाभा को "आर्किटेक्ट ऑफ इंडियन एटेमिक एनर्जी प्रोग्राम" भी कहा जाता है। हमारे देश का पहला परमाणु परीक्षण 1974 में पहली बार इन्हीं के सहयोग से सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में भारत को शक्तिसंपन्न बनाने में डॉ. भाभा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जिस समय विश्व में नाभिकीय विज्ञान को कोई भी नहीं जानता था, ऐसे समय में डॉ. भाभा ने नाभिकीय ऊर्जा से विद्युत उत्पादन को साकार रूप देने में सफलता अर्जित की थी।

सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर-

श्री सुब्रह्मण्यम को अपनी वैज्ञानिक उपलब्धि पर सन् 1983 में भौतिकी शास्त्र के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। डॉ. सुब्रह्मण्यम ने श्वेत बौने नाम के नक्षत्रों की खोज की थी। इस वैज्ञानिक द्वारा किए गए अनुसंधान से दुनिया की उत्पत्ति के रहस्य को सुलझाने में विशेष योगदान मिला। यह भारतीय प्रसिद्ध वैज्ञानिक सी.वी. रमन के भतीजे थे। आपका नाम बीसवीं शताब्दी के

वैज्ञानिकों में श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। इन्होंने खगोल भौतिकी शास्त्र तथा सौरमंडल से संबंधित विषयों पर पुस्तकें लिखकर अपनी मूल्यवान सेवाएँ प्रदत्त कीं।

अब्दुल कलाम-

भारतीय गणतंत्र के ग्यारवें राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम का नाम न केवल राष्ट्रीय नेता के रूप में अपितु महान वैज्ञानिक के रूप में जाना जाता है। आप भारत देश के उन महान वैज्ञानिकों में से हैं जिन्होंने विश्व को अपने अनुसंधान द्वारा गौरवान्वित किया है। उन्हें भारतीय मिसाइलों और परमाणु हथियार कार्यक्रम को संचालित करने वाला कुशल वैज्ञानिक कहा जाता है।

वेंकटरमण रामकृष्णन-

भारतीय मूल के प्रसिद्ध वैज्ञानिक वेंकटरमण रामकृष्णन का जन्म भारत के चिदंबरम जिले में हुआ था। इन्हें सन् 2009 में रसायन विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय उपलब्धियों के कारण नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। कोशिका के अंदर प्रोटीन का निर्माण करने वाले राइबोसोम की कार्य-प्रणाली एवं उसकी संरचना का विशिष्ट अध्ययन इनकी विशेषता थी।

भारत रत्न डॉ. सी एन आर राव -

डॉ. राव ने स्पेक्ट्रम विज्ञान के उन्नत उपकरणों द्वारा ठोस पदार्थों की भीतरी संरचनाओं पर कार्य संपादन किया था। आपको "भारत रत्न" की उपाधि से भी सम्मानित किया गया। इन्होंने सूक्ष्मदर्शी स्तर पर ठोस पदार्थों में होने वाली प्रक्रियाओं को समझकर संबंधित रिसर्च पेपर भी तैयार किए थे। इन्होंने पदार्थ के गुणों और उनकी आणविक संरचना के मध्य प्रक्रिया की समझ को विकसित किया। आप भारत राष्ट्र के प्रधानमंत्री के प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार भी रहे हैं। साथ ही इंटरनेशलन सेंटर फॉर मेटेरियल्स साइंस के निदेशक पद पर भी कार्य किया। आप पुरड्यु विश्वविद्यालय, ऑक्सफोर्ड केंब्रिज विश्वविद्यालय के विजिटिंग प्रोफेसर भी रह चुके हैं। इतना ही नहीं, आप ने जवाहर लाल नेहरू सेंटर फॉर एडवांसड साईंटिफिक रिसर्च के संस्थापक निदेशक के रूप में भी कार्य किया है।

भारत देश अति प्राचीनकाल ही से वैज्ञानिक अनुसंधान करते हुए अभूतपूर्व उलब्धियों **से गौरवान्वित होता आया है।** हमारे देश की संस्कृति में विज्ञान व धर्म के मध्य किसी भी **प्रकार का विरोधाभास** नहीं हैं। आज की युवा पीढ़ी सक्षम **है तथा विज्ञान व तकनीकी के क्षेत्र में** अपार संभावनाओं को साकार करने में **इनकी महती भूमिका रहती है। मंगल** मिशन में आने वाली समस्याओं को ढूँढ निकालने वाले **हमारे वैज्ञानिक आध्यात्मिक** शक्ति और विज्ञान को समन्वित करते हुए देश **का स्वर्णिम भविष्य** बनाने में तत्पर व संलग्न है।

– **पोस्ट-आगूचा, जिला-भीलवाड़ा**, राजस्थान-311022

भारतीय जनजातीय साहित्य के वैचारिक सूत्र

प्रो. हेमराज मीणा

आदिवासी (जनजातीय) समुदाय की अवधारणा और आदिवासी (जनजाति) शब्द के अर्थ और स्वरूप की विवेचना विश्व के मानवशास्त्रियों ने अलग-अलग ढंग से की है। हमारे देश में पहले समाजविज्ञान विषय के अंतर्गत ही आदिवासी समुदाय का अध्ययन किया जाता था। किंतु बाद में इस विषय का अध्ययन स्वतंत्र रूप से प्रारंभ हुआ और देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्वतंत्र रूप से मानवशास्त्र (नृ-विज्ञान) विभागों की स्थापना की गई। आदिवासी साहित्य जैसा कोई विषय उस वक्त नहीं था। पहले पहल आदिवासी समुदायों के बीच प्रचलित वाचिक साहित्य जिसे हम आदिवासी लोकसाहित्य कह सकते हैं, का संकलन प्रारंभ हुआ जिसे संचयन, संकलन और लिपिबद्ध करने का कार्य अंग्रेज मिशनरियों ने किया। अंग्रेज मिशनरियों ने आदिवासी बोलियों और भाषाओं को सीखकर आदिवासी लोकसाहित्य को रोमन लिपि में संकलित किया। देश के विभिन्न आदिवासी अंचलों में कार्यरत मिशनरियों ने इस कार्य को संकलित, संचयित और रोमन लिपि में लिपिबद्ध कर प्रकाशित करने का कार्य किया और हमारा साक्षात्कार जनजातीय वाचिक साहित्य से प्रारंभ हुआ। स्वतंत्रता के कई दशकों बाद डॉ. रामदयाल मुंडा जिनका संबंध मुंडा जनजाति से था तथा जिनकी मातृभाषा मुंडारी थी, ने राँची विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में छोटा नागपुर और संथाल परगने की जनजातीय बोलियों, भाषाओं और उसके साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का कार्य विश्वविद्यालय में प्रारंभ कराया। संताली जैसी कुछ जनजातीय भाषाओं और उसके साहित्य का अध्ययन शांति निकेतन विश्वविद्यालय में भी हो रहा है।

तत्पश्चात आदिवासी बोलियों और भाषाओं के अध्ययन का कार्य राँची विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों में भी प्रारंभ हुआ। बाद में पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग में खासी, गारो, जयंतिया आदि जनजातीय भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ हुआ। मिजोरम विश्वविद्यालय में मिजो भाषा विभाग की स्थापना की गई। पूर्वोत्तर भारत के सबसे पुराने गुवाहाटी विश्वविद्यालय में बोडो भाषा और साहित्य विभाग की स्थापना हुई और उच्च शिक्षा अध्ययन के स्तर पर बोडो भाषा, साहित्य और संस्कृति का अध्ययन-अध्यापन और शोध प्रारंभ हुआ। जनजातीय साहित्य का अध्ययन महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा तथा केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद में भी होता है। विश्वविद्यालयी स्तर पर आदिवासी लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोकसंस्कृति तथा लोकोक्ति और मुहावरों पर शोधकार्य प्रारंभ हुआ। साथ ही जनजातीय भाषाओं मे कोश-निर्माण का कार्य भी प्रारंभ हुआ। जनजातीय शब्द-संपदा के संरक्षण हेतु यह कार्य अत्यंत जरूरी था। इस शोध-कार्य में अंग्रेज मिशनरियों द्वारा संकलित और लिपिबद्ध साहित्य ने पृष्ठभूमि और दिशा-निर्देशन का कार्य किया। जनजातीय भाषा विभागों और अध्ययन केंद्रों के द्वारा जनजातीय बोलियों और भाषाओं पर भाषावैज्ञानिक अनुसंधान प्रारंभ हुआ। भाषावैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में रायपुर यूनिवर्सिटी (छत्तीसगढ़), डेक्कन कॉलेज पुणे, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, के. एम. इंस्टीट्यूट, आगरा और केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। इन उच्च अध्ययन संस्थानों में जनजातीय कोश-निर्माण, तुलनात्मक अध्ययन तथा व्यतिरेकी अध्ययन की दिशा में उल्लेखनीय कार्य होता रहा है और हो रहा है। पूर्वोत्तर भारत में असम साहित्य सभा की तर्ज पर असम प्रांत में बोडो साहित्य सभा, राभा साहित्य सभा, कार्बी साहित्य सभा, मिसिङ् साहित्य सभा आदि की स्थापना की गई तथा इन सभाओं ने जनजातीय भाषाओं और उसके साहित्य के संरक्षण की दिशा में ठोस कदम उठाए। बोडो साहित्य सभा द्वारा संपादित प्रकाशित बोडो-हिंदी कोश एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। जनजातीय साहित्य सभाओं और संस्थाओं ने समकालीन जनजातीय सर्जनात्मक लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए जनजातीय भाषाओं में साहित्यिक पत्रिकाओं का भी प्रकाशन आरंभ किया। समूचे देश की कई प्रमुख

जनजातीय भाषाओं में साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही है। इन जनजातीय भाषाओं की साहित्यिक पत्रिकाओं के द्वारा जनजातीय भाषाओं की अभिव्यक्ति क्षमता, संप्रेषण क्षमता और संवेदनात्मक क्षमता विकसित हो रही हैं। इन जनजातीय पत्रिकाओं से जनजातीय भाषाओं के संरक्षण-संवर्धन को बल मिल रहा है। हमारे देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के भाषा विज्ञान विभागों के द्वारा भी जनजातीय बोलियों और भाषाओं का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन अनुसंधानकर्ताओं ने किया है। जनजातीय भाषाओं पर जब अनुसंधान कार्य किया जाता है तब जनजातीय साहित्य का आश्रय लेना अनिवार्य है। जनजातीय लोक साहित्य तथा जनजातीय शब्दावली जनजातीय भाषा अनुसंधान की आधार भूमि है।

आदिवासी विमर्श की पृष्ठभूमि दलित साहित्य से भी अधिक संपन्न-समृद्ध और पुरानी है। आदिवासी विमर्श का दायरा दलित-विमर्श से कई गुना व्यापक और विस्तृत है। आदिवासी साहित्य का भौगोलिक दायरा विश्वस्तरीय है। दुर्भाग्य से आदिवासी संवेदना को हिंदी और भारतीय भाषाओं के माध्यम से जो स्वर मिला है, वह दलित साहित्य के बाद मिल सका। आदिवासी विमर्श का दलित विमर्श से कोई संबंध नहीं है। दुर्भाग्य से हमारे देश के विश्वविद्यालय इस विषय को हल्के तौर पर ले रहे हैं। बोडो और संताली को छोड़कर शेष संवैधानिक भारतीय भाषाएँ भी आदिवासी साहित्य की अभिव्यक्ति का सीधा माध्यम नहीं है। आज हमारे समक्ष जो भी आदिवासी साहित्य है उसे कई भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. जनजातियों की बोलियों और भाषाओं में मूल रूप से लिखा गया आधुनिक मौलिक साहित्य तथा जनजातीय समुदाय में प्रचलित जनजातीय भाषाओं का वाचिक साहित्य।

2. जनजातीय वर्ग के लेखकों द्वारा जनजातीय विषयों पर केंद्रित हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में लिखित मौलिक साहित्य।

3. आदिवासी जीवन, समाज और संस्कृति के विषय में गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य।

व्यापक अर्थ में हम गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखे गए साहित्य तथा भारतीय भाषाओं में लिखे गए आदिवासी साहित्य को भी आदिवासी साहित्य की

श्रेणी में स्वीकार करने लगे हैं। सही अर्थों में पारंपरिक जनजातीय वाचिक साहित्य, जनजातीय वर्ग के लेखकों और कवियों द्वारा जनजातीय भाषाओं में लिखा गया साहित्य ही असली आदिवासी जनजातीय साहित्य है।

आजकल जनजातीय भाषाओं में लिखे गए जनजातीय साहित्य के अनूदित साहित्य को भी हम आदिवासी साहित्य स्वीकार कर उसका अध्ययन, विश्लेषण, विवेचन करने लगे हैं। संप्रति इन दिनों हिंदी भाषा में रचित कहानियों, उपन्यासों, कविताओं आदि में जनजातीय जीवन को केंद्र में रखकर कुछ लेखकों द्वारा जो साहित्य रचा गया है, उन पर मुख्य रूप से शोध और विमर्श होने लगा है। हिंदी तथा कुछ अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं में आदिवासी तथा गैर आदिवासी लेखकों द्वारा आदिवासी जीवन और आदिवासी विषयों से संबंधित सर्जनात्मक साहित्य रचा जा रहा है। विश्वविद्यालयी स्तर और साहित्यिक क्षेत्र में इसी साहित्य पर चर्चा-परिचर्चा और विमर्श हो रहा है। हिंदी में अनूदित मूल आदिवासी साहित्य का भी अध्ययन प्रारंभ हो चुका है, साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं का हिंदी में अनूदित आदिवासी विषयक सर्जनात्मक साहित्य पर भी विमर्शपरक चिंतन और शोध हो रहा है। इन दिनों अनुसंधानों द्वारा मुख्य रूप से आदिवासी जीवन से संबंधित कहानियों, उपन्यासों पर अधिक शोधकार्य हो रहा है। हिंदी में लिखित आदिवासी जीवन विषयक तथा कथा साहित्य पर कई शोध-प्रबंध हमारे समक्ष आ चुके हैं, किंतु विभिन्न आदिवासी समुदायों के चित्रण जो हिंदी तथा विविध भाषाओं की कृतियों में किया गया है, पर मौलिक कार्य अभी शेष है।

जिस समुदाय के पास अपनी कोई स्वतंत्र जनजातीय बोली-भाषा नहीं है, उसे आदिवासी समुदाय नहीं माना जा सकता है। कुछ ऐसे आदिवासी समुदाय हैं जो मुख्य समाज के संपर्क में आकर अपनी जनजातीय बोली-भाषा को भूल चुके हैं, किंतु फिर भी अपनी परंपराओं के दायरे में अभी जीवित हैं। हिंदी के कथाकारों ने अपनी कथाकृतियों में मुख्य रूप से मध्यप्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, झारखंड, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी समुदायों को केंद्र में रखकर कथा की सृष्टि की है। अभी हिंदी में दक्षिण भारत और अन्य आदिवासी-बाहुल्य अंचलों पर कहानियों और उपन्यासों की रचना नहीं हुई है।

मुख्य रूप से हिंदी के वे कथाकार जो उन समुदायों के आस-पास रहते हैं, उनके संपर्क में आने लगे हैं और उन पर कथा-कृतियों का सृजन कर रहे हैं। आदिवासी जीवन का दायरा लेह-लदाख से लेकर अंडमान निकोबार द्वीप समूह तक फैला हुआ है। अब वह समय आ गया है जब स्वयं आदिवासी वर्ग का व्यक्ति आदिवासी संवेदना और वेदना को हिंदी में व्यक्त करे। आदिवासी कवियों, कथाकारों, विमर्शकारों, आलोचकों, चिंतकों, शोधार्थियों की एक पीढ़ी इस कार्य में जुट चुकी है। इस संदर्भ में हम कथाकार के रूप में हरिराम मीणा और उनके उपन्यास 'धुणी तपे तीर' का उल्लेख कर सकते हैं। कविता लेखन और आलोचना लेखन की दृष्टि में डॉ. रामदयाल मुंडा, प्रो. तेजस्वी कट्टीमनी, प्रो. हेमराज दिवाकर, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, डॉ. सुनील कुमार सुमन, अनुज लुगुन, डॉ. शेख अब्दुल गनी, डॉ. बलराम काँवट, डॉ. प्रमोद कुमार मीणा, पिंटू कुमार मीणा, प्रो. वीर भारत तलवार, डॉ. ओकेन लेगो, सी. कामलोवा तथा भारतीय भाषा एवं साहित्य संस्थान की अध्यक्ष भाषाविद् हिंदी और मिजो भाषा की विशेषज्ञ प्रो. सी. ई. जीनी के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

— हिंदी संस्थान नगर, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005

❑❑❑

उपभोक्तावादी बाज़ार के प्रभाव और प्रहार

बिर्ख खड़का डुवर्सेली

यह सच्ची बात है कि भूमंडलीकरण के विचार को विश्वव्यापी करने में पूंजीवादी शक्ति को अधिक मेहनत करनी नहीं पड़ी। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसे संगठनों की भूमिका के बल पर सारे संसार में पूंजीवाद ने अपने ही शर्तों पर व्यापार करने का बाजार सुनिश्चित किया है। पुरानी साम्राज्यवादी व्यवस्था की नींव नष्ट होने के बाद शक्तिसंपन्न पूंजीवादियों के लिए सारे संसार में राज करने का एक मात्र विकल्प बाजार रह गया था।

विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने समरूप जीवन शैली और व्यापार प्रणाली को बहुजन हिताय का संदेश बताकर इस तरह फूँका कि उनके उत्पादों को बेचने का बाजार बनता ही गया, बढ़ता ही गया। इसे नकारना शायद असंभव है कि पूंजीवादी शक्तियों की बदौलत ही भूमंडलीकृत बाजार सर्वस्वीकृत स्वरूप में सर्वरव्यापी होता जा रहा है और बाजार में उपभोग की सामग्री के रूप में मानव-मूल्य और आदर्शों के साथ शिक्षानीति, अर्थनीति और राजनीति भी समाहित हुई हैं। विज्ञापनों के सोपानों के जरिए सिद्धांतों, अवधारणाओं, विचारों और आदर्शों को विकास के लिए जरूरी साबित करने का काम बाजार में स्थापित हो गया है।

यह बताने की जरूरत नहीं है कि बाजार के विस्तार के लिए समयानुरूप और जरूरत के मुताबिक मीडिया, मैसेज और मॉडल को सूत्र के रूप में उपयोग किया जा रहा है। आए दिन हर छोटे-बड़े शहरों में बड़े-बड़े मॉल, बिग बाज़ार और मेगा मार्केट खुल रहे हैं और महानगरीय जीवन-शैली और सभ्यता को

बढ़ावा देकर बाज़ारवाद ने ऐसी उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म देकर धकेल दिया है कि उसे पीछे मुड़कर देखने की फुर्सत ही नहीं है। यही वजह है कि आज के युवावर्ग को देश की स्वाधीनता के संग्राम और सांस्कृतिक विरासत से कुछ भी लेना देना नहीं है।

यह गौरतलब बात है कि बाजार की ओर भाग रहे उपभोक्ताओं की आवश्यकता आज केवल 'रोटी-कपड़ा-मकान' नहीं हैं, बल्कि शिक्षा, मनोरंजन, प्रतिष्ठा, लोकप्रियता और सुख-सुविधा भी है। सुंदर, सुडौल और सशक्त होने के पश्चात् जीवन को आरामदायक और विलासितापूर्ण बनाने की प्रवृत्ति पनप रही है जिसके कारण ब्यूटी पार्लरों के अलावा अनेक प्रकार की संस्थाएँ सेवा प्रदान करने के लिए आगे बढ़ रही हैं ताकि व्यापार भी चले और बाज़ार भी जमे।

यह सच है कि बढ़ते बाज़ार में सीमित आय से असीमित चीजें खरीद पाना संभव नहीं है, इसलिए उपभोक्ता धन जुटाने के लिए कई हथकंडे इस्तेमाल करते हैं, तब भ्रष्टाचार पैर फैलाता है, काला बाज़ार पनपता है। एक यही वजह है कि आज हरेक क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बाजार गरम है।

बढ़ते हुए बाज़ारवाद ने पत्रकारिता के मूल्यों को प्रभावित ही नहीं किया है, बल्कि अविश्वसनीय भी बना दिया है, क्योंकि अंधविश्वासों और रूढ़िवादी धारणाओं को दूर करने के बजाए अंगूठियों, मंत्रों और ताबिजों-तंत्रों को बेचने का धंधा फल-फूल रहा है। भूत-प्रेत और देवी-देवताओं की अद्‌भुत करतूतों को सच्ची घटना बनाकर या दिखाकर कुचक्र अपना बाजार चला रहा है। दूसरी ओर पुरानी नीति-रीति का तिरस्कार करके नए प्रकार से सोचने-समझने और विचार करने की दिशा नवयुवक-युवतियों को दिखाई जा रही है, जिसके कारण मानव संसाधन बाज़ार के अस्त्र-शस्त्र बनते आ रहे हैं। अत्याधुनिक होने की विवेकरहित धारणा यह है कि टीवी चैनलों और चलचित्रों में चरित्रों को जिस तरह नग्न और अश्लील बनाकर पेश किया जाता है, वही सच है और स्वीकार्य भी है। उद्‌देश्य साफ है कि प्रदर्शित चरित्रों की पोशाक और पेशे से संबंधित वस्तुओं को पसंद करके बाजार की ओर दौड़ने को होड़ हो।

टीवी चैनलों पर फूहड़ बातों और अश्लीलता को द्‌विअर्थी भाषा में व्यक्त करके मनोरंजन के नाम पर अश्लीलता को सार्वजनिक करने का जो धंधा चला है, उछाल भरत बाज़ार के लिए आवश्यक मसाला हो गया है।

271 CHD / 2018—5A

अब सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते बाज़ार में मोबाइल सबसे ज्यादा जरूरी चीज हो गई है, हर तबके के लोग मोबाइल का उपयोग कर रहे हैं और अनावश्यक खर्च भी कर रहे हैं। मोबाइल के कारण अनेक प्रकार के घिनौने कांड प्रतिदिन हो रहे हैं, अश्लील संदेश भेजकर मजा लेने की नई संस्कृति पनप रही है। मोबाइल के उपयोग के कारण तरंगों से दिल की बीमारी, दिमाग पर प्रभाव और प्रजनन क्षमता ह्रास होने की बातें उपभोक्ताओं को कौन समझाएगा?

बाज़ारीकरण का माहौल कुछ इस तरह बढ़ गया है कि समाचार-पत्रों में अश्लील बातें करने की व्यवस्था करके मोबाइल नंबर दिया जाता है। समाचार-पत्रों के जरिए कुँवारेपन की नीलामी भी होती है। अधिकतर बोली लगाने वाले से हमबिस्तर होने की घोषणा छपती है। उपभोक्तावादी संस्कृति के विकृत स्वरूप का यह खुलासा ही तो है।

साहित्य-संगीत, कला-संस्कृति और परंपरा-मान्यता को तोड़-मरोड़ कर अत्याधुनिक स्वरूप में पेश करके अर्थ और यश कमाने का धंधा भी लोकप्रिय होता जा रहा है। यह 'डायरेक्ट-टू-होम' सेवा का युग होने के कारण हरेक सुख-सुविधाएँ घर-फ्लैट-कमरों तक पहुँचाने की व्यवस्था बाज़ार में है, चाहे वह उपभोग की वस्तु हो या मनोरंजन के साधन या अत्याधुनिक सेवा।

मीडिया की दिग्विजय यात्रा अद्भुत आकांक्षाओं और कामनाओं को समेटकर आगे बढ़ रही है जिसका रिमोट-यंत्र पूंजीपतियों के हाथों में है। अपनी इच्छाओं को योजना का रूप देकर ब्लू-प्रिंट तैयार करते हैं और राजनीति, खेलकूद, नारीदेह व्यापार, हिंसा तथा सेक्स में मीडिया को आगे बढ़ाते हैं। यही कारण है कि चुनाव प्रचार में नेतागण मतदाताओं को मनोरंजन प्रदान करने के लिए 'कजरारे कजरारे....' गीतों के साथ नर्तकियों को पेश करते हैं और मीडिया दिखाती है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से उपजे बाजारों में संवेदनहीनता का भयावह विस्तार है। बात तो 'ग्लोबल विलेज' की की जाती है, लेकिन 'वसुधैव कुटुंबकम्' जैसे मानवीय मूल्यों का संदेश नहीं है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के भोगवादी बाजार में राजेंद्र यादव की कहानी 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' की लक्ष्मियाँ उन्मुक्त होकर भोगवादी संस्कृति के बाजार में कैद हैं। हर छोटे-बड़े

271 CHD / 2018—5B

शहरों और कस्बों में ब्यूटी पार्लरों का बाजार है जहाँ लक्ष्मियाँ खुद को कैद करके उन्मुक्त जीवन जीने का अत्याधुनिक माल ढूँढती हैं।

मार्के की बात यह भी है कि विदेशी पूंजी निवेश करने के उद्देश्य से उदार आर्थिक कानून लचीले ढंग से लगाकर स्पेशल इकोनोमिक जोन (SEZ) एक्ट 2006 में लागू कर दिया गया। ताज्जुब की बात है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी सहित वामपंथी दलों ने संसद के दोनों सदनों में सेज के समर्थन में हामी भरी, जिसके फलस्वरूप उलूबेरिया, नंदीग्राम, सिंगुर, सालबनी, चानमनी जैसे कई स्थानों में उद्योग और उद्योगपतियों के लिए जमीन अधिग्रहण किया गया। छोटे-छोटे किसानों की जमीन छीनकर बड़े-बड़े उद्योगपतियों को सौंपने का पुनीत कार्य चल रहा है। उद्योग की नींव मजबूत करने के प्रयास में वामपंथियों की नींव हिल रही है। अत: इस बाज़ारवाद के चलते धन-संपन्न मालामाल हो रहे हैं तो दूसरी ओर जमीनविहीन किसान दीन मजदूर बन रहे हैं।

सोवियत संघ के विघटन के बाद, नब्बे के दशक में पूंजीवाद ने जब चीन में घर बसाना शुरू किया तो भारतीय वामपंथी चिंतकों को लगा कि विकास के लिए पूंजी की जरूरत होती है। तब से वैचारिक परिवर्तन ने वामपंथी विचारधारा ही बदल दी, जिसके फलस्वरूप जनदर्दी चिंतकगण सेज को सलाम करने को विवश हो गए और कृषि के धरातल पर विदेशी पूँजी के कंक्रीट पौधों को उगाना उनके लिए शेष विकल्प रह गया था। फलत: बाज़ारवाद की गिरफ्त में वित्तीय पूंजी आने लगी, व्यवस्था आने लगी और चिंतक समाज आने लगा।

भूमंडलीकृत बाज़ार में परोसी गई वस्तुओं और व्यवस्थाओं के अनुरूप खुद को ढालने और अनुकूलित होने की नौबत आ गई, जिसके फलस्वरूप द्रुत गति से जीवन शैली में परिवर्तन आने लगा। अमरीका के पूर्व विदेश मंत्री किसिंगर ने 12 अक्तूबर, 1999 में व्याख्यान देते हुए कहा था- "अमरीकी विचारों, मूल्यों और जीवन शैली को स्वीकारने के अलावा विश्व के सामने कोई विकल्प नहीं है।" लेकिन पिछले साल लंदन में हुए जी-20 सम्मेलन में 'अमरीकी आम राय' को स्वीकार करने के पक्ष में राय नहीं बनी। उस सम्मेलन में विश्व के महान् अर्थशास्त्रियों की एक समिति बनी थी जिसमें अमर्त्य सेन भी थे।

कहा तो जा रहा है, बाजारवाद या नवउदारवाद या उपभोक्तावाद सदा सर्वोपरि नहीं रहेगा, अमरीकी वाणिज्य-व्यापार के वर्चस्व के अधीन विश्व सदा नहीं रहेगा क्योंकि बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ धराशायी होती जा रही हैं, विश्व बाजार एक ही गति और धारा में संचालित नहीं हो रहा है।

अंतरराष्ट्रीय पूंजीवादी चिंतन का शासन हावी होने के कारण विदेशी पूंजी का दबदबा देशी पूंजी पर पड़ रहा है जिसके कारण आतंकवाद और अलगाववाद जैसी अवधारणाएँ जगह बना रही हैं जो आपराधिक कुकर्म, अनाचार, भ्रष्टाचार को जन्म देने में पर्याप्त हैं। इतना ही नहीं, सांस्कृतिक, अकादमिक, आर्थिक, सामाजिक हरेक क्षेत्र में क्षेत्रीय स्वायत्तता दम तोड़ रही है। कई राष्ट्रों में पिछड़ापन बढ़ता जा रहा है, गरीबी विकराल होती जा रही है और व्यापक रूप में प्रदूषण फैलता जा रहा है।

आश्चर्य की बात यह है कि बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद या आर्थिक नवउदारवाद की उपलब्धियों और सफलताओं के पक्ष में शासक वर्ग और सरकारें बने-बनाए आँकड़े पेश करती हैं। मौजूदा स्थिति को हरेक नजरिए से बेहतर होने का दावा करने वाले भी बहुत हैं। पीड़ित, दलित, शोषित जनसमूह की दीन-दशा तथा कुपोषण की अवस्था के आँकड़े बताने वाले कम हैं।

अतः यह कहना सर्वथा अनुचित नहीं होगा कि वैश्वीकरण के बढ़ते बाजार का प्रभाव और प्रहार हमारी व्यवस्था, जीवन-शैली, कृषि-जीवन, संस्कृति, साहित्य और भाषा पर इस तरह पड़ रहा है कि भविष्य की सोच और योजना को स्वच्छ रूप दे पाना असंभव हो गया है।

– आमा खडकालय, दुर्गागढ़ी, प्रधान नगर, दार्जिलिंग-734003

❑❑❑

सिंधी भक्ति-साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (विभाजन-पूर्व)

डॉ. तुलसी देवी

प्राचीन भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सिंधी साहित्य का अनुशीलन न केवल महत्वपूर्ण, वरन् अत्यंत आवश्यक है क्योंकि वेदों में वर्णित 'विश्ववारा' अर्थात् विश्ववरेण्य संस्कृति का संवाहक है यह साहित्य। 'वेद' कहता है-

"सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा"[1]

वैदिक संस्कृति वह प्रथम संस्कृति है, जो विश्व के द्वारा वरण करने योग्य है। कोई भी संस्कृति साहित्य के रूप में संरक्षित होकर विश्वमानव की अमूल्य थाती बनती है। सिंधी साहित्य में भारतीय संस्कृति के अमूल्य सूत्र सुरक्षित हैं, जिनसे प्राय: सिंधीतर भाषी अपरिचित हैं और भारतीय ज्ञान-परंपरा की इस अमूल्य निधि से वंचित भी हैं।

सिंधी साहित्य भारत देश का अत्यंत समृद्ध साहित्य है और बात जब भक्ति साहित्य की हो, तो निश्चय ही यह साहित्य 'ब्रह्मानंद सहोदर' मात्र न होकर साक्षात् ब्रह्मानंद की अनुभूति कराने वाला साहित्य बन जाता है; क्योंकि भक्ति वह भावात्मक तत्व है जो जीव को ब्रह्म में और आत्मा को परमात्मा में विलीन कर अद्वैत आनंद की अनुभूति कराता है। भक्ति का प्रारंभ सख्य, दास्य आदि भावों से हो सकता है, जैसा कि विभिन्न भक्तिपरक ग्रंथों में वर्णित है, परंतु इसकी चरम परिणति अद्वैत के आनंद में ही निहित है। आत्मिक चैतन्य परमात्मा चेतना का रूप धारण कर उसी प्रकार असीम हो जाता है, जैसे बूंद सागर बन जाती है।

सिंधी भक्ति-साहित्य का अनुशीलन करने पर इसकी मुख्य दो धाराएँ प्रकाश में आती हैं-

(1) ज्ञानमार्गी काव्यधारा और (2) सूफी काव्यधारा।

इस साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए तत्कालीन राजनैतिक परिदृश्य और अखंड भारत की सांस्कृतिक परंपराओं का पुनरावलोकन आवश्यक है।

राजनैतिक परिदृश्य

राजनैतिक परिदृश्य के संदर्भ में सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि सिंधी भक्ति-साहित्य का प्रारंभिक केंद्र सिंध प्रदेश रहा है, जो आज भारत की सीमाओं से दूर हो चुका है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि विभाजन से पूर्व सिंधी केवल हिंदू संप्रदाय की भाषा नहीं थी, अपितु उस प्रांत में रहने वाले इस्लाम मतानुयायियों की भाषा भी सिंधी थी। यही कारण है कि सिंधी साहित्य में काजी काजन और शाह अब्दुल लतीफ जैसे साहित्यकारों का साहित्य भी परिगणित है।

सिंधी भक्ति-साहित्य का प्राचीन इतिहास 8वीं ईस्वी शती से माना गया है[2] और इसी शती में सिंध में अरबी मुसलमानों का शासन प्रारंभ हुआ था[3], जो कालांतर में 19वीं शती के मध्य में अंग्रेजों के सिंध पर शासन के पश्चात् समाप्त हुआ।

महाराजा दाहरसेन के शासनकाल में सन् 712 में जब मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया, तब वहाँ सनातन हिंदू धर्म का प्रभाव था। अरब शासकों के प्रभुत्व के साथ सिंध में इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ। सूफी दरवेशों का आगमन भी सिंध में अरबों के शासनकाल से ही प्रारंभ हो गया था।[4] सूफी मत का मूल था इस्लाम और इसका सिद्धांत था, भारतीय वेदांत दर्शन।[5] 'प्राचीन भारतीय चिंतन के इतिहास' में वर्णन मिलता है कि अधिकांश सूफी साधकों को शासक वर्ग का संरक्षण प्राप्त था।[6] इन राजनैतिक परिस्थितियों का सिंधी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। सूफी दरवेशों और शायरों का इस युग में प्रमुख स्थान रहा। तथापि, हिंदू कवि सिंधी साहित्य में वेदांत की धारा को प्रवाहित करते रहे; क्योंकि सिंध भूमि, जो संतों और भक्तों की भूमि थी, जहाँ गली-गली में संतों का निवास था[7], वहाँ सिंधी भाषा में भक्ति साहित्य न रचा गया हो, यह असंभव है। प्रारंभिक दौर का यह भक्ति-साहित्य मौखिक परंपरा पर आधारित था।[8]

सिंधी साहित्य का मध्यकाल, जो प्रमुख रूप से भक्तिकाव्य का काल माना जाता है, 15वीं ईस्वी शती से 19वीं ईस्वी शती के मध्य तक, इन लगभग 350 वर्षों के सुदीर्घकाल में भी सिंध पर भिन्न-भिन्न आक्रांताओं के आक्रमण होते रहे।[9] इनमें से अरगून, तरखान और मुगलों की भाषा फारसी थी, इसलिए उनके काल में सिंधी साहित्य अधिक समृद्ध न हो सका। परंतु, कल्होड़ और मीरों की भाषा सिंधी थी, इस कारण उनके शासन में सिंधी साहित्य का सृजन स्वाभाविक रूप से हुआ। सिंधी शायरी का यह स्वर्णिम काल माना जाता है।[10]

मध्यकाल का साहित्य भी अधिकतर सूफीमत और वेदांत दर्शन से प्रभावित है। इतिहासकार लिखते हैं कि प्रारंभिक युग के समान मध्ययुग में भी इस्लाम का प्रभाव रहा। सनातन धर्मी सिंधी अपने धर्म का खुलकर प्रचार नहीं कर सकते थे। इतने विकराल ऐतिहासिक घटनाचक्र के बीच भी सिंध में हिंदू धर्मावलंबी सिंधियों ने कितने ही बलिदान देकर अपने धर्म, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी साहित्यिक परंपरा और अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रखा, यह न केवल अभूतपूर्व और भावविह्वल कर देने वाली घटना है, अपितु हमारे पूर्वजों के अद्‌भुत जीवट और विलक्षण बौद्‌धिक तथा आध्यात्मिक क्षमताओं का प्रमाण भी है।

सांस्कृतिक परिदृश्य

भक्ति के मूल सूत्र हमें वैदिक साहित्य में मिलते हैं। सर्वप्रथम 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में 'भक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है।[11] इतिहास इस बात का साक्षी है कि सृष्टि के प्रथम साहित्य 'ऋग्वेद' की रचना सिंधु नदी के तट पर हुई थी। सिंधु नदी सिंध-भूमि की पहचान है। यही कारण है कि समग्र सिंधी चिंतन वैदिक विचारधारा से ओतप्रोत है। सिंध-भूमि की महिमा का वर्णन करते हुए 'लालसिंधु अजवाणी' लिखते हैं-

एकांत ऐं एकता जो आलापु त सिंधु जी वादी[12]

अर्थात् एकांत और एकता का आलाप तो सिंधु की वादी में ही दर्शनीय है। आत्मा और परमात्मा के साथ एकता का यह आलाप उपनिषदों की तत्वदृष्टि है। भक्तिभावना के विकास में उपनिषदों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सिंध के महान् भक्त-कवियों ने वेद, वेदांत, उपनिषद्, गीतादि शास्त्रों के

सिद्धांतों का सार ग्रहण कर भक्तिधर्म को लोकधर्म का व्यापक रूप प्रदान किया। जनमानस के लिए भक्ति का यह मार्ग सहज साधना का मार्ग था।

।8वीं सदी की सिंधी भक्ति-काव्यधारा की त्रिमूर्ति शाह, सामी और सचल सिंधी साहित्य के अनमोल रत्न माने जाते हैं। शाह सिंध के सूफी कवियों के सिरमौर हैं, तो सामी सिंधी के ज्ञानमार्गी कवियों के सिरमौर। सामी साहब के गुरु स्वामी मेघराज, स्वामी प्राणनाथ, दलपत, दादूदयाल आदि सभी संत वेदांती कवि थे। सन् 1853 के पश्चात् नए दौर के सिंधी साहित्य में भी जीवंत सिंह, आसूराम, भोजराज, मोहन फकीर आदि संतों की वाणी में भी वेदांत की धारा प्रवाहित हुई है। वेदों की वाणी सरलचित्त तत्वदर्शी संतों की वाणी से निःसृत होकर लोकवाणी बन गई। इन संत कवियों को वैदिक ऋषियों के समान परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त था। ईश्वरीय प्रेम के दिव्य आनंद का उन्होंने इसी जीवन में साक्षात्कार किया था। एक श्लोक में 'सामी' साहब ने लिखा है-

परमेश्वर परतरव सामी सूरज जा रहे।[13]

परमात्मा सूर्य के समान प्रत्यक्ष है, पर जिनके दिव्य चक्षु खुले नहीं है, वे परमात्मा का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते।

पुनः एक श्लोक में वे लिखते हैं-

आतम रसु मिठो अथी, सभ रसनि रखों,
वञीं पुछ तनी खों, चखे जनि डिठो
किआऊँ पाण फिटो, सामी डिसी सरूप खे।[14]

मीठा आत्मरस जिन्होंने चखा है, उनसे इसका आनंद पूछो। आत्मस्वरूप का दर्शन कर जिन्होंने अपने अहंकार को छोड़ दिया है। संतों का यही कहना था कि अपने अंतर्मन में झाँककर स्वयं को पहचानो, अपने अंदर बैठी हुई आत्मा को पहचानो। फिर यह भ्रम दूर हो जाएगा कि आत्मा परमात्मा से अलग है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विभाजनपूर्व का सिंधी भक्ति-साहित्य अन्य भाषाओं के साहित्य की भाँति किन्हीं विशेष परिस्थितियों की देन नहीं है, अपितु यह लिखित अथवा श्रुतपरंपरा से अपनी सहज और अबाध गति से जीवन के चरम उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु मानव समाज को सदैव जागृति प्रदान करता

रहा है क्योंकि सांसारिक भोगों से तृप्त होकर अंत में, आत्मज्ञान के द्वारा आत्मा और पुनः परमात्म चैतन्य को पहचानना ही मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य है और यही ज्ञानमार्गी अद्वैत वेदांती सिंधी भक्ति-साहित्य का परम प्राप्तव्य भी है।

आत्मकल्याण के साथ समष्टि के कल्याण की भावना ही सिंधी भक्ति-साहित्य का सार है और यही वेद का धर्म भी; क्योंकि 'ऋग्वेद' में हमें व्यष्टिमय धर्म की बात कम ही देखने को मिलती है।

संदर्भ ग्रंथः

1. यजुर्वेद - 7.14
2. डॉ. मुरलीधर कृष्णचंद्र जैतली-सिंधी साहित्य जो इतिहासु
3. वही, पृ. 56 + 49
4. वही, आदि
5. डॉ. श्रीकृष्ण ओझा-प्राचीन भारतीय चिंतन का इतिहास, पृ. 281-282
6. वही, पृ. 288
7. लालसिंधु अजवाणी-सिंधु-भूमि (अदबी गुलदस्ते से)
8. डॉ. मुरलीधर कृष्णचंद्र जैतली-सिंधी साहित्य जो इतिहासु
9. वही, पृ. 44-48
10. वही, पृ. 57
11. श्वेताश्वतरोपनिषद् - 6.23
    यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
12. लालसिंधु अजवाणी-सिंधु-भूमि (अदबी गुलदस्तो)
14. सामीअ जा शलोक
15. वही

– महात्मा गांधी बालिका विद्यालय (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद (उ. प्र.)

❑❑❑

हिंदी-साहित्य में राष्ट्रीय एकता का स्वर
('भारत-भारती' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. केशवराम शर्मा

भारत चिरकाल से एक ऐसा उद्यान है जिसमें अनेक जाति, धर्म तथा संप्रदायों के पुष्प विकसित होते रहे हैं। यहाँ दीर्घकाल से उसी शासक, साहित्यकार तथा समाज-सुधारक को सम्मान मिला है जिसने विभिन्न धर्म तथा संप्रदायों के पारस्परिक भेदभाव को मिटाकर इनके समन्वय की चेष्टा की है। भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के बाद हिंदू और मुसलमानों का पारस्परिक द्वेष बढ़ता गया। मुसलमान अपने विजय-गर्व में मदांध होकर हिंदुओं को बहुधा प्रताड़ित कर रहे थे, किंतु बहुसंख्यक हिंदुओं का सर्वनाश करना उनके लिए संभव नहीं था। इसी प्रकार हिंदू भी मुसलमानों को हेय दृष्टि से देखते थे, किंतु उन्हें स्वदेश से भगाने में असमर्थ थे। ऐसी स्थिति में युगानुरूप कबीर आदि संतों ने दोनों धर्मों में तालमेल बिठाने की चेष्टा की। शेरशाह तथा अकबर आदि सम्राटों की लोकप्रियता का कारण भी उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण ही है।

यूरोप की अनेक जातियों, विशेषकर अंग्रेजों के भारत में प्रविष्ट हो जाने के बाद हिंदू तथा मुसलमान अपने पारस्परिक द्वेष-भाव को भुलाकर इनसे पिंड छुड़ाने की चेष्टा करने लगे क्योंकि अंग्रेजों का लक्ष्य यहाँ निवास करने का न होकर भारत में लूट-खसोट करने का था। देश-प्रेम से ओतप्रोत होकर ही भारतेंदु युग में राष्ट्रीय एकता का स्वर विशेष मुखर हुआ। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद 1885 ई. से राजनीति के साथ ही साहित्य में भी सांप्रदायिक सद्भाव का विशेष पल्लवन हुआ। द्विवेदी युग के कवि मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर

प्रसाद, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', माखनलाल चतुर्वेदी आदि के काव्य में राष्ट्रीय एकता की भावना सतत प्रगाढ़ होती चली गई।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त की प्राय: सभी रचनाएँ राष्ट्रप्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत हैं। इनके साहित्य में राष्ट्रीय एकता, सर्वधर्म-सद्भाव और समन्वय के स्वर सर्वोपरि हैं। कवि ने धार्मिक समन्वय पर विशेष बल दिया है। इनका 'साकेत' राम-भक्ति का द्योतक है, तो 'द्वापर' में श्रीकृष्ण का गुणानुवाद है, 'गुरुकुल' सिखधर्म के सिद्धांतों का उद्घोषक है, तो यशोधरा में बौद्धधर्म की प्राण-प्रतिष्ठा है, 'हिंदू' में हिंदुओं की चर्चा है, तो 'काबा और कर्बला' में इस्लाम धर्म का चिंतन है।

गुप्त जी के राष्ट्रीय भावों को विशेष रूप से वाणी प्रदान करने वाली इनकी सर्वप्रथम रचना 'भारत-भारती' है। यह मुक्तक काव्य कवि ने इस उद्देश्य से लिखा था कि हिंदी में भी कोई ऐसी कविता-पुस्तक सुलभ हो- "जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो और भविष्यत् के लिए प्रोत्साहन भी।"[2] गुप्त जी को यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा कुर्रीसुदौली के अधिपति राजा रामपाल सिंह से मिली थी। राजा साहब ने साग्रह निवेदन किया था कि मौलाना हाली के मुसद्दस को लक्ष्य करके गुप्त जी वैसी ही एक कविता पुस्तक हिंदुओं के लिए लिखें। युवा कवि ने उनकी चुनौती स्वीकार करके इस ग्रंथरत्न का प्रणयन किया था।

यद्यपि आपने 'भारत-भारती' में विशेष रूप से हिंदुओं का उद्बोधन किया है, तथापि बौद्ध, जैन और मुसलमानों की ओर इंगित करना भी राष्ट्रकवि के लिए नितांत आवश्यक था। बौद्ध धर्म के प्रति कवि के उद्गार कितने प्रशस्त हैं-

भारत-गगन में उस समय फिर एक वह झंडा उड़ा
जिसके तले आनंद सं आधा जगत् आकर जुड़ा।
वह बौद्धकालिक सभ्यता है विश्व भर में छा रही।
अब भी जिसे अवलोकने को भूमि खोदी जा रही।[3]

इसी प्रकार जैन धर्म का परिचय देते हुए गुप्त जी लिखते हैं-

फैला अहिंसा-बुद्धि-वर्धक जैन-पंथ-समाज भी,
जिसके विपुल साहित्य की विस्तीर्णता है आज भी।।[3]

सत्य के आग्रह से जहाँ कवि ने मुसलमानों की क्रूरता का स्पष्ट चित्रण किया है, वहीं वे समन्वयवादी, न्यायप्रिय सम्राट अकबर की भूरि-भूरि प्रशंसा भी करते हैं-

कम कीर्ति अकबर की नहीं, सत्शासकों की ख्याति में,
शासक न उसके सम सभी, होंगे किसी भी जाति में।
हो हिंदुओं के अर्थ हिंदू, यवन यवनों के लिए,
हठ, पक्षपात तथा दुराग्रह दूर रखने थे किए।।
निज राज्य में सुख-शांति का विस्तार वह करता रहा,
अन्याय-अत्याचार को सब भाँति वह हरता रहा।
निज शत्रुओं के भी गुणों का मान उसने था किया,
विश्वास-पूर्वक हिंदुओं को सचिव तक का पद दिया।। [4]

काव्य के 'वर्तमान खंड' में 'गो-वध' शीर्षक के अंतर्गत गुप्त जी गाय के माध्यम से मुसलमानों से निवेदन करते हैं कि वे भारतवासी होने के नाते इसी देश को अपनी मातृभूमि समझें और सद्भावना इसके कल्याण की कामना करें-

बीती अनेक शताब्दियाँ जिस देश में रहते तुम्हें,
*क्या लाज आवेगी उसे अपना **'वतन'** कहते तुम्हें?*
*तुम लोग भारत को कभी, **समझो** अरब से कम नहीं;*
यद्यपि जगत् में और कोई देश इसके सम नहीं।।
जिस देश के वर वायु से, सकुटुंब तुम हो जी रहे,
मिष्ठान्न जिसका खा रहे, पीयूष-सा जल पी रहे।
जो अंत में तनु को तुम्हारे ठौर देगा गोद में,
कर्तव्य क्या तुम को नहीं, रखना उसे आमोद में? [5]

पुत्र-वत्सला जननी के समान ही हिंदू तथा मुसलमान दोनों बंधुओं को पारस्परिक सद्भाव के साथ रहने का उपदेश देती हुई गोमाता कहती है-

हिंदू तथा तुम सब चढ़े हो, एक नौका पर यहाँ,
जो एक का होगा अहित, तो दूसरे का हित कहाँ?
सप्रेम हिलमिल कर चलो, यात्रा सुखद होगी तभी,
पीछे हुआ सो हो गया, अब सामने देखो सभी।। [6]

हम धर्म के नाम पर भिन्न-भिन्न संप्रदायों में विभक्त होकर नित्य प्रति नए-नए संघर्ष खड़े कर रहे हैं। हिंदू, सिख, मुसलमान, जैन, बौद्ध आदि संज्ञाओं को धारण करके हम शाश्वत मानवधर्म की उपेक्षा कर रहे हैं। अयोध्या के मंदिर-मस्जिद विवाद को लेकर आज स्थल-स्थल पर जो भीषण नर-संहार और रक्तपात हो रहा है, क्या उसके मूल में स्वार्थी राजनीतिज्ञों की शासन-लिप्सा नहीं है? हिंदुओं तथा मुसलमानों के मतों को आत्मसात् न करने का कुचक्र ही इन दिनों विविध प्रकार की व्यूह-रचना करा रहा है। प्रतीत होता है कि क्रांतदर्शी राष्ट्रकवि ने आज से नौ दशक पूर्व जैसे इसी धार्मिक संकीर्णता की ओर लक्ष्य करके लिखा था-

जिसके लिए संसार अपना सर्वकाल ऋणी रहा,
उस धर्म की भी दुर्दशा हमने उठा रक्खी न हा!
जो धर्म सुख का हेतु है, भव-सिंधु का जो सेतु है,
देखो, उसे हमने बनाया अब कलह का केतु है। [8]

× × ×

हम आड़ लेकर धर्म की, अब लीन हैं विद्रोह में,
मत ही हमारा धर्म है, हम पड़ रहे हैं मोह में। [9]

× × ×

अड्डे अखाड़े बन रहे हैं, ईश के आवास भी,
आती नहीं है लोक-लज्जा, अब हमारे पास भी।। [10]

इसी प्रकार 'भविष्यत् खंड' में ऐसा प्रतीत होता है जैसे गुप्त जी इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के भारतवासियों की पारस्परिक कलह को देखकर ही खिन्न हो रहे हों। वे हमें सांप्रदायिक एकता का पाठ पढ़ाते हुए माला के भिन्न-भिन्न पुष्पों के समान अपनी वैयक्तिक विशिष्टता के साथ ही सामूहिकता का भी परिचय देने की प्रेरणा दे रहे हैं–

आओ, मिलें सब देश-बांधव, हार बनकर देश के,
साधक बनें सब प्रेम से सुख-शांतिमय उद्देश्य के।
क्या सांप्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो!
बनती नहीं क्या एक माला, विविध सुमनों की कहो? [11]

सब बैर और विरोध का बल-बांध से वारण करो,
है भिन्नता में खिन्नता ही, एकता धारण करो।[2]

इस प्रकार 'स्थालीपुलाक-न्याय' से स्पष्ट है कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उत्कृष्ट रचना 'भारत-भारती' आज भी ऐसा संदेश प्रस्तुत कर रही है मानो उस क्रांतद्रष्टा ने हमें लक्ष्य करके ही इस काव्य की रचना की हो। प्रतीत होता है जैसे आज के उग्रवादी युवकों को समझाने के लिए ही वे कह रहे हों-

जड़ दीप तो देकर हमें आलोक जलता आप है,
पर एक हम में दूसरे को दे रहा संताप है।
क्या हम जड़ों से भी जगत् में हैं गए बीते नहीं?
हे भाइयो! इस भाँति तो तुम थे कभी जीते नहीं।।[3]

अंत में सभी देशवासियों का श्रद्धेय गुप्त जी के शब्दों में ही आह्वान है–

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएँ सभी।[4]

संदर्भ ग्रंथ:

1. मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती (32वाँ संस्करण), प्रस्तावना, पृष्ठ सं. 4
2. उपर्युक्त, अतीत खंड, छंद सं. 204, पृष्ठ सं. 76
3. उपर्युक्त, अतीत खंड, छंद सं. 208, पृष्ठ सं. 77
4. उपर्युक्त, अतीत खंड, छंद सं. 232 तथा 233, पृष्ठ सं. 83
5. उपर्युक्त, वर्तमान खंड, छंद सं. 70 तथा 71, पृष्ठ सं. 106 तथा 107
6. उपर्युक्त, उपर्युक्त, छंद सं. 74, पृष्ठ सं. 107
7. भारत-भारती का रचना-काल रामनवमी सं. 1968 वि. से श्रीकृष्ण जन्माष्टमी सं. 1969 वि. तक है।
8. भारत-भारती, वर्तमान खंड, छंद सं. 185, पृष्ठ सं. 132
9. उपर्युक्त, उपर्युक्त, छंद सं. 184, पृष्ठ सं. 132
10. उपर्युक्त, उपर्युक्त, छंद सं. 194, पृष्ठ सं. 134
11. उपर्युक्त, भविष्यत् खंड, छंद सं. 21, पृष्ठ सं. 163

12. उपर्युक्त, उपर्युक्त, छंद सं. 23, पृष्ठ सं. 163
13. उपर्युक्त, उपर्युक्त, छंद सं. 31, पृष्ठ सं. 165
14. उपर्युक्त, अतीत खंड, छंद सं. 14, पृष्ठ सं. 10

– बी-58, सड़क सं. 3, उत्तरी छज्जूपुर, दिल्ली-110084

❑❑❑

हिजड़ों की त्रासदी समकालीन उपन्यासों में

डॉ. शबाना हबीब

संपूर्ण सृष्टि के निर्माता ईश्वर है। मनुष्यों में नर, नारी और उभयलिंगी भी उसी की रचना है। मनुष्यों में उभयलिंगी यानी हिजड़ों को हाशिये में रखते चले आ रहे हैं। उन्हें सामाजिक मान्यता, आदर, सम्मान तो दूर, 'हिजड़ा' शब्द एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए गाली के रूप में इस्तेमाल करते चले आ रहे हैं जो सुनने वालों के हृदय को भेद डालता है। हिजड़ों की चार शाखाएँ हैं- बुचरा, नीलिमा, मनसा और हँसा। बुचरा जन्मजात हिजड़ा होता है। नीलिमा स्वयं बने हिजड़ा है। मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हँसा शारीरिक कमी के कारण बने हिजड़े हैं।

हिजड़ा रूप में जन्म लेने में एक बच्चे का कोई कसूर नहीं है। वह भी ईश्वर की सृष्टि है। हम यही करते आए हैं कि एक अल्प विकसित या विकलांग बच्चे की सेवा-सुश्रूषा, उसकी चिकित्सकीय सुविधाएँ, पढ़ाई, लिखाई इत्यादि का भरपूर ध्यान रखते हैं। और वहीं हिजड़ा बच्चे को जन्म लेते उसे पल-पल, रात-दिन अपमानित होना पड़ता है। यही नहीं, समाज में उसे स्वयं से अलग कर देते हैं, अपने ही परिवार से विस्थापित हो जाने को मजबूर कर देते हैं। विस्थापन का दंश सबसे अधिक कष्टकारी होता है। हिजड़ा बच्चा सबसे पहली उपेक्षा और सबसे पहला विस्थापन अपने ही घर-परिवार से पाता है। हिजड़ों के लिए किस शब्द का प्रयोग करना चाहिए, इस पर बहस चल रही है। कुछ लोग इसके लिए 'किन्नर' शब्द का प्रयोग करते हैं। कुछ तो 'उभयलिंगी', कुछ लोग 'तृतीय लिंगी' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। साहित्यकार अधिकतर 'तृतीयलिंगी' कहना

उचित समझता है। कुछ बुद्धिजीवी लेखकों ने इनको हाशिये से ऊपर उठाकर समाज में जगह दिलाने के लिए किन्नर शब्दों का प्रयोग किया है। लेकिन कुछ लोगों को किन्नर शब्द दिए जाने पर आपत्ति महसूस होती हैं।

आजकल भारतीय समाज में और साहित्य में हिजड़ों की समस्या एक सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रही है। वह अपना हक मांग रहा है। राजनीति में और चुनाव में भाग लेने का अधिकार उन्हें मिल रहा है। समाज में जीते जी उन लोगों को बहुत सी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। भारतीय समाज एवं साहित्य में तृतीयलिंगी विमर्श किन्नर समाज के बारे में न केवल जानकारी देता है बल्कि उनके उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण विमर्श सुझाता है। वर्तमान समय के दो उपन्यासों में हिजड़ों की त्रासदी का खुल्लम-खुल्ला चित्रण हुआ है।

हिंदी साहित्य में वास्तव में हिजड़ा-विमर्श की शुरुआत नीरजा माधव जी के उपन्यास 'यमदीप' से मानी जा सकती हैं। 2009 में इसके प्रकाशन से इस ओर लोगों की दृष्टि गई। फिर भी उन पर अधिक रचनाएँ नहीं निकलीं। बाद में 2011 में प्रदीप सौरभ जी ने 'तीसरी ताली' उपन्यास के माध्यम से इन लोगों के जीवन की तहों को खोलकर सामने रख दिया। इन दोनों उपन्यासों में हिजड़ों के जीवन का यथार्थ चित्रण प्राप्त होता है।

'यमदीप' उपन्यास का कथानक हिजड़ा नाज बीबी के इर्द-गिर्द घूमता है। वह इस उपन्यास की नायिका है। जबसे उसका जन्म हुआ तब से लेकर घरवाले परेशान हैं क्योंकि बच्चा हिजड़ा है। फिर भी माँ उससे बहुत प्यार करती है। वह पढ़ाई में तेज थी। लेकिन आठवीं कक्षा में पढ़ते वक्त कुदरत के करिश्मे के कारण आगे वह पढ़ न पाई। उस समय उसमें स्त्रीयोचित शरीरांग के साथ दाढ़ी, मूँछ भी आ गए। वह दिल से टूट गई। समाज उसे देखकर हँसने लगा। समाज के भय से तंग आकर मां-बाप हमेशा सोच रहे थे कि इसका क्या करें? फिर उसे स्वयं इस बात का अंदाजा हो गया कि यहाँ पड़े रहने से कोई फायदा नहीं, सिर्फ प्रताड़ना के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा। इसी विचार से वह हिजड़ों की दुनिया में, हिजड़ों की बस्ती में चली गई। पहले उनका नाम नंदरानी था। हिजड़ों की बस्ती में आ जाने के बाद उनका नाम नाज बीबी रख दिया गया।

271 CHD / 2018—GA

हिजड़ों की दुनिया में बुजुर्ग व्यक्ति उनके गुरु होते हैं। इस उपन्यास में उसके गुरु का नाम महताब गुरु है। हिजड़े लोग नाच-गाकर जो कुछ कमाते हैं, उसका एक हिस्सा गुरु को देते थे। शहर में किसी की शादी हो या बच्चे का जन्म हो, शगुन उतारने के लिए हिजड़ों का आना एक रिवाज है। साधारण लोग उनसे दूर ही रहना पसंद करते हैं। एक बार नाज बीबी और उनके साथियों ने मिलकर एक पागल औरत की मदद की। जब वह औरत प्रसव पीड़ा में तड़प रही थी तब आस-पास के साधारण लोग उनकी सहायता करने में हिचक रहे थे। उस समय ये हिजड़े ही उनकी प्रसूति में सहायता करते हैं। प्रसूति के बाद वह पागल औरत मर जाती है। उस नन्हे बच्चे को अपनाने में वहाँ के लोग तैयार नहीं हुए। यह देखकर हिजड़े कहते हैं- "अरे हम हिजड़े हैं, हिजड़े.... इंसान हैं क्या मुँह फेर लें"[1]। बच्चे को वहां छोड़ आने का मन न होने के कारण ये हिजड़े उसे साथ लेकर अपनी बस्ती की ओर चल पड़े।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका यह बताना चाहती है कि साधारण लोग कितने संवेदनशून्य है जबकि ये हिजड़े सभी से हमदर्दी रखने वाले हैं। वे ममता के सुख से वंचित हैं फिर भी एक पागल औरत की बच्ची को पाल-पोसकर बड़ा कर देते हैं। ऐसी बच्ची को साथ रखना कानूनी तौर पर जुल्म है। अगर यह बात पुलिस जान गई तो खतरा हो जाएगा। पुलिस उन्हें जीने नहीं देगी। हर हिजड़ा एक गिरिया रखते हैं। यानी कि किसी मर्द के साथ रहते है। इस दुनिया में सभी को जीने का अधिकार है सिवाय हिजड़ों के क्योंकि वे समाज से तिरस्कृत हैं। उन्हें समाज कोसता है। जब नाज बीबी उस बच्ची को भर्ती कराने के लिए स्कूल जाती है तो उन्हें देखकर अध्यापिकाएँ और छात्र कानाफूसी करने लगते हैं। तब नाज बीबी उनसे विनती करती हैं कि- "जब हम धंधे पर नहीं होते, बहनजी, तो इस तरह का मजाक हमारे सीने में गोली की तरह लगता है। हम आसमान से तो नहीं टपकते हैं न? आप ही की तरह किसी माँ की कोख से जन्मे हैं। हाड़-मांस का शरीर लिए। हमें तो अपने आप दुख होता है इस जीवन पर। आप लोग भी दुखी कर देते हो"।[2]

एक बार हिजड़ा अपने परिवार से नाता तोड़ गया तो दुबारा अपने घर में नहीं जा सकता था। घर से भाग जाने के बाद नंदरानी को कभी-कभी माँ-बाप की याद आती है। लेकिन घर नहीं जा सकती क्योंकि उनका घर जाना भैया

271 CHD / 2018—6B

भाभी को पसंद नहीं है। फिर भी वह घर पर फोन करती थी। कभी-कभार पापा से बात होती थी। माँ की मृत्यु होने के समय नाज घर आई तो भाभी ने उसे वहाँ से भगा दिया। वह सीधे श्मशानघाट पहुँच गई। उसका वहाँ आना भैया को पसंद नहीं आया क्योंकि रिश्तेदारों के बीच कानाफूसी का अवसर हो जाएगा। यही नहीं, पूरे परिवार की बेइज्जती हो जाने का भी भय था। जब नाज बीबी श्मशान घाट पहुंची तब चिता जल रही थी। वह अपने पिता से लिपटकर रोने लगी। भैया ने उसे भगाया ही नहीं, दुबारा रिश्ते का नाम लेकर यहाँ न आने की सलाह भी दी। यह सुनकर पिता कहता है कि- "भगवान ने इसके साथ अत्याचार किया है, तू तो न कर"[3]। पर नंदरानी रोती बिलखती यह कहती हुई वहाँ से चली जाती है कि- "मैं कभी तुम्हारी जिंदगी में दखल नहीं दूँगी, भय्या। बस, अब पापा ही बचे हैं, उनको संभालकर रखना"[4]।

अपने घर से पराया हो जाना कितना दुखदायक है, यह उसके इस वक्तव्य से व्यक्त होता है। हिजड़े रूप में जन्म लेने में उसका क्या कुसूर है? विधाता ने उसे ऐसा बनाया। लेकिन समाज उससे कोसों दूर रहना चाहता है। बराबरी का हिस्सा उन्हें देने में हिचकता है।

2011 में प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' इस मायने में कुछ आगे है कि एक पत्रकार की निर्भीकता तीसरे लिंग में पैदा हुए लोगों के जीवन के बारीकियों को खोलकर दिखाने का सफल प्रयत्न है। हिजड़े हमेशा जिस्म के धंधे अपनाने को तैयार नहीं होते। कभी-कभार भूख और गरीबी के चक्कर में आकर इस धंधे को अपनाने को मजबूर हो जाते हैं। यही नहीं, शिक्षा की कमी, अन्य व्यवसाय में जुड़ने का सीमित अवसर, आर्थिक तंगी व परिवार का भावनात्मक लगाव न होना ही अधिकांश हिजड़ों को यौन-कर्म की ओर ले जाता है। इसके बगैर लोग यह सोचते हैं कि सारे हिजड़े यौनकर्मी है, जो गलत है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि शान, शौकत और पैसा कमाने के वास्ते बहुत से हिजड़े कॉल सेंटर में काम करते हैं। कॉल गर्ल सेंटरों के मालिक देशी-विदेशी संबंध रखते हैं, इस कारण वहाँ काम करने वालों को अच्छा पैसा मिलता था। लेकिन कुछ खानदानी हिजड़े हैं जो अपनी इज्जत को बरकरार रखकर जीना चाहते हैं।

हर एक हिजड़े की जीवन कथा अत्यंत हृदयकारी है। विनीत गौतम साहब का बेटा था। लेकिन बढ़ते-बढ़ते उसमें स्त्रीजन्य सभी गुण आ गए। घर में सभी

की अवहेलना से तंग आकर वह घर से भाग निकला। भटकता रहा। भूख के कारण वेश्यावृत्ति करने पर मजबूर हो गया। वेश्यावृत्ति करते समय पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया। उसकी कथा सुनकर एक हवलदार ने उसे अपने घर में पनाह दी। फिर उसे एक ब्यूटी पार्लर में भर्ती कराया। आगे वह मशहूर ब्यूटीशियन बन गए। देश विदेश में उसका ब्यूटी पार्लर खोला गया।

एक हिजड़ा जो फिल्मी डांसर है, उसके बारे में भी बताया गया है। उनका नाम है सुप्रिया कपूर। वह हिजड़ा है, यह राज छिपाकर सिनेमा में वह आइटम डांस करती थी। उसकी मांग बढ़ रही थी। हिजड़ों की जिंदगी पर आयोजित लाइव शो में उसने खुलासा किया कि वह हिजड़ा है। इससे सिनेमा जगत में हलचल मच गई। कुछ निर्देशकों ने उसे अपने फिल्म से निकाल दिया। एक पत्रिका के इंटरव्यू में उसने ऐसा कहा कि- "अब मैं थोड़े दिन हिजड़ों की तरह बिकूँगी। मैं कैसी हूँ? क्यों हूँ? कितनी पीड़ा सहती हूँ? इन सवालों से किसी को सरोकार नहीं है। किसी को इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि मेरे जन्म के बाद मेरी माँ ने मुझे देखकर आत्महत्या कर ली। बाद में बड़ी बहन सिर्फ इसी बात के लिए ससुराल से निकाल दी गई कि उसकी बहन हिजड़ा है। मेरे पिता किस तरह तिल-तिल कर मरे, इस बात से किसी को कोई लेना-देना नहीं है। मीडिया को तो बेचने से मतलब है। चाहे वह औरत हो या फिर हिजड़ा। जब तक बिकूँगी, तब तक आप बेचेंगे"[5]।

हिजड़ा ताली बजाकर नाच-गाना करते हैं। इस प्रकार की कथा के पीछे का इतिहास यह है कि भगवान राम रावण को मारकर अयोध्या लौटे, तो वहाँ भारी जश्न हुआ। रात भर नाच गाना चला। काफी रात बीतने के बाद भगवान राम ने कहा कि अब सभी नर नारी अपने घरों को जाएँ। भगवान राम ने यह आदेश नर नारियों को दिया था। जो नर या नारी नहीं थे, वे वहीं रह गए। उन्हें जब यह बात पता चली, तो उन्होंने तीसरी योनि के उन लोगों को नाचने गाने का वरदान दे दिया। बस तभी से ये लोग नाच गा रहे हैं"[6]। हिजड़े समूह के बहुत सारे मेले होते हैं। उसमें एक था कुवागम मेला। कुठनदवार मंदिर में ही यह मेला चल रहा है। इसके बारे में भी उपन्यास में वर्णन है। इस मेले में तीसरी योनि के इन लोगों को वहाँ एक दिन के लिए सुहागन बनने का मौका मिलता है। इस

तरह उनकी सुहागन बनने की मुराद भी पूरी हो जाती है। फिर मंगलसूत्र तोड़ने की रस्म है। पुजारी ही मंगलसूत्र काटते हैं। इससे सुहागिन विलाप करती हैं। फिर मांग का सिंदूर साफ करके चूड़ियाँ तोड़कर विधवा बन जाती है। सरकार भी हिजड़ों की उन्नति के लिए कुछ नहीं करती। लेकिन इसमें यह भी बताया गया कि हिजड़े दो तीन जगहों में चुनाव में भाग लेकर नेता बन गए। फिर भी लोग उन्हें स्वीकार करने में हिचकते हैं। कभी-कभी उन्हें कीड़े-मकौड़े की तरह भगाया जाता है। इन सभी परिदृश्य से तंग आकर हिजड़े कहते हैं कि- "हिजड़े कोई हिंसक जानवर नहीं हैं, जो गाँव में रहेंगे तो लोगों को मारकर खा जाएंगे। उन्हें भी भगवान ने ही बनाया है"[7]।

हिजड़ों का दाह-संस्कार भी विभिन्न किस्म का है। किसी की मृत्यु हो गई तो बाकी हिजड़े आँसू नहीं बहायेंगे क्योंकि उनके विचारों में उसे मुक्ति मिल गई। मरनेवाला हिंदू हो या मुस्लिम, उसे दफनाने के लिए कब्रिस्तान ले जाया जाता है। शवयात्रा अर्ध रात्रि के बाद ही शुरू होती है। हिजड़े के शव को रात में डंडों से मारते, उस पर चप्पल जूते बरसाते और सड़क पर खींचते हुए श्मशानघाट ले जाते हैं। इस तरह शव को श्मशान में ले जाने के पीछे मान्यता यह है कि मरनेवाला दुबारा तीसरी योनि में जन्म नहीं लेगा। हिजड़े शवयात्रा में शामिल नहीं होते। क्योंकि वे अपने को औरत समझते हैं। हिंदू रीति-रिवाज के मुताबिक औरतें श्मशान नहीं जाती।

हिजड़ों के जीवन का रूबरू चित्र इन दोनों उपन्यासों से प्राप्त होता हैं। इस प्रकार पश्वीकृतों में सबसे अधिक यातनाएँ हिजड़ों को ही झेलनी पड़ती है। जबरन हिजड़ा बनाए जाने का इस उपन्यास में जिक्र है। हिजड़ों को जिस्म बेचने के लिए उकसाने वाले कॉल सेंटरों पर भी विचार किया गया है। सुप्रसिद्ध गीतकार सुश्री गीतिका वेदिक ने अपने गीत में हिजड़ों के प्रति हमदर्दी दिखाई है। गीत यह है-

नहीं नारी हूँ मैं और नर नहीं हूँ
विवश हूँ मूक हूँ पत्थर नहीं हूँ
जिसे मौका मिला उसने सताया
सभी ने रक्त के आँसू रुलाया अधूरी देह....[8]

सचमुच ये हिजड़े न स्त्री हैं, न पुरुष। वे बदतर जीवन बिताने को मजबूर हैं। उनकी इस अवस्था का वर्णन इन दो उपन्यासों में प्राप्त होता है। वे सही मायने में एक अधूरी देह ही हैं।

संदर्भ ग्रंथ:

1. यमदीप- नीरजा माधव, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली-2009, पृष्ठ सं. 12

2. वही- पृष्ठ सं. 50

3. वही- पृष्ठ सं. 114

4. वही- पृष्ठ सं. 114

5. तीसरी ताली- प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2011, पृष्ठ सं. 178

6. वही पृष्ठ सं. 165

7. वही पृष्ठ सं. 94

8. भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. सं. 5

– असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सरकारी संस्कृत महाविद्यालय,
तिरुवनंतपुरम-34, केरल

❑❑❑

सांस्कृतिक शब्दों के अर्थ-विस्तार की आवश्यकता

डॉ. महीपाल सिंह राठौड़

प्रो. जेनिश ने कहा था कि जो भाषा राष्ट्रभाषा (और फलतः राजभाषा) का स्थान ग्रहण करना चाहती हो, उसमें सभी प्रकार के विचार प्रकट करने के लिए अवकाश होना चाहिए।

आजकल संसार में जो भाषाएँ आदर्श रूप में समुन्नत तथा समृद्ध मानी जाती हैं, उन सबकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उनके शब्द-कोशों में प्रत्येक शब्द का बहुत ही वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप से सीमाबद्ध और स्पष्ट निरूपण होता है, ऐसा निरूपण होता है कि उसे एक बार अच्छी तरह देख लेने पर उसके अर्थ तथा प्रयोग के संबंध में किसी प्रकार के भ्रम या संदेह के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता।

हम हिंदीभाषियों का भी यह प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए कि हम हिंदी शब्दों का ठीक और पूरा अर्थ-विवेचन करके उसे भी ऐसे उच्च स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न करें कि वह भी उन्नत भाषाओं के वर्ग में गिनी जाने लगे।[1]

कोशों का मुख्य उपयोग शब्दों के ठीक-ठीक अर्थ तथा आशय जानने के लिए ही होता है। अतः अर्थ और विवेचन ऐसे होने चाहिए जो जिज्ञासुओं का पूरी तरह से मनस्तोष कर सकें, उनकी शंकाओं का समाधान कर सकें और उन्हें शब्दों की आत्मा से परिचित कराकर यह बतला सकें कि उनका प्रयोग किन अवसरों या स्थलों पर अथवा कैसे होना चाहिए। हिंदी में सबसे पहला काम 'हिंदी शब्द सागर' में हुआ था।

मानक हिंदी कोश के संपादक ने अपने निवेदन के अंत में लिखा है– "अब इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों, उनका संशोधन तथा सुधार आने वाली पीढ़ियाँ करेंगी।" प्रस्तुत शोध पत्र में मानक हिंदी कोश और राजस्थानी शब्द कोश में राजस्थानी संस्कृति संबंधी किए गए अर्थ का विश्लेषण किया जाएगा।

शब्द – मारवाड़

अर्थ – पु. (सं. मरूवर्त) मेवाड़ प्रदेश 2. मेवाड़ और उसके आस-पास के अनेक प्रदेश जो अब राजस्थान के रूप में परिणत हो गए हैं।[2]

शब्द – मारवाड़

अर्थ – सं. पु. (सं. मरूपाट, प्रा. मरूआड) राजपुताने का वह प्रदेश जहाँ राठौड़ों का राज्य था।[3]

शब्द जौहर–

अर्थ – जौहर – आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए की जाने वाली आत्महत्या।[4]

अर्थ – राजपूत स्त्रियों द्वारा अपनी सेना की हार व आततायियों से अपने धर्म की रक्षार्थ किया जाने वाला सामूहिक आत्म-दहन।[5] इस प्रकार के आत्मदहन हेतु बनाई गई चिता।[6] आततायी शासन के विरुद्ध किया जाने वाला आत्म-दहन।[5]

शब्द – मेवाड़

अर्थ – पु. (देश) 1. आधुनिक राजस्थान का एक प्रसिद्ध भू-भाग जो मध्यकाल में एक स्वतंत्र राज्य था। महाराणा प्रताप यहीं का राजा था।[6]

शब्द – मेवाड़

अर्थ – सं. पु. (सं. मेटपाट) 1. राजस्थान में चित्तौड़, उदयपुर तथा उसके आस पास का प्रदेश।[7]

शब्द – मेवात

अर्थ पु. (सं.) राजस्थान और सिंध के बीच में प्रदेश का पुराना नाम[8]

शब्द – मेवात

अर्थ – सं. पु. – राजस्थान में अलवर के आस-पास का भू-भाग, जहाँ मेव-मुसलमान बहुतायत से आबाद हैं। (सभा)[9]

'मारवाड़' शब्द का अर्थ मानक हिंदी कोश में 'मेवाड़' किया गया है जो कि उचित नहीं है। मारवाड़ और मेवाड़ राजस्थान की दो स्वतंत्र रियासतें रही

हैं जिनके इतिहास को कौन नहीं जानता! मारवाड़ शब्द का अर्थ मानक हिंदी कोश में जो दिया गया हैं, उसे राजस्थानी शब्द कोश में जो अर्थ दिया गया है आधार पर संशोधित किया जाए।

इसी तरह मेवाड़ शब्द का जो अर्थ किया गया है वह अपने आप में अधूरा है। इस संबंध में राजस्थानी शब्द कोश ने जो अर्थ किया है उसका अनुसरण किया जा सकता है।

अर्थ के अंत में यह लिखना कि 'महाराणा प्रताप यहीं' का शासक था। उचित नहीं है। मध्यकाल के इतिहास में मेवाड़ ही एकमात्र राज्य था जिसने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की इसलिए स्वतंत्रता के महानायक महाराणा प्रताप के लिए यह लिखना कि महाराणा प्रताप यहीं का राजा था, उनके उदात्त जीवन-मूल्यों का अपमान हैं।

इसी तरह 'मेवात' शब्द का जो अर्थ किया गया है, वह भी उचित नहीं हैं। मेवात शब्द का अर्थ राजस्थानी शब्दकोश के अनुसार किया जाए तो ठीक हो सकता है। इसी प्रकार ज्वलंत शब्द 'जौहर' का अर्थ शब्दकोशों में सही नहीं हैं। मानक हिंदी कोश ने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए की जाने वाली आत्महत्या और राजस्थानी शब्दकोश ने आततायी शासन के विरुद्ध किया जाने वाला आत्मदहन बताया है, ये दोनों ही अर्थ भ्रामक हैं। आत्महत्या कायरता का कार्य हैं। इसके लिए आत्मोत्सर्ग - पु. (सं. आत्म-उत्सर्ग, प. त.) दूसरे के हित के लिए अपने आपको पूरी तरह से लगा देना; या आत्म बलिदान शब्द लिखा जाता तो उचित रहता।[10]

शब्द - साका

अर्थः- पु. (सं. शाका) ख्याति, प्रसिद्धि, कीर्ति, यश 1 बड़ा काम जिससे कर्ता की बहुत कीर्ति हो[11]

शब्द-: साकौ -

अर्थः- पु. 1. महायुद्ध 2. यश, कीर्ति, प्रसिद्धि 3. अवसर, मौका 4. धाक, रौब 5. यश का कार्य करने वाला[12]

साका शब्द का अर्थ मानक हिंदी कोश और राजस्थानी कोश में स्पष्ट नहीं दिया गया है। जबकि यह शब्द राजस्थान के इतिहास और संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। साका का अभिप्राय हैं कि शत्रु सेना से अंतिम निर्णायक युद्ध जिसमें

योद्धा केसरिया बाना पहनकर व कसूमा की मनुहार कर तुलसी, गंगाजल का आचमन कर शत्रु सेना पर टूट पड़ते हैं और महिलाएँ जौहर करती हैं। ऐसे महत्वपूर्ण शब्दों का भी शब्दकोशों में अर्थ-विस्तार न देना हमारी संकुचित मानसिकता का प्रदर्शन करता हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे महत्वपूर्ण शब्दों की नए सिरे से व्याख्या की जाए और हमारे सांस्कृतिक शब्दों की शब्दावली का निर्माण किया जाए।

समय के साथ शब्दों के अर्थ का विस्तार और व्याख्या आवश्यक है। तभी भाषा बहता हुआ नीर बन पाएगी और आम जन की अभिव्यक्ति में सफल होगी।

संदर्भः-

1. मानक हिंदी कोश, पहला खंड, प्रधान संपादक रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् 1991, पृ. आरंभिक निवेदन

2. मानक हिंदी कोश, संपादक रामचंद्र वर्मा, चौथा खंड, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण सन् 1991 ईस्वी, पृ. 347

3. राजस्थानी सबद कोस, संपादक सीताराम लालस, चौपासनी शिक्षा समिति जोधपुर, तृतीय खंड पृ. 3712

4. मानक हिंदी कोश, प्रधान संपादक रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् 1991, दूसरा खंड पृ. 391

5. राजस्थानी हिंदी संक्षिप्त शब्दकोश, सं. पद्मश्री सीताराम लालस, प्रथम खंड, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, सन् 1986, पृ. 489

6. मानक हिंदी कोश, चौथा खंड, प्रधान संपादक रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् 1991, पृ. 415

7. राजस्थानी सबद कोस, तृतीय खंड, संपादक सीताराम लालस, चौपासनी शिक्षा समिति जोधपुर, पृ. 3882

8. मानक हिंदी कोश, चौथा खंड, प्रधान संपादक रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सन् 1991 पृ. 415

9. राजस्थानी सबद कोस, तृतीय खंड, पृ. 3712 संपादक सीताराम लालस, चौपासनी शिक्षा समिति, जोधपुर, पृ. 3882

10. मानक हिंदी कोश, पहला खंड, पृ. 262

11. मानक हिंदी कोश, प्रधान संपादक रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सन् 1991, पाँचवाँ खंड, पृ. 330

12. राजस्थानी हिंदी संक्षिप्त शब्दकोश, सं. पद्मश्री सीताराम लालस द्वितीय खंड, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, सन् 1987, पृ. 760

– असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

❑❑❑

वर्तमान परिदृश्य में नीति कवि रहीम

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

अकबरी दरबार के नौ रत्नों में से एक नीतिकार कवि रहीम का जन्म एक मुस्लिम परिवार में 17 दिसंबर, 1556 ई. को लाहौर में तथा मृत्यु अप्रैल 1627 ई. को दिल्ली में हुई थी। रहीम अकबर के अभिभावक इतिहासप्रसिद्ध बैरम खां के पुत्र थे। रहीम की यश-ध्वजा जो आज भारतीय गगन-मंडल में पूर्ण सम्मान के साथ फहरा रही है, इनमें कई अन्य कारणों में से एक उनकी साहित्य-साधना भी है। इनमें काव्य-प्रतिभा जन्मजात थी। इनके संपूर्ण काव्य में कहीं भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय एकता का मधुर वंशीरव श्रवण करने को मिलता है तो कहीं वे संसार के अनुभव को व्यक्त करते हुए नजर आते हैं, कहीं मधुर-हास्य के दर्शन होते हैं, तो कहीं शृंगार के प्राधान्य की झलक दृष्टिगोचर होती है। मानसिक स्तर पर रहीम जितने मर्मज्ञ कवि, बहुभाषाविद् और बहुज्ञ थे; भौतिक स्तर पर उनका जीवन उतना ही व्यस्त तथा महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों से भरा हुआ था।

हिंदी के कवियों में रहीम एक ऐसे कवि हैं जिनका कार्यक्षेत्र एवं जीवन-अनुभव अति विस्तृत और व्यापक था। कोई दूसरा कवि इतने विशद क्षेत्र का दावा नहीं कर सकता। राजदरबार के शीर्ष पदों पर काम करनेवाला, किशोरावस्था से वृद्धावस्था तक युद्ध क्षेत्र में जूझनेवाला, राजनीति के क्षेत्र में अपकर्ष की ठोकरे खानेवाला तथा व्यावहारिक जगत में कड़वे-मीठे अनुभवों से लबालब रहने वाला शायद दूसरा कोई कवि हो। यह सौभाग्य तो मात्र एक खानखाना अर्थात् रहीम का है। अपने इसी विशद अनुभव-क्षेत्र की अनुभूति को कवि ने अपने रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। अपनी काव्य रचनाओं द्वारा

रहीम ने बहुमुखी प्रतिभा का प्रदर्शन तो किया है, किंतु कोई भी रचना पूर्णत: प्राप्त नहीं हो पाई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान पर युद्ध के लिए जाते रहने से इनके द्वारा लिखी हुई पांडुलिपि एक जगह एकत्रित नहीं हो पाई या व्यस्तता के कारण ये अपनी रचनाओं को पूर्ण नहीं कर सके। रहीम की रचनाओं के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन सभी संग्रहों में से पंडित मायाशंकर याज्ञिक द्वारा संपादित "रहीम रत्नावली" और पं विद्यानिवास मिश्र एवं गोविंद रजनीश द्वारा संयुक्त रूप से संपादित 'रहीम ग्रंथावली' को विद्वानों ने सर्वाधिक प्रामाणिक और श्रेष्ठ माना है। वस्तुत: ये दोनों संग्रह कमोबेश रहीम की संपूर्ण रचनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन दोनों में रहीम के नाम से उपलब्ध प्रमुख रचनाएँ हैं- सतसई या दोहावली, नगर शोभा, श्रृंगार सोरठा, बरवै, मद्नाष्टक, खेट कौतुक जातकम, फुटकर पद आदि। इसके अतिरिक्त रहीम द्वारा संस्कृत काव्य और शतरंज के खेल पर एक पुस्तक और 'रासपंचाध्यायी' लिखे जाने का भी उल्लेख मिलता है। किंतु ये दोनों रचनाएँ अनुपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त रहीम ने फारसी भाषा में 'फारसी दीवान' नामक कृति की रचना की, जो उनकी काव्य-मर्मज्ञता का परिचायक है। रहीम ने बाबर द्वारा तुर्की भाषा में लिखी जीवनी 'तुजुके बाबरी' का 'वाकेयात बाबर' शीर्षक से फारसी में अनुवाद भी किया है।

दोहा लेखन में कबीर, तुलसी और बिहारी का प्रमुख स्थान है। रहीम भी अपने सरस, मधुर एवम् अनुभवजन्य भाव-संप्रेषण के आधार पर इस पंक्ति में सम्मिलित होने की क्षमता रखते हैं। रहीम के दोहे चाहे अलंकार योजना एवं पिंगल विचारों से दोषपूर्ण हों, किंतु सत्यता एवं अनुभव के सरस रस से लबालब भरे होने के कारण हृदय पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं। वे मात्र कुछ क्षणों के लिए ही मस्तिष्क को क्रियाशील होने के लिए बाध्य कर विस्मृति के गर्भ में नहीं चले जाते अपितु हृदय पर सदैव अपना प्रभाव बनाकर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। यही इनके दोहे की सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी रचना लोक-व्यवहार और नीति-विषयक परामर्शों से युक्त होने के कारण सामान्य जन का कंठहार बन गई है। सूक्ति की परंपरा प्राचीन भारतीय साहित्य से ही चली आ रही है। यह सूक्ति जब जीवन की गहन अनुभूति और निरीक्षण से उभरती है तो सटीक होती है और तब वह जीवन की स्मृति का ही नहीं बल्कि उसकी बुद्धि और प्रज्ञा का भी

अंग बन जाती है। ऐसी सूक्तियों को व्यक्ति केवल याद ही नहीं रखता बल्कि उन्हें जीता है, उनसे प्रेरित होकर अपने कर्तव्य का निर्धारण करता है। दोहावली में प्रयुक्त रहीम की सूक्तियों की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उनके सारे दृष्टांत या तो पुराणों से लिए गए है या फिर सामान्य जीवन से जिनमें मौलिकता विद्यमान है। इन सूक्तियों के माध्यम से कवि की सच्ची अनुभूति भी जगजाहिर होती है।

कवि की सच्ची अनुभूति का परिचय पाने की दृष्टि से 'दोहावली' के प्रत्येक दोहे का विशिष्ट महत्व है। इसका आरंभ 'गंगा' की स्तुति से हुआ है। तत्पश्चात् नीति-उपदेश के अंतर्गत जीवन की अस्थिरता, अधैर्य, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्रिपुओं के कुप्रभाव और मान-मर्यादा आदि को वर्णित किया गया है। मनुष्य जिस समाज में रहता है, उसकी सम-विषम परिस्थितियों में उसे किस प्रकार रहना चाहिए, यह नीतिकाव्यकार कवि का उद्देश्य होता है। रहीम ने भी अपनी रचनाओं में सामाजिक परिस्थितियों का अंकन कुशलतापूर्वक किया है। वृद्धावस्था में विवाह करने का इच्छुक तथा खिजाब द्वारा बालों को काला करनेवाले बूढ़ों पर करारी चोट करते हुए रहीम ने लिखा है-

रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुँह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को ब्याह।।

समाज और जीवन में धन का अत्यधिक महत्व है। माना जाता है कि धन वह तत्व है जो प्रायः खल मनुष्यों के पास ही एकत्रित रहता है। अरबी-फारसी पर समान अधिकार रखने वाले सुप्रसिद्ध कवि शाहिद ने दावा किया था कि संसार का कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति धन-संपदा पर सुखी नहीं मिलेगा। उनका मत है कि ज्ञान और धन नरगिस और गुलाब के समान हैं। ये दोनों एक स्थान पर तथा एक ही साथ विकसित नहीं हो सकते। ज्ञानवानों के पास धन नहीं रहता और धनवानों के पास ज्ञान नहीं होता। भारतीय परंपरा में भी लक्ष्मी और सरस्वती में बैर प्रसिद्ध है। लक्ष्मी चपला होती है, वह एक ही स्थान पर टिककर नहीं रहती क्योंकि वह पुरुष पुरातन (बूढ़े) विष्णु की युवती पत्नी है। इस युवती की कृपा कटाक्ष प्राप्त करने वाले धनवान उसे अपनी समझने का भ्रम पाल लेते हैं। इसलिए उनकी दुर्गति होती है-

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय।

रहीम ने धन की आवश्यकता का भी वर्णन किया है। यह तथ्य उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिनों में नितांत निर्धनता का जीवन बिताते हुए सही तरीके से हृदयंगम कर लिया था। उनका मानना था कि अपनी संपत्ति के बिना कोई भी किसी निर्धन की सहायता नहीं कर सकता, भले ही वह उसका परम हितैषी ही क्यों न हो। आपत्ति के समय तो धन ही सबसे बड़ा सहारा होता है। जिस तरह जल के अभाव में सूर्य भी कमल की रक्षा नहीं कर पाता जबकि सूर्य कमल का परम मित्र है, उसी तरह संपत्तिहीन जीवन वैसा ही निष्प्रभ होता है, जैसा दिन में दिखाई देनेवाला चंद्रमा-

संपत्ति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहि।

समय की गति बड़ी विचित्र होती है। अच्छा समय कब बुरे समय में बदल जाए पता ही नहीं चलता। इसको रहीम ने बड़ी अच्छी तरह जाना एवं समझा था क्योंकि उनके पिता बैरम खां के साथ भी ऐसा ही हुआ था। इसलिए रहीम ने कुसमय का वर्णन करते हुए कहा है कि जब कुसमय आता है तो वह सभी कुछ नष्ट कर देता है। उसके आने पर जोड़ी हुई अगाध संपत्ति उसी प्रकार अदृश्य हो जाती है जिस प्रकार प्रभात आने पर आकाश में चमकते हुए असंख्य तारे छिप जाते हैं। अच्छे समय पर जिस दोस्त ने अपनी जान की बाजी लगाकर रक्षा की थी, वही कुसमय आने पर शत्रु बन जाता है। जैसेकि जो सुंदरी सायंकाल में दीपक को जलाकर आंचल की ओट से उसकी रक्षा करती है, कुसमय आने पर वही स्त्री प्रातः उसी आंचल की झपक से दीप को बुझा देती है।

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट कि चोट।।

नीच के संग का ही दूसरा नाम कुसंगति है। कुसंग में लिप्त होने का परिणाम तो बुरा होता ही है बल्कि उसके संसर्ग मात्र से ही व्यक्ति अपयश का पात्र हो जाता है। दूध जैसी पुनीत वस्तु को भी यदि मदिरा बेचनेवाली के घड़े में रख दिया जाए तो लोग उसे मदिरा ही समझेंगे।

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।

दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि।।

रहीम ने कुसंगति के वर्णन में सत्संगति की महिमा को प्रकारांतर से बताया है। जो व्यक्ति अलग स्वभाव के होते हैं, उसका कुसंगति भी कुछ नहीं बिगाड़ सकती और जो संस्कारहीन है, सत्संगति उसे प्रभावित नहीं कर सकती। ठीक उसी तरह जिस तरह चंदन के वृक्ष पर विषधर सर्प लिपटे रहते हैं, किंतु उनका चंदन के वृक्ष पर कोई प्रभाव नहीं दिखता।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।

चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।

रहीम ने 'दोहावली' में नीति-उपदेशों के बीच-बीच में विरह और प्रकृति के दृश्यों को भी सुंदर तरीके से उकेरा है। इसमें रहीम ने नीति का वर्णन केवल कोरी शिक्षा के रूप में न करके जीवन की मार्मिक परिस्थितियों के रूप में चित्रित करके किया है। उन्होंने दान-मान, सुसंग-कुसंग, सज्जन-दुर्जन आदि पूर्व-विवेचित विषय-परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसे घोर धार्मिकता एवं शास्त्रीयता के वातावरण से मुक्त करके क्रियात्मक जीवन के आधार पर प्रस्तुत किया है।

जो पुरुषार्थ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।

पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम।

परिचय, घनिष्ठता एवं मित्रता हमारे सामाजिक मेलजोल के क्रमिक विकास हैं। उस शृंखला की अंतिम परिणति ही प्रेम है। प्रेम का संबंध तृप्ति से है। 'प्रीणा प्रीति प्रिय:' अर्थात प्रेम तृप्तिकारक है, जो किसी वस्तु, विषय, प्राणी आदि के दर्शन या स्पर्श के फलस्वरूप होता है। प्रेम भाव सर्वोपरि भाव है। अत: अन्य कवियों की भाँति रहीम ने भी इसका अधिक वर्णन किया है। रहीम के अनुसार आदर्श प्रेमी वही है जो अपने प्रेमालंबन के बिछुड़ने पर अपने प्राणों को त्याग देता है।

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।

जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भ्रमर को जाय।।

यह तो प्रेम का आदर्श रूप है। किंतु आज संसार में ऐसा प्रेम नहीं होता। आज तो समाज का प्रेम स्वार्थों पर टिका हुआ है जो कभी अत्यधिक प्रगाढ़ हो

जाता है तो कभी तुरंत टूट जाता है। रहीम का कहना है कि कभी भी प्रेम को मत तोड़ो क्योकि टूटने पर जुड़ता नहीं है और यदि जुड़ता हैं तो वह गाँठ-गठीला हो जाता है।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना जुरे, जुरे गाँठ परि जाय।

रहीम प्रेम के पथ को अत्यधिक कठिन मानते है। उनका मानना है कि प्रेम का रास्ता अत्यधिक परेशानी से भरा हुआ होता है जिसमें बहुत धैर्य की आवश्यकता है। इस पथ पर चलने के बाद रुकना अपने आपको डुबाना है। इस रास्ते की फिसलन कुछ ऐसी विचित्र है कि सावधानी से चलने पर तो भारी से भारी बोझ को लेकर चला जा सकता है किंतु जैसे ही असावधानी हुई कि चींटी के पैर भी फिसल जाते हैं।

रहिमन पैंडा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलिका, लोग लदावत बैल।

जिसके हृदय में एक बार प्रेम की अग्नि सुलग जाती है, उसके हृदय में कोई और आग जल ही नहीं पाती। इसलिए प्रेम पात्र का सान्निध्य मिलने से ढाक के तीन पात भी कल्पवृक्ष एवं स्वर्ग-सा सुख प्रदान करते हैं।

कहा करौ बैकुंठ ले, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बाँह।

मुसलमान होते हुए भी रहीम ने हिंदू देवी-देवताओं को अपनी भक्ति का आधार बनाकर समाज में आदर्श स्थापित करने का कार्य किया है। धर्म निरपेक्षता के वर्तमान युग में उसकी आवश्यकता और भी अधिक दिखाई देती है। दोहावली में रहीम ने अपने नीति वचनों के साथ राम और कृष्ण की बात की है। उनके अनुसार जब मनुष्य पर राम और कृष्ण जैसे इष्टदेव का आशीर्वाद है, तो उन्हें किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। अपनी भक्ति-भावना को पुष्ट करने के लिए उन्होंने पौराणिक आधारों को समन्वित किया है। भगवान की उदारता की बात लिखते हुए उन्होंने कहा है कि संसार के लोग समय, दशा, कुल देखकर सम्मान करते हैं लेकिन भगवान के पास ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी शरण में जो भी जाता है, सहारा एवं आशीर्वाद पाता है चाहे वह दीन-अनाथ हो

271 CHD / 2018—7A

समय दस कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान।

श्रीराम की भक्तवत्सलता का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है कि गौतम मुनि की पत्नी अहिल्या शिला थी, हनुमान पशु थे और निषाद राज चांडाल। श्रीराम ने दयालुता का परिचय देते हुए कहा कि ये तीनों मेरे ही अंग हैं, क्योंकि मुझमें पत्थर जैसी जड़ता है, पशु जैसा पशुत्व है और निषाद जैसा चांडालत्व है, अतः मैं इन तीनों का उद्धार नहीं कर रहा हूँ बल्कि स्वयं का उद्धार कर रहा हूँ।

मुनि-नारी पाषान ही, कपि पसु गुह-मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग।

रहीम ने दोहावली में जिन विषयों का प्रमुख रूप से चयन किया, उनमें लोकादर्श, प्रकृति, भक्ति, राजनीति और जीवनानुभव प्रमुख हैं। रहीम ने अपनी रचनाओं में प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों को चित्रित किया है। रहीम ने प्रकृति के आलंबन रूप के द्वारा जो चित्र प्रस्तुत किया है वह भी आलंबन के साथ अन्य भाव की व्यंजना करते हैं।

दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माँही।
रहिमन चातक रटनि हूँ, सरवर को कोऊ नाहिं।

उपर्युक्त पंक्तियों में रहीम ने बताया है कि किस तरह आकाश में उमड़ते हुए बादल को देखकर मेंढक, मोर और किसान का मन जल-प्राप्ति की आशा से प्रफुल्लित हो उठता है और चातक का मन स्वाति-बूंद के लिए तड़पने लगता है। ये सभी बादल से ही जल पाने की आशा करते हैं, सरोवर के जल से इनका कोई प्रयोजन नहीं है। इसका भाव यह है कि जो जिस पर आसक्त होता है, वह उसे ही चाहता है, उसे छोड़कर अन्य किसी को नहीं चाहता। संयोग में प्रकृति की नगण्य वस्तु भी परम सुखदायक होती है, वहीं वियोग में कल्पवृक्ष और बैकुंठधाम भी अच्छा नहीं लगता -

कहा करौ बैकुंठ लै, कल्पवृच्छ की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बाँह।

रहीम का भाषा पर अधिकार तुलसी के समान है। अन्य समकालीन कवियों की तरह रहीम ने भी ब्रजभाषा की कोमल, मधुर एवं सरस प्रवृत्ति को

271 CHD / 2018—7B

अपने काव्य के लिए चुना है। इनकी भाषा में समासहीन सरल पदों की प्रचुरता है। इन्होंने छोटी-छोटी शब्दावलियों का प्रयोग कर अपने भावों को अत्यंत सहजता और सरलता से व्यक्त किया है। रहीम ने जहाँ कहीं भी अपनी रचनाओं में अलंकार का प्रयोग किया है- वह चमत्कारिक न होकर भाव को बढ़ानेवाला है। इसके लिए रूपक अलंकार का एक उदाहरण देखा जा सकता है-

कहाँ रहीम इक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय।।

इस तरह कहा जा सकता है कि हिंदी के कवियों में रहीम एक ऐसे कवि हैं जिनका कार्यक्षेत्र एवं जीवन अनुभव अतिविस्तृत और व्यापक था। कोई दूसरा कवि इतने विशद क्षेत्र का दावा नहीं कर सकता। रहीम मध्ययुग के जाज्वल्यमान साहित्यिक नक्षत्र हैं। उन्होंने जिस व्यस्त जीवन तथा विरोधी कार्य-व्यापार में संलग्न रहते हुए भगवती भारती की आराधना की, वह न केवल सराहनीय, अपितु स्तुत्य है। इनके प्रश्रय में दो विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं-हिंदू तथा मुस्लिम, फारसी तथा संस्कृत का ऐसा समन्वय हुआ कि इस सरिता का जल आज भी भारत के हृदय को अभिसिंचित कर रहा है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी, भक्त, दानी और भाषाविद् कवि रहीम ने भारतीय जनता में तत्कालीन समय से आजतक जितना सम्मानपूर्ण स्थान बना रखा है, वे भविष्य में भी भारतीय गगन-मंडल में उस प्रताप से प्रकाशित होते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ

1. रहीम रत्नावली : संपा. मायाशंकर याज्ञिक : साहित्य सेवा सदन : काशी

2. रहीम रचनावली : डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

3. रहीम काव्य का समाज-शास्त्रीय अध्ययन : डॉ. मंजू शर्मा : साहित्य रत्नालय, कानपुर

4. हिंदी नीति-काव्य : डॉ. भोलानाथ तिवारी : विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

5. हिंदी के लोकप्रिय कवि : रहीम - संपा. सुदर्शन चौपड़ा, सरस्वती विहार, नई दिल्ली

6. खानखानानामा : मुंशी देवी प्रसाद, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता

7. अब्दुर्रहीम खानखाना : शेख सलीम अहमद खुसरो, किताब घर, दिल्ली

8. रहीम सतसई में बिंब-योजना : डॉ. आलोक रंजन पांडेय, हस्ताक्षर प्रकाशन, दिल्ली

– असिस्टेंट प्रोफेसर, रामानुजन कॉलेज, कालकाजी, नई दिल्ली

❑❑❑

विज्ञापन और उपभोक्तावाद

डॉ. साधना शर्मा

सूचना तकनीक के क्षेत्र में शांति और भूमंडलीकरण का आरंभ एक साथ ही हुआ है। इसके साथ ही उदारीकरण का दौर शुरू हुआ जिसने उदारीकरण के नाम पर मुक्त बाजार के विचार को सारी दुनिया में फैला दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि ये तीनों परिघटनाएँ एक ही कड़ी से जुड़ी हुई है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के बाद संपूर्ण विश्व की आर्थिक व्यवस्थाओं में जो अभूतपूर्व परिवर्तन स्थापित हुआ, उसके प्रभाव से भारतीय बाजार की अर्थव्यवस्था का मूल एजेंडा अधिक से अधिक लाभ कमाना था और संपूर्ण विश्व के बाजारों ने इसके द्वारा भरपूर मुनाफा कमाया। भारत ने भी इसी रास्ते पर चलकर अपनी क्षमता के अनुरूप फायदा उठाया। यह तथ्य स्वयंसिद्ध है कि मुक्त बाजार व्यवस्था में व्यवसाय और औद्योगिक क्षेत्रों का खूब विकास हुआ। सारी दुनिया के बाजारों के लिए भी भारत के दरवाजे खोल दिए गए। विविध प्रकार के उत्पादों और उनके नए-नए ब्रांडों से भारतीय बाजार पट गए। ऐसी स्थिति में चयन की समस्या उपभोक्ता के लिए पैदा होती है कि वह कौन-सी वस्तुएँ खरीदें और कौन-सी छोड़ दें, इसी प्रकार उत्पादक के सामने अपनी वस्तुओं को अधिकाधिक मात्रा में बेचकर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने की आकांक्षा रहती है। इन दोनों को ही किसी ऐसे माध्यम की जरूरत थी, जो उनके मध्य सेतु का काम करे। ऐसे में विज्ञापन ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

विज्ञापन आज की बाजारवादी अर्थव्यवस्था की जरूरत पूरी करने के लिए बहुत आवश्यक है। विज्ञापन लंबे समय से समाज के अलग-अलग वर्ग के लोगों के लिय चयन प्रक्रिया में सहायक रहा है और उत्पादों से संबंधित जानकारी उपलब्ध करने का एक सशक्त उपादान रहा है। वास्तव में विज्ञापन एक

उत्साहयुक्त, गतिशील एवं चुनौतीपूर्ण उद्यम है, जो उद्योग एवं व्यवसाय के लिए अनिवार्य है। विज्ञापन सामान को बेचने, सेवाओं की सूचना देने एवं चित्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने तथा विचारों को सूचना के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने का एक शक्तिशाली माध्यम है। यहाँ यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि विज्ञापन के माध्यम से किसी वस्तु की बिक्री नहीं की जाती, अपितु यह वस्तु को बेचने में 'सहायक' मात्र होता है। यह वस्तुओं और उत्पादों की सूचना देने और इनकी मार्केटिंग करने की एक प्रणाली मात्र है, न कि बेचने का एक साधन।

जनसंचार माध्यमों तथा मुक्त बाजार ने विज्ञापन के कार्यव्यापार को अद्भुत विस्तार दिया है। इसने भारत जैसे देश में जहाँ कम से कम वस्तुओं का संग्रह, इच्छाओं पर नियंत्रण तथा भौतिक सुखों के प्रति आकर्षण या मोह-त्याग का आदर्श स्वीकार किया जाता था; एक नई संस्कृति को जन्म दिया है और वह है भोग की संस्कृति। वस्तुत: विज्ञापन एक ऐसी कुशल रणनीति के तहत काम करता है जो सामान्य ग्राहक को उपभोक्ता के रूप में परिवर्तित होने के लिए विवश कर देता है। यहाँ उपभोक्ता और सामान्य ग्राहक के अंतर को समझना भी अनिवार्य है। सामान्य ग्राहक वह है जो अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए किसी वस्तु को खरीदता है, जबकि उपभोक्ता अपनी इच्छा को संतुष्ट करने के लिए बाजार में उपलब्ध अनेक उत्पादों में से किसी एक को लेता है और यदि उपभोग के बाद वह उसे अच्छी लगती है तो वह सदा के लिए उस उत्पाद से जुड़ जाता है।

जब हम भारत के संदर्भ में उपभोक्ता संस्कृति की बात करते हैं तो हम यह मान कर चलते हैं कि संस्कृति मानव-स्वभाव का मूलभूत आधार है। संस्कृति ही वह विशेषता है जो मनुष्य को अन्य जीवधारियों से भिन्न करती है। संस्कृति ही मनुष्य को आचार-व्यवहार, उचित-अनुचित तथा जीवन-मूल्यों के निर्धारण की शिक्षा देती है। परंतु आधुनिक समाज इस पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों को लेकर निर्मित होने वाले समाज से भिन्न है। इस समाज में एक ऐसा वर्ग है जो औद्योगिक क्रांति के बाद पैदा हुआ और जिसका विकास सूचना तकनीक के युग में हुआ है। जनसंचार माध्यमों के द्वारा प्रचारित और प्रसारित वैश्विक संस्कृति के परिणामस्वरुप एक नई संस्कृति का उदय हुआ, जो मीडिया संस्कृति या पॉपुलर कल्चर के रूप में जानी जाती है और जिसके उद्भूत होने में विज्ञापनों की भी भूमिका रही है। सांस्कृतिक स्तर पर विज्ञापनों ने हमारी जीवन-शैली को

बदला जिनका संबंध खान-पान, रहन-सहन तक सबको समेटे हुए था। विज्ञापन के मायाजाल से निकली 'टू मिनट्स मैगी नूडल्स' हो या थर्टी मिनट्स में आपके घर तक पहुँच जाने वाला 'डोमिनोज पिज़्जा', सबने ऐसा फँसा दिया कि बच्चे अब दाल-रोटी खाना ही भूल गए हैं। ये विज्ञापन पेट भरने या भूख के लिए खाना खाने की जरूरत से नहीं, 'टू मिनट्स' और 'थर्टी मिनट्स' नहीं तो वरन हमारे पहनावे तक का निर्णय कर रहे हैं। विवाह के अवसर पर बेटी कैसे बाल बनाएगी, कैसे सजेगी, यह कोई ब्यूटी पार्लर तय करेगा। कौन से कपड़े पहनेगी, इसकी सलाह भी कोई बड़ा डिजाइनर देगा। भारतीय व्रत त्योहार भी अपने पारंपरिक स्वरूप को छोड़कर बाजार के इशारों पर चलने लगे हैं। करवा चौथ जैसा पारंपरिक त्योहार जो महिलाओं के सतीत्व और पति के प्रति प्रेम का प्रतीक है, विज्ञापनों की चकाचौंध से जगमगा रहा है। सास के प्रेम का प्रतीक बहू को सुबह-सुबह खाने के लिए दिया जाने वाला भोजन (सरगी) भी बड़ी-बड़ी मिठाई की दुकानों में सजे हुए खाद्य-पदार्थों की छाया में उपभोग सामग्री के नवीन रूप में उपस्थित हुआ है। यह सब बाजारवाद और विज्ञापन के बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न उपभोक्तावाद के कुछ नमूने हैं।

वस्तुत: विज्ञापन उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने के लिए लोगों के बीच अधिकांशत: उन चीजों की मांग सृजित करते हैं, जिनकी जरूरत आमतौर पर उपभोक्ताओं को नहीं होती। परंतु हम देखते हैं कि बाजार व्यवस्था में विज्ञापन वास्तव में ग्राहकों के लिए वस्तुओं की मांग सृजित करते हैं। जैसे घर में बनी नींबू की शिकंजी के स्थान पर 'तूफानी ठंडा थम्स अप' या 'कोका कोला' विज्ञापनों के द्वारा ही गर्मी में प्यास को बुझाने का माध्यम बनता है। इसी प्रकार पहले डियोडरेंट के बारे में 1919 तक कोई जानता नहीं था, परंतु जब एक विज्ञापन द्वारा यह संदेश दिया गया कि आपके शरीर से एक दुर्गंध निकलती है जिसे महिलाएँ पसंद नहीं करतीं, अत: ये डियोडरेंट लगाओ; तो स्वयं महिलाओं ने भी इसका प्रयोग किया। इस विज्ञापन ने एक ओर नई वस्तु की जरूरत और मांग को पैदा किया तो दूसरी ओर इस विज्ञापन में भी 112% बढ़ोतरी हुई। लंदन टाइम्स के संपादक एफ.पी. बिशप ने उपभोक्तावाद को पैदा करने में सहायक विज्ञापन की भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा कि "वह आवश्यक इच्छाएँ जगाता है, उपभोक्ता को गुमराह करता है तथा उपभोक्तावाद को बढ़ावा देता है।"

आज के युग में विज्ञापन का अपना एक विशाल साम्राज्य निर्मित हो चुका है, जिसका संचालक वह स्वयं है। बाजारवाद के रथ पर चढ़ कर वह उपभोग की नई-नई दिशाओं में बे-रोक-टोक संचरण करता है और समाज पर अपनी ताकत की छाप छोड़ता चलता है। जनसंचार माध्यम चाहे प्रिंट-मीडिया हो या रेडियो-टी.वी.। सभी विज्ञापन के प्रसारण का माध्यम बनते हैं। जब भी रेडियो, टी.वी. चलता है उसके प्रत्येक कार्यक्रम के अनिवार्य अंग रूप में विज्ञापन भी आते हैं। ये विज्ञापन गीत, रंग, चित्र-भाव, विचार, अभिनय सभी को अपने कलेवर में समेटे रहते हैं। फलतः श्रोता/दर्शक उनके मोहजाल में फँस जाता है। ये विज्ञापन एक ओर हमारी रुचियों को निर्धारित करते हैं तो दूसरी ओर उनके अनुसार वस्तुओं का चयन करने के लिए दिशा-निर्देश भी देते हैं। विज्ञापन एक तरह से ग्राहक के मन-मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं। दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थॉमस गैरेट ने विज्ञापन की इस क्षमता के विषय में कहा था कि विज्ञापन के माध्यम से लुभाने की जो कोशिश की जाती है, उसका मकसद सहज बुद्धि को दरकिनार करना तथा तार्किकता को घटाना है।

यहाँ इस बात को समझना आवश्यक है कि वह कौन-सी विशेषता है जो एक सामान्य ग्राहक को उपभोक्तावाद की ओर ले जाती है। उपभोक्ता ऐसे लोग या लोगों का समूह होता है जो किसी भी वस्तु का संभावित ग्राहक हो सकता है और जो किसी वस्तु का उपयोग कर सकता है। ये वस्तुएँ उनकी जरूरत और इच्छाओं दोनों की पूर्ति करती है। इस प्रकार 'जरूरत' और 'इच्छाएँ' दो महत्वपूर्ण कारक हैं जो व्यक्ति को वस्तु खरीदने की प्रेरणा देते हैं। यह प्रेरणा विषयवस्तु के प्रति व्यक्ति के मन में इतनी प्रबल इच्छा जागृत करती है कि वह उस वस्तु को पाने के लिए अपनी संपूर्ण ताकत लगा देता है। विज्ञापन की भाषा में इसे उपभोक्ता का व्यवहार कहा जाता है। जब इच्छा का प्रदर्शन समाज में सामूहिक रूप से होता है तो वह उपभोक्तावाद कहलाता है। मोबाइल फोन का प्रचलन इसी प्रकार के प्रक्रिया-जनित उपभोक्तावाद का उदाहरण है जो उच्च वर्ग के बहुत अधिक व्यस्त लोगों द्वारा उपयोग किए जाने से आरंभ हुआ, परंतु अनेक मॉडल बाजार में आ जाने से व्यक्तिगत जरूरत की हदों को पार कर हर व्यक्ति के हाथ में पहुँच गया है। आज मोबाइल फोन उपभोक्तावाद का प्रतीक है। नए-नए फीचर्स से सज्जित मोबाइल आज केवल संदेश सुनने या विचार-विनिमय तक ही सीमित नहीं है वरन् उपभोक्ता को "कर लो दुनिया मुठ्ठी में" की शक्ति का भी एहसास कराता है।

तकनीक और माध्यमों के उदय से किसी वस्तु के गुणों और उपयोगिता के संबंध में जानकारी देने या प्राप्त करने के लिए किसी बाह्य साधन या अधिक साज-सज्जा युक्त प्रस्तुति की आवश्यकता नहीं थी। परंतु समय के बदलाव तथा उत्पादों की अधिकाधिक संख्या ने बाजारवाद की जो व्यवस्था खड़ी की है उसमें 'सूचना ही शक्ति' बनकर उभरी है। बाजार की यह सूचना हमें विज्ञापन के द्वारा प्राप्त होती है। विज्ञापन ग्राहक को नहाने का साबुन नहीं, रेशमी कोमल त्वचा का सपना भी बेचते हैं। इसी प्रकार चेहरे पर लगाने वाली क्रीम का विज्ञापन केवल चेहरे को ही नहीं सँवारता, उस लड़की के अंदर आत्मविश्वास को भी जगाता है, जो उसे एक बढ़िया नौकरी दिलाने में मदद करता है। इस विज्ञापन को देखकर भारत जैसे देश की लाखों युवतियों में इस क्रीम को लगाकर विज्ञापन की लड़की के समान कुछ कर गुजरने की चाहत उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार से विज्ञापन ग्राहक की भावनाओं को जगाता है, उन पर मनोवैज्ञानिक दबाव बनाता है, कल्पना और आभासी जगत की एक ऐसी तस्वीर खींचता है कि उपभोक्ता जरूरत न होने पर भी उस वस्तु को खरीद लेता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट है कि उपभोक्तावाद वैश्वीकरण और बाजारीकरण का मुख्य तत्व है। उपभोक्तावाद को फैलाने का प्रमुख साधन विज्ञापन है। भारत में भूमंडलीकरण और उदारवाद के कारण अपना वर्चस्व स्थापित करने वाला उपभोक्तावाद एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया का परिणाम है जो प्रत्येक चीज को उपभोग के योग्य मान कर चलती हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उस वस्तु के गुणों को बाजार में इस प्रकार प्रचारित किया जाए कि वह अपने आप को पूरी तरह से स्थापित कर सके। हल्दी, चंदन प्राचीन काल से ही मानव त्वचा की देखभाल के लिए बहुत अच्छे माने जाते थे परंतु हल्दी, चंदन युक्त आयुर्वेदिक क्रीम गुणों का विज्ञापन में इस प्रकार से बखान किया गया कि उपभोक्ता बाजार में इन्हें एक नवीन और विशिष्ट उत्पाद के रूप में स्थापित होने का अवसर मिल गया। विज्ञापनों द्वारा फैलाए गए उपभोक्तावाद की मूल प्रवृत्ति व्यावसायिक है। इसीलिए यह मनुष्य की प्राकृतिक और स्वाभाविक जरूरतों की परिधि से आगे बढ़कर उन वस्तुओं को योजनाबद्ध तरीके से उनके जीवन में आरोपित करता है, जो प्रचार के द्वारा उसके लिए जरूरी बना दी गई है। भारत जैसे विकासशील देश में यद्यपि उपभोक्तावाद के परिणामस्वरूप आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाने, रोजगार के नए-नए अवसर उपलब्ध कराने तथा लोगों की

आय में वृद्धि करने में सहायता मिली है किंतु मानव-मूल्यों, नैतिकता, ईमानदारी, त्याग आदि गुणों का तेजी से 'ह्रास' हुआ है जो लालच और प्रतिस्पर्धा की भावना को बढ़ावा देता है साथ ही आधुनिक जीवन शैली अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इस जीवन शैली के परिणामस्वरूप एक ऐसे वर्ग का उद्भव हुआ है जिसके लिए उपभोग ही जीवन है। उनके लिए सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार बाजार में उपलब्ध नए-नए उत्पादों का उपयोग करना है जो सामान्य तौर पर उनकी जरूरतों को पूरा करने का साधन नहीं है परंतु अन्य लोगों के सामने खुद को ऊँचा दिखाने, आधुनिक बनने और सामान्य ज्ञान प्राप्त करने की उनकी मनोवृत्ति का प्रदर्शक है। वस्तुओं के संकलन और संग्रह की प्रवृत्ति भ्रष्टाचार और अपराध को बढ़ावा देती है। अत: आवश्यक है कि उपभोक्तावाद को नियंत्रित किया जाए।

उपभोक्तावाद का एक और नकारात्मक पहलू यह भी है कि यह लोगों का भावनात्मक शोषण करता है और समाज में जिन्हें सॉफ्ट टारगेट माना जाता है, जैसे बच्चे और महिलाएँ- उन्हें अपना निशाना बनाता है। कार के विज्ञापन में कम नंबर लाने वाला बच्चा किस चतुराई से अपने पिता का ध्यान कार की स्मूथ ड्राइव की ओर मोड़ देता है, यह अन्य बच्चों के मनोविज्ञान को भी प्रभावित कर सकता है। इसी प्रकार कपड़े धोने के साबुन के विज्ञापन की पंच लाइन 'उसकी साड़ी मेरी साड़ी से ज्यादा सफेद क्यों' ईर्ष्या के भाव को उत्पन्न करती है। फास्ट फूड को खाते हुए अत्यंत प्रसन्न और उत्साहित दिखाई देने वाले बच्चों के खिले हुए चेहरे विज्ञापन से बाहर आकर वास्तविक जगत के बच्चों को भी ऐसी चीजें खाने की ही प्रेरणा देते हैं, साथ ही उन्हें घर के खाने से विमुख भी करते हैं। विज्ञापनों में महिलाओं का उपयोग व्यक्ति के रूप में नहीं वरन् सामान खरीदने की प्रेरणा देने वाले साधन के रूप में किया जाता है। उन्हें एक सुंदर मूर्ति के रूप में सजा-सँवार कर प्रस्तुत किया जाता है, जो उनकी रोजमर्रा की जिंदगी की छवि से पूरी तरह अलग छवि को प्रस्तुत करता है। इस प्रक्रिया में विज्ञापन कंपनियाँ कभी-कभी मर्यादा की सारी सीमाओं को तोड़कर महिलाओं को सेक्स ऑब्जेक्ट या अश्लील रूप में चित्रित करती हैं। यह वास्तव में महिलाओं का शारीरिक दृष्टि से शोषण है और एक व्यक्ति के रूप में उनकी छवि को नकारात्मक रूप में चित्रित करना भी। परंतु उपभोक्तावाद अधिक से अधिक मुनाफा प्राप्त करने के लक्ष्य को प्राप्त करने की दौड़ में इन बातों की तरफ ध्यान ही नहीं देता है।

उपभोक्तावाद का जबरदस्त दबाव हमारे समाज और संस्कृति पर पड़ता है जो सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन को प्रेरित करता है।

दरअसल, उत्पादों की बढ़ती संख्या ने लोगों के दिमाग को भ्रम की स्थिति में डाल दिया है। उन्हें दिशा-निर्देश देने का काम विज्ञापनों द्वारा किया जा रहा है। वही यह सुनिश्चित करते हैं कि मनुष्य साबुन, टूथपेस्ट, मक्खन, आटा, चावल या नमक को अपनाए और प्रयोग करे। टीवी, अखबार, इंटरनेट, सोशल मीडिया आदि के द्वारा ये विज्ञापन सामान्य लोगों के घरों के अंदर पहुँचाए गए हैं। आज बाजार में उपलब्ध हर चीज विज्ञापन की परिधि में आ चुकी है। विज्ञापनों ने मानव की सोच को इस प्रकार अपनी जकड़ में लिया है कि उन चीजों को भी जीवन में आवश्यक बना लिया गया है जो सामान्य स्थिति में मानव के उपयोग की नहीं है। उत्पाद के गुण-दोष की परख का नियामक आज विज्ञापन ही है। कहा जा सकता है कि आज विज्ञापन की दुनिया में उपभोक्तावाद अपनी पूरी शक्ति के साथ फल-फूल रहा है।

संदर्भ :

1. विज्ञापन और ब्रांड: संजय सिंह बघेल
2. उपभोक्ता संस्कृति और बाजारवाद: ललित सुरजन
3. संस्कृति का संकट और जनसंचार माध्यम (नव उन्न्यन: डॉ. विनीता कुमारी)
4. आलोचकीय: विज्ञापन और उपभोक्तावाद (अपनी माटी) : मीना
5. एडवरटाइजिंग-प्रिंसिपल एंड प्रेक्टिस: सांद्रा मोरियती, नैन्सीमिशेल, विलियम वेल्स

– प्राचार्या, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, अग्रसेन अस्पताल के पास, रोड नं. -57, वेस्ट पंजाबी बाग, दिल्ली-110026

❑❑❑

स्वस्थ संवेदनाएँ संस्कृति को बचाएँगी : अमर बानिया लोहोरो

डॉ. आरसु

बंदूक पकड़े हाथ ने बाद में कलम ले ली। दशमनी शब्द से ऊबकर संवेदना के पथ पर आगे बढ़ा। यह सिक्किम निवासी नेपालीभाषी कवि अमर बानिया 'लोहोरो' की नियति है। आज ग्रामीण ग्वालों के साथ मिलजुल कर वे मिल्क यूनियन कंपनी में सेवारत हैं। ग्रामीणों के साथ रहकर कविता लिखना भी उनकी आदत बन गई है।

1959 में सिक्किम के लिमथिम गाँव में लोहोरो का जन्म हुआ। 'भाव धन', 'काव्याणु', 'जीवन चित्र', 'कबीर दोहावली' (अनुवाद) आदि उनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। भानुभक्त, पारसमणि प्रधान जैसे श्रेष्ठ कवियों से प्रेरणा पाकर वे आगे बढ़े। तिस्ता, रंगीत नदियों से वे रागात्मक संबंध रखते हैं। कंचनजंघा चोटी उन्हें हमेशा विस्मित करती है।

2007 में मध्य प्रदेश अकादमी ने सार्क राष्ट्रों के लेखकों का एक अधिवेशन भोपाल में आयोजित किया था। उसी अधिवेशन के अवसर पर हमारी भेंट हुई थी। अनौपचारिक बातों से शुरू करके वह भेंट गंभीर बहस बन गई। बाद में लोहोरो केरल (कालिकट) आए। मुझे गंगटोक जाने का भी मौका मिला। भारत की दो सीमाओं में निवास करने वाले दो अलग भाषाओं के लेखकों की भेंटवार्ता में कई नई निराली बातें चर्चित हो गईं।

'जीवन चित्र'

आरसु - आपका काव्य संकलन मूल नेपाली हिंदी अनुवाद और अंग्रेजी अनुवाद सहित एक ही किताब में मुझे मिला है। इसका आस्वादन एक सुखद अनुभव है। पहाड़ी प्रदेश के दृश्यों का अंकन इसकी खूबी है। सुंदर सुकर प्रकृति

वर्णन आज विरले ही मिलते हैं। आपकी काव्याभिरुचि का आरंभिक दौर कैसा था? बचपन से ही अभिरुचि थी क्या?

लोहोरो - कई कठिनाइयों के बीच मेरा बचपन बीता था। यों तो अकेलापन मुझे अधिक पसंद रहा। कविता के प्रति लगाव तब पैदा नहीं हुआ था। किशोरावस्था में वह प्रेम शुरू हुआ। वह हृदय का अनुराग था। वह मुहब्बत आज भी जारी रखना चाहता हूँ।

आरसु - यह बताइए कि उस मुहब्बत का नतीजा क्या निकला था?

लोहोरो - मुझे एहसास हुआ कि मुहब्बत कविता ही मुझे दे रही थी। हर आदमी आरंभ में कविता ही लिखता है न! भावस्फूर्ति के निमिष में कविता जन्म लेती है। वह भाव कविता के जरिए अभिव्यक्त होता है। यों उसे एक भौतिक आकार मिलता है। मानवीय संवेदना को कविता संरक्षण देती है। इस प्रक्रिया में संवेदना का विकास भी होता है।

आरसु - पेशे से आप दूध कंपनी के कर्मचारी हैं। क्या यह पेशा काव्यसाधना के लिए बाधक है या साधक?

लोहोरो - आपकी बात ठीक है। मैं सिक्किम मिल्क यूनियन का कर्मचारी हूँ। इसके पहले फौज में था। गोरखा राइफल्स का काम जल्दी ही छोड़ना पड़ा। फिर एक ज्वैलरी कंपनी में नौकरी मिली और फिर आखिर में मिल्क यूनियन में आया। ग्रामीण ग्वालों के लिए समितियों का गठन करना, उसका संचालन करना, आवश्यक सुझाव देना यही सब अब करना है।

आरसु - मन में कविता की सरिता बहती है। ऐसा आदमी क्या राइफल पकड़ सकेगा?

लोहोरो - फौजियों की वर्दी ने बचपन में मुझे आकृष्ट किया था। इस आकर्षण में पड़कर फौज में भर्ती हो गया। बनारस के केंद्र में प्रशिक्षण मिला था। हर दिन सात पीरियड क्लास लेनी थी। दुश्मन की ओर बंदूक चलाना, दुश्मन को पराजित करना ऐसे शब्द लगातार सुन-सुनकर मन में विराग पैदा हो गया। मेरी सोच एक दूसरी दिशा की ओर मुड़ गई।

आरसु - क्या फौजी यों सोच सकेगा?

लोहोरो - मन ही मन मैं यह चाहता था कि सब की भलाई हो। तब मेरे लिए कोई दुश्मन नहीं होगा। एक दिन क्लास लेते समय कुछ जवान सोने लगे

थे। मैं भी उनमें शामिल था। हवलदार की नजर मुझ पर पड़ी। वे गुस्से में आ गए। उन्होंने पूछा- यों सोते हुए जवान कैसे दुश्मन को काबू में ला सकेगा। दुश्मन के काबू में तू पड़ जाएगा। बैठा है गधे के समान। तू क्यों इधर ध्यान नहीं रखता है? उनका आक्रोश मुझे खटका।

उस दिन शाम को एक विदाई समारोह था। एक हवलदार सेवानिवृत्त हो रहा था। उनसे मैंने अपना तीखा अनुभव कहा। उन्होंने कहा कि सबसे पहले इस बात का ध्यान रखो कि तुम फौजी हो। इस ढंग से तो तुम कभी अच्छे फौजी नहीं बन सकोगे। उस रात को मैंने 'दुश्मन' शब्द के अर्थ पर सोचा। मेरा मन चुपके से बोल रहा था कि यह मेरे लायक काम नहीं है। फौजी बनना है तो मन में दुश्मन का विचार प्रबल बनाना होगा। मैंने इस्तीफा दे दिया। कुछ दिनों के बाद डिस्चार्ज आर्डर भी मिल गया।

आरसु - क्या यह आध्यात्मिक विचार का नतीजा था? आचार्यों के वचन का प्रभाव पड़ा था?

लोहोरो - जी हाँ, ओषो की बात मेरे मानस पटल पर अंकित हो गई थी। जीवन एक संघर्ष नहीं, वरन् प्रसाद है। जीवन क्षणभंगुर है। जीवन संगीत है। सूर्योदय के साथ कलियाँ खिलती हैं। यह अपने आप होता है। हवा के सहलाने से पेड़ की टहनियों से संगीत निकलता है। पूनम के चाँद को देखने पर समुद्र उत्तेजित होता है।

आरसु - फौज का अनुशासन क्या आपको मंजूर नहीं था?

लोहोरो - थोपा हुआ अनुशासन इंसान को गलत रास्ते पर ले चलेगा। वह व्यक्तित्व का गला घोंट देगा। फौजी अनुशासन इस तरीके का है। एक हुकुम मिलते ही उनके दिखाए गए आदमी को फायर करना होगा। आदमी को मार डालना कानून और समाज की दृष्टि से अपराध है। किंतु फौज में एक जवान कई आदमियों को मार डालता है तो उसे पदक मिलेंगे। उसकी सराहना की जाएगी। ऐसा अनुशासन इंसान को रोबोट बनाएगा।

आरसु - फौज ने आपको छोड़ा या आपने फौज को छोड़ा। फिर ज्वैलरी कंपनी में नौकरी मिली! उधर फायरिंग की जरूरत नहीं थी। लेकिन आप ने ज्वैलरी कंपनी की नौकरी भी छोड़ दी थी। ऐसा क्यों हुआ?

लोहोरो - उधर समय की सख्त पाबंदी थी। सोने की कंपनी में एक बार प्रवेश किया तो बाहर के दृश्य देख नहीं सकते। एक हल्की आवाज भी नहीं सुनाई पड़ेगी। भीतर के हालात एक कैदी के समान थे। तब मैं बहुत परेशान हो गया। बाहर के प्रकृति-दृश्यों को देखकर उनका आस्वादन करना असंभव हो गया। मेरा मन सुंदर प्रकृति में लीन होने के लिए तड़प उठता था। यों 'जलसा' ज्वैलरी का काम मैंने छोड़ दिया। मिल्क कंपनी की नई नौकरी मैं पसंद करता हूँ। आम आदमियों से अटूट संपर्क रख सकता हूँ। पढ़ने-लिखने के लिए भी समय मिलता है।

आरसु - वाल्मीकि, तुलसी जैसे अमर रामायणकारों की परंपरा में नेपाली के भानुभक्त भी परवर्ती काल में जुड़ गए थे। कमला सांस्कृत्यान ने उनकी रामायण का विस्तृत परिचय हिंदीभाषियों को दिया है। उस कवि मनीषी की प्रतिभा और कल्पना की खूबियाँ जानने में मेरी दिलचस्पी है।

लोहोरो - हम नेपालीभाषी उनको आदि कवि और आचार्यकवि का श्रेय देते हैं। 1871-1925 उनका जीवनकाल था। वाल्मीकि रामायण की कथा को आधार बनाकर भानुभक्त ने नेपाली रामायण की रचना की थी। जनमानस में उसकी जड़ें जम गई हैं। संस्कृत पदावली से नेपाली को मुक्त करके उन्होंने युगांतरकारी काम किया था। रामायण को जनोन्मुखी बनाकर भाषा को अतुलनीय बनाया। नेपालीभाषा को विकास के पथ पर अग्रसर करने का स्तुत्य कार्य उन्होंने किया। सरल भाषा में गहन बात प्रतिपादित करने में वे बड़े निपुण थे। आध्यात्मिक बातें वे बड़ी ही सरलता से बता सके। परवर्ती पीढ़ी के कवियों के लिए वे एक बड़े प्रकाश-स्तंभ हैं। मेरी कविता के मार्गदर्शक भानुभक्त हैं।

आरसु - भानुभक्त के परवर्ती कवियों में कौन-कौन प्रमुख हैं? आपको प्रेरित करने वाले कवियों की भी जानकारी दें।

लोहोरो - महाकवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोठा, कवि शिरोमणि लेखनाथ पौढयाल, पारसमणि प्रधान, अंगसिंह गिरि और भूपि शेरचन नेपाली कविता की दिशा और दशा के निर्धारक बन गए थे। इनमें मेरे मन को अधिक प्रभावित करने वाले कवि पारसमणि प्रधान हैं। विजेंद्र प्रधान नवा सापकोटा, जसयोजन प्यासी, प्रद्युम्न श्रेष्ठ, मोहन ठकुरी, विजेंद्र प्रधान, भविलाल लमिछाने के नाम आज अधिक चर्चित हैं।

आरसु - पारसमणि प्रधान की कविता के किस तत्व ने आपको अधिक प्रेरित किया था?

लोहोरो - छात्रावस्था में उनकी कविता के प्रति मेरा मन अधिक आकृष्ट हो गया था। दीवार-घड़ी की सुई आगे बढ़ती है। तब एक आवाज सुनाई पड़ती है। उससे कवि ने एक भाव को पकड़ लिया था।

टिक-टिक आवाज से
आगे बढ़ती है घड़ी की सुई
देती है संदेश सुई हमें
मत करो बरबाद समय जरा भी
खो देंगे अगर आप समय
आएगा वह नहीं वापस
समय बताता है सच अनूठा

इस कविता में यही भाव आया था। कविता का ध्वन्यार्थ मानस में नई तरंगे पैदा करता है। यह संदेश जागृति का है- ऐसा मैंने समझा।

आरसु - अदृश्य शक्ति के प्रभाव पर आपका विश्वास प्रबल है। 'विश्वविद्यालय' शीर्षक कविता बहुत चित्ताकर्षक लगी। इसकी मूल प्रेरणा क्या है?

लोहोरो - जी हाँ, आपका अनुमान एकदम सही है। अदृश्य शक्ति ही मेरी प्रेरणास्रोत है। पृथ्वी, आकाश, विराट प्रकृति, समग्र जीवन परिवेश ये सब अदृश्य शक्ति में शामिल हैं। एक विशेष शक्ति के बलबूते ही हम चीजों को देखते हैं और उनका वर्णन करते हैं। वह शक्ति तमाम ग्रहों और उपग्रहों को संचालित-परिचालित करती है। जीवन और जगत का अस्तित्व इस शक्ति पर निर्भर है। इसको एक विशेष नाम देना मुश्किल है। यह मन का एक अनुभूत सत्य है। 'विश्वविद्यालय' कविता में यह भाव उभर आया है। यह जीवन एक खुला विश्वविद्यालय है जहाँ से हम हर दिन नए-नए सबक सीखते रहते हैं।

आरसु - 'टूटा चश्मा' कविता क्या इसकी पूरक कविता है?

लोहोरो - मन की सारी बातों का प्रतिपादन अपनी कामना के अनुसार कोई भी कवि नहीं कर सकेगा। अज्ञान इतिहास को हम भिन्न युगों में बाँट लेते हैं। व्यक्ति और समाज की हैसियत से हम अपने अज्ञान और कमजोरी को प्रकट

करते हैं। आखिर मनुष्य पश्चाताप की आग में जल जाता है। कविता सत्य ही बोलती है। किंतु उसका बोध आस्वादक की दृष्टि और अंतचेतना पर निर्भर रहता है। मैं एक अकिंचन आदमी हूँ। लेकिन मैं कविता के माध्यम से सत्य में जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। सामने खड़े मनुष्य, भिन्न रूपों में मौजूद जड़-चेतन वस्तुएँ, हिमालय शृंग, नदियाँ, झरने, तालाब- इन सबसे मेरी कविता प्राणवायु प्राप्त करती है। पहले चश्मा ठीक-ठांक था। एक बार टूट गया तो उसका महत्व मैं समझ सका। इंद्रियाँ जब सजग बन जाती हैं तब विश्व-सौंदर्य का आस्वादन समझ में आता है।

आरसु - आपने सिक्किम का पूरा भ्रमण किया है। पहाड़ टीले-चोटियाँ सब देखकर विस्मित रहे होंगे? उधर के गाँवों में आप हर दिन जाते हैं। क्या ऐसे अनुभव भी कविता में आए हैं?

लोहोरो - मेरा जन्म पहाड़ों के बीच में हुआ था। लेकिन इधर समतल भी हैं। मैं उनको भी पसंद करता हूँ। यहाँ की जिंदगी में कठिनाइयाँ होंगी। लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियाँ हमें धैर्य प्रदान करती हैं। भारत के सारे प्रदेश एक बराबर नहीं हैं। अनेकता के तत्वों के बीच एकता के तत्व भी विद्यमान हैं। यों मेरी कविता नए क्षितिजों को छू लेने की कोशिश करती है।

आरसु - भीड़-भाड़ या आपाधापी एक ओर है। दूसरी ओर अकेलापन है। निर्जन नीरव वातावरण है। इनमें कवि-मानस किस को अधिक पसंद करेगा? अनुभव रचना के रूप में बदल जाता है। यह प्रक्रिया कुछ अनूठी होगी न?

लोहोरो - मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से कटकर रहना मुश्किल है। लेकिन मैं ऐलान करता हूँ कि भीड़-भाड़ में फँस जाए तो संवेदनशील व्यक्ति का स्वत्व खो जाएगा। नव अभिरुचियों से वह विचलित हो जाएगा। भीड़ के बीच रहकर कविता लिखना मुश्किल है। कभी-कभी शीर्षक मैं पहले तय कर लेता हूँ। ऐसा न करें तो कविता लिखना कठिन हो जाएगा। रास्ता ठीक बनें तो चलना आसान होगा न। मन में उमड़-घुमड़ कर आती भाव रूपी लहरों को शब्दों में बाँधना आसान काम नहीं है। कभी-कभी भाव मुझे उलझन में डालता है। कविता पूर्ण होने की स्थिति में भी अनिश्चित स्थिति बनी रहेगी। मानस की बातें कागज पर उतर आने के बाद एवं सुधार-निखार की जरूरत पड़ेगी। कुछ क्षणों में भावना जागृत हो उठेगी। यात्रा, बातचीत के अवसरों

271 CHD / 2018—8A

पर भी भाव और कल्पना मन में अंकुरित होंगे। चलते-चलते थक जाने पर पेड़ के नीचे बैठूँगा। उस परछाई में बैठकर कविता लिखूँगा। पसंद की बात भिन्न व्यक्तियों के लिए अलग-अलग होंगी। आदर्श, व्यक्ति, घटना, पुस्तक सबके लिए यह बात लागू होती है। व्यक्ति के अंतर्मन पर जो भाव अंकित होगा, वही भाव कविता के रूप में जन्म लेगा। अवचेतन मन की प्रेरणाएँ ही मुख्य हैं।

आरसु - क्या इस क्षण में दर्शन भी आपका साथ देता है?

लोहोरो - कुछ मनीषियों-महात्माओं के विचार मन को छू लेंगे। चाहे विष हो या अमृत कुछ भी हमें अधिक नहीं चाहिए। अल्प में मिलने वाले विचार भी अमूल्य हैं। औषध के समान प्रतीत होने वाले भाव मन में टिकेंगे। सृजन के क्षण में बिजली के समान वे भाव चमक उठेंगे। वह एक सहज प्रक्रिया है।

आरसु - आप पहाड़ी इलाके में रहते हैं। वहाँ की प्रकृति सकुमार है। वह गाँवों का प्रदेश है। सहज सुंदर माहौल आपको सुखद लगता है। लेकिन आज शहरीकरण का दौर है। पर्यावरण प्रदूषण, वनों का सत्यानाश, उपभोग लालसा जैसी प्रवृत्तियाँ देश में बढ़ रही हैं। क्या इनसे सिक्किम के लोग परेशान हैं?

लोहोरो - आप आशंका की बात करते हैं। ग्लोबल वार्मिंग की चुनौती से हम परेशान हैं। ग्लेशियर पिघलने लगता है। तिस्ता-रंगीत हमारी प्यारी नदियाँ हैं। वे हमारी प्राचीन संस्कृति के प्रतीक हैं। जनता की दृष्टि में वे नदियाँ सांस्कृतिक-धार्मिक महत्व भी रखती हैं। आज टूरिस्ट संस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है। इसके दोषों से नदियों को मुक्त रखने के लिए जनता सावधानी रखती है। केवल शरदऋतु में इधर नौका विहार-बोटिंग को अनुमति मिलती है। नदी से बिजली उत्पादन की योजना बनाने पर लोगों ने आपत्ति उठाई थी। ग्लोबल वार्मिंग बढ़ रही है। ग्लेशियर पिघलकर नीचे पहुँचते हैं तो नदी के जल स्तर पर उसका बुरा असर पड़ता है। इसके फलस्वरूप बाढ़ आती है। ग्रीष्म में नदी सूख जाती है। अब तो पहाड़ी इलाकों को भी उपभोग-लालसा ग्रसने लगी है। हम किसी भी चीज के उत्पादक न होकर कई चीजों के उपभोक्ता बन रहे हैं। ऐसे में तब खतरे बढ़ते हैं। जीवनशैली को ये खतरे बिगाड़ देते हैं।

आरसु - आप नेपाली में मूल कविता लिखते हैं। नेपाल हमारा पड़ोसी देश है। उनसे सिक्किम के लोगों का रिश्ता कैसा है- भाषा, साहित्य और संस्कृति के स्तर पर?

271 CHD / 2018—8B

लोहोरो - आप की बात सही है। मैं नेपालीभाषी भारतीय नागरिक हूँ। भारत और नेपाल के बीच का संबंध प्राचीन काल से आज तक मजबूत रहा है। अर्थात् आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और भाषाई स्तर के रिश्तों से है। भारत के कई जगहों पर नेपाली बोलने-लिखने वाले लोग रहते हैं भागसू, डेराडून, सिक्किम, दार्जिलिंग, असम, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर और नागालैंड में कई नेपाली साहित्यकार हैं। नेपाली के विकास में इन साहित्यकारों ने बड़ी भूमिका निभाई है।

आरसु - आचार्य कवि भानुभक्त का योगदान उल्लेखनीय है कुछ इस पर प्रकाश डालें।

लोहोरो - उनको हम नेपाली के आदि कवि मानते हैं। उनका जन्म नेपाल में हुआ था। बनारस में आकर उन्होंने उच्च शिक्षा पाई थी। वहाँ रहकर उन्होंने रामायण लिखने का निर्णय लिया था। नेपाली को जनभाषा के रूप में बदलने का कार्य उन्होंने किया। उनसे पहले नेपाली भाषा के कवि संस्कृत में लिखते थे।

आरसु - 1815 का सुंगौली समझौते की खूबी क्या थी?

लोहोरो - यह ऐतिहासिक महत्व का समझौता था। तत्युगीन ब्रिटिश सरकार और नेपाल सरकार ने इसके तहत कुछ निर्णय लिए थे। उसके अनुसार कुमायूँ, गढ़वाल, हिमाचल जैसे प्रदेशों को ब्रिटिश सरकार ने भारत का हिस्सा बनाया। और इस प्रकार उन प्रदेशों के लोग भी भारतीय बन गए।

आरसु - संविधान की मान्यता नेपाली को कैसे कब मिली। उसके लिए छिड़े आंदोलन के उन्नायक कौन-कौन थे?

लोहोरो - संविधान की मान्यता नेपाली को सन् 1992 में मिली। कई संघटनों ने मिलकर इसके लिए आंदोलन चलाया था। उस आंदोलन को साहित्यकारों का नेतृत्व मिला था। नरसिंह भंडारी तब सिक्किम के मुख्यमंत्री थे। उनका नेतृत्व बहुत प्रभावशाली था। बाद में उसका अच्छा परिणाम निकला। प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने खुली बातचीत की थी। भारत के अन्य भाषा-भाषियों के ध्यान में मैं एक खास बात लाना चाहता हूँ। नेपाली भाषा का विकास भारत में हुआ है। बनारस, दार्जिलिंग, भागसू, असम प्रदेश ने इसमें बड़ी भूमिका निभाई है।

नेपाली का प्रथम कहानी-संकलन 'कथाकुसुम' 1940 में भारत में प्रकाशित हुआ था। भारत के नेपालीभाषियों के प्रमुख केंद्र दार्जिलिंग में प्रकाशन समारोह संपन्न हुआ था। भारत और नेपाल के साहित्यकारों का संगम हर साल यहाँ आयोजित होता है। दोनों देशों में साहित्यकारों का सम्मान समारोह आयोजित किया जाता है।

आरसु - हमारे देश के सीमांत प्रदेशों में अब आतंकवाद अपनी जड़े फैला रहा है। देश की एकता के लिए यह एक बड़ी चुनौती है। सिक्किम 1975 में भारत का राज्य बन गया है। मेरा ख्याल है कि यह प्रदेश आतंकवाद की आपदाओं से मुक्त है।

लोहोरो - हमारे देश की विकराल समस्याओं में एक आतंकवाद है। उसकी आशंकाएँ और आकुलताएँ सिक्किम में नहीं हैं। लोगों का धार्मिक विश्वास इसका कारण होगा। हिंदूधर्म और बौद्ध धर्म यहाँ प्रचलित हैं। ये धर्म मन की शांति और अहिंसा जैसे मूल्यों पर विशेष बल देते हैं। लेकिन भारत की भीषण समस्या होने के कारण आतंकवाद हमारे मन में भी परेशानियाँ पैदा करता है। हिंसा और विध्वंसक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए जनचेतना जागृत करना आवश्यक है।

आरसु - आपने कहा है कि भारत के विभिन्न भागों में रहकर कई लेखक नेपाली में सृजन करते हैं। समकालीन नेपाली साहित्यकारों में कौन-कौन प्रमुख हैं?

लोहोरो - हरिभक्त अभिकरी (असम), एम. एस गुरूंग, प्रेमप्रधान, अगम सिंह जेरी (पश्चिम बंगाल) लक्ष्मीदेवी सुनदास (दार्जिलिंग), मित्र सेन थापा, मगन पथिक (हिमाचल प्रदेश) आदि साहित्यकारों का योगदान अति विशिष्ट है। आज के युवा साहित्यकारों में मनप्रसाद सुब्बा, वीणा हाकिम, राजेंद्र भंडारी और सुधा एम. राय प्रमुख हैं।

आरसु - आपने हिंदी के संत कवि कबीरदास की रचनाओं का अनुवाद नेपाली में किया है। इस लगन का आधार क्या था? क्या आपको कबीर कविता से कुछ नई सोच मिली थी?

लोहोरो - हिंदी में मुझे अधिक जानकारी नहीं है। अभिरुचि के स्तर पर आगे बढ़कर कुछ बातें जान लीं। बस, इतना ही है। गोरखा राइफल्स में सेवारत

होते समय हिंदी सीखने की कुछ सुविधाएँ मिली। कबीर के दोहों का अर्थ दोस्त सैनिकों ने बता दिया। तब मुझे लगा कि सिक्किम के प्राचीन कवि ज्ञानदिलदास के विचारों में कबीर के विचारों में समानताएँ हैं। गंगटोक में एक दवाई की दुकान है। उसके मालिक राम शंकर से मुझे कबीर की कविता की गहरी जानकारी मिली थी। वे बात करते समय बीच-बीच में कबीर के दोहे कहते थे। उसका अर्थ भी समझाते थे। कबीर की कृतियाँ कहाँ मिलेंगी- मैंने उनसे पूछा। इधर-उधर खोजकर कुछ किताबें मिलीं। नेपाली भाषा ने देवनागरी लिपि अपनाई है। इस तरह कबीर-कविताएँ पढ़ना व समझना आसान हो गया। जाति-धर्म की भेद भावनाओं को समाज से दूर करने का संदेश कबीर से मिलता है। भक्ति-भावना और समाज-सुधार की भावना का मेल-मिलाप कबीर के प्रति कविता की खूबी है। मैं उससे अत्यंत आकृष्ट हो गया। यही अनुवाद की प्रेरणा थी। बुद्ध का दर्शन भी इसके अनुकूल है। दुनिया की मंगल-कामना करने वाले हर साधक मेरे लिए आदरणीय हैं।

आरसु - 'प्रतिमा मिलन' संस्था का आप नेतृत्व करते हैं। इसके लक्ष्यों पर प्रकाश डालें।

लोहोरो - हर महीने के आखिरी इतवार को यहाँ बैठक होती है। कला, साहित्य और संस्कृति के प्रेमी इस मंच पर एकत्रित हो जाते हैं। वे अपनी पसंद की रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। औपचारिकता की पाबंदियाँ यहाँ लागू नहीं होतीं। यहाँ की प्रस्तुति के बाद रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। छात्र तथा युवकों को हम प्रोत्साहन देते हैं। दूसरी भाषाओं की रचनाओं के अनुवाद हम सदस्यों को उपलब्ध कराते हैं। नाटक-अभिनय तथा काव्य-रचना कार्यक्रमों में मुझे विशेष रुचि है। भारत के अन्य भागों से सिक्किम में आए साहित्यकारों का स्वागत भी हमारे कार्यक्रम में किया जाता है।

आरसु - नेपाल के नेपाली कवियों में कौन-कौन प्रमुख है?

लोहोरो - कई प्रमुख कवि इस श्रेणी में आते हैं। महेश परसाई, दिव्या गिरि, दूर्बा महाधिकर्मी, किशोर पहाड़ी और बुलु मुकारुंग इनमें प्रमुख हैं।

आरसु - आपकी कविता 'जीवन चित्र' बहुआयामी अर्थ और भावनाओं का संगम है। इसको समझना आसान भी है, मुश्किल भी। हर बार पढ़ते समय

गए अर्थ और भाव उभर आते हैं। दार्शनिक-आध्यात्मिक अर्थ भी इसमें लीन हो जाते हैं। किस मानसिक क्षण में यह कविता जन्मी थी?

लोहोरो - यह मेरे लिए भी अत्यंत प्रिय कविता है। कवि मानस हमेशा भावना के संसार में विचरण करेगा। भूमि से ऊपर उठने का अहसास कभी-कभी होता है। ऊँचाई पर पहुँचने के क्षण में नीचे भूतल पर कई घटनाएँ घटती हैं। मन में तब कई भाव पैदा होंगें। यह संसार एक छोटे पोखर के समान है। मुट्ठी-भर बुरादा पानी में डालने पर कई प्रकार के चित्र दिखाई पड़ेंगे। सूर्य की रश्मियाँ उस पर पड़ते समय कई रंग भी उससे जुड़ेंगे। तब भूमि एक छोटे लड्डू के समान दिखाई पड़ेगी।

इस विराट विश्व की विविधता के बारे में मेरी सोच और कल्पना 'जीवनचित्र' कविता में घुल-मिल गई हैं। साधना के समान क्षण में कविता जन्म लेती है। आसमानी यात्रा के दौरान भूमि को देखते समय मन में अंकित भावों को 'जीवन चित्र' कविता में अभिव्यक्ति मिली है। मैंने जीवन में अभी तक विमान यात्रा नहीं की है। लेकिन काव्यावस्था में मैं आसमान तक पहुँच गया। ध्यानावस्था में कवि मन में दार्शनिक दीप्ति स्फुरित होती है। उसके कुछ स्पंदन 'जीवनचित्र' कविता में मिलेंगे।

आरसु - 'देशदर्शन' कविता में आपने एक खास बात लिखी है। संसद और विधानसभाओं में देशदर्शन संभव नहीं होगा। किसान और मजदूरों के स्वेदकण, शहीद हुए जवानों के रक्तकण उनके बधुओं के अश्रुकण और त्यागियों के वीर चरित में यथार्थ भारत को मैं देख सका। भारत की ऐसी खोज अनूठी है। बधाइयाँ। इस कविता का बीज कहाँ से मिला था?

लोहोरो - मैं कंचनजंघा का निवासी हूँ। आप केरल निवासी हैं। भारत की आत्मा को मैं देशवासियों के दीर्घविश्वासों में तलाश कर पाया। कारगिल युद्ध, ऑपरेशन विजय जैसी घटनाओं के अवसर पर मैंने यह कविता लिखी थी। उस विजय के सिलसिले में बॉलीवुड के अभिनेता, नर्तकियाँ तथा अन्य कलाकार सब एक मंच पर आकर हर्षोल्लास के साथ कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे। जनमानस में राष्ट्रानुराग पैदा करने की दृष्टि से यह कार्यक्रम बहुत सक्षम रहा।

शहीद हुए जवानों के परिवारजनों की आँखों में अनाथत्व की कालिमा दिखाई पड़ी। उनको सांत्वना देने के लिए आम आदमी सामने आए। हमारे

राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगीत के मूल्यों पर लोग सचेत होते दिखाई दिए। भारत की एकता का यथार्थ रूप तब प्रकट हुआ। 'देश दर्शन' कविता का ताना-बाना बुनने का प्रसंग वही से शुरू हुआ।

आरसु - बुद्ध की सूक्ति पर एक कविता आपने लिखी है। वर्तमान से शुरू करके आप अतीत में पहुँच जाते हैं। बुद्ध के बारे में एक अच्छा उल्लेख यहाँ मिलता है। स्वप्न तथा फैंटसी के अंश कविता में घुल-मिल गए हैं। इससे कविता को बड़ी ताकत मिली है। यहाँ यथार्थ और भावना दोनों कविता को आगे बढ़ाते आए हैं। अहिंसा की कामना प्रबल बन गई है। इस सोच की पृष्ठभूमि बताएँ।

लोहोरो - नेपाल में माओवादी क्रांतिकारी आंदोलन चला रहे थे। उन्होंने बौद्ध धर्म के कई अनुयायियों को निष्ठुर होकर मार डाला। इस घटना ने मेरे मन के चैन को नष्ट कर दिया। ज्ञान और मार्गदर्शन दे चुके आचार्यों के पथ से हम हटकर चलने लगे। मेरा मन तब बहुत आकुल-व्याकुल हो उठा। सोते वक्त मैंने एक स्वप्न देखा। भगवान बुद्ध मेरे समीप आकर खड़े हैं। मेरे दुख में वे भी शरीक हो गए। हम समदुखी होकर कुछ समय बातें करने लगे। इस कविता का जन्म ऐसी मानसिक स्थिति में हुआ। पूर्ववर्ती आचार्य प्रकाश-पथ पर प्रयाण कर रहे थे। स्नेह का बल और स्वप्न की चमक उसकी विशेषताएँ थीं। लेकिन पस्वर्ती पीढ़ी उसको खो बैठी है। वह आशंका इस कविता में उभर आई है। हमें बुद्धि के पथ पर नहीं, हृदय के पथ पर आगे बढ़ना है। यह विश्वास आज मेरे मन में प्रबल बन रहा है। एक मलयालमभाषी लेखक से नेपालीभाषी कवि दिल खोलकर बातें कर रहा है। भोपाल में आयोजित सार्क राष्ट्र के सम्मेलन में (2007) आपके साथ भाग लेने का मौका मिला। यह भी एक सुखद अनुभव है। बातचीत हिंदी में है, यह भी एक अविस्मरणीय बात है।

आरसु - अंत में एक आत्मनिष्ठ प्रश्न- आलोचक कवि का मूल्यांकन करता है। स्वयं कवि अपना मूल्यांकन कर सकता है। आत्ममूल्यांकन करते समय आपको क्या लगता है? अपनी कविता का ग्राफ कैसा है? किशोरावस्था की कविता तथा आज की कविता में क्या फर्क है?

लोहोरो - किशोरावस्था की कविता में फूल, बादल, तितली और प्रेम प्रमुख विषय बने थे। फिर माँ, बाप, गरीबवर्ग- आदि के बारे में कविता लिखना

मेरी आदत बन गई थी। 2005 के बाद नए विषयों को छूने लगा। जीवन, मृत्यु, जगत, समय, दुख-दर्द, देश, धर्म, मानवमूल्य, पर्यावरण, वैदिक घटनाएँ आदि विषय कविता में शामिल हो गए। आज लगता है कि बचपन की दुनिया एकदम अलग दुनिया थी। तब अच्छे सपने थे। जीवन निष्कलंक था। शांति और आनंद का वातावरण कायम था। संवेदनाओं का संरक्षण कविता का मुख्य धर्म है। शुरू की कविता और आज की कविता परस्पर विरोधी नहीं हैं। एक का विकास दूसरे में हुआ है। आज की मेरी कामना यही है। जाति और धर्म के नाम पर संघर्ष न छिड़े। स्वस्थ संवेदनाओं को बचाना है। विज्ञान ने जीवन को कई सुविधाएँ प्रदान की हैं। उनसे हमें दूर नहीं रहना चाहिए। उनका सदुपयोग करना है। कविता आज मनोरंजन का साधन न बने। कविता को 'सीरियस' मानने का वातावरण जरूरी है। आज हल्की-फुल्की बातों पर लिखी गई कविता को प्रमुखता मिलती है। मेरी कविता को पसंद करने वाले आज कम होंगे लेकिन पच्चीस वर्ष के बाद उसको पसंद करने वाले कुछ नए पाठक जरूर पैदा होंगे। मैं यों ऐलान करता हूँ। विश्व में शांति लाने के लिए चौबीस घंटे काफी हैं। संवेदनाओं का सदुपयोग करने वाले लोगों की जरूरत है। संघर्ष और तनाव इसलिए पैदा होते हैं कि हम गौण बातों पर अधिक बल देते हैं। यह जीवन पाप करने के लिए नहीं है। कविता स्नेह और शांति के पथ पर आगे बढ़े, यही मेरी कामना है।

– प्राध्यापक, हिंदी विभाग, केंद्रीय विश्वविद्यालय, साकेत, पी.ओ. चेलेंब्रा, जिला मलप्पुरम-673634

❑❑❑

हिमालय का सम्मोहन

डॉ. प्रदीप शर्मा 'सनेही'

हिमालय विश्व की सर्वाधिक विस्तृत पर्वत श्रृंखला है। विश्व का कोई भी प्रकृति-प्रेमी शायद ही हिमालय के सम्मोहन से अछूता रहा हो। हिमालय भारत के व्यक्तित्व का एक अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है। ज्ञान व चेतना के रूप में वह भारत की अस्मिता को पूर्णत्व प्रदान करता है। आदिकाल से ही हिमालय, ऋषि-मुनियों की तप:स्थली रहा है। प्रत्येक भारतीय के हृदय में हिमालय के प्रति अगाध श्रद्धा है। हिमालय पर्वत श्रृंखला के विभिन्न भागों में स्थित तीर्थ-स्थलों पर उमड़ता जन-सैलाब इसकी पुष्टि करता है। इसकी चित्ताकर्षक, शुभ्र संगमरमरी हिममंडित चोटियाँ, मनमोहक हरीतिमा से युक्त प्राकृतिक दृश्यावलियाँ, समृद्ध पशु-पक्षी एवं वन्य जीवन, विश्वभर के प्रकृति प्रेमियों व सौंदर्य-पिपासुओं को मूक आमंत्रण देते प्रतीत होते है।

मुझमें भी बचपन से ही विश्व शिरोमणि हिमालय को निकट से देखने की प्रबल उत्कंठा थी। तंजानिया से लौटने के बाद जब कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में अध्ययन हेतु प्रवेश लिया तो वहाँ विश्वप्रसिद्ध भूभौतिकविद् प्रो. कृष्ण कुमार नागपाल की भू-भौतिकी प्रयोगशाला में हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों से एकत्रित शोध-दृष्टि से महत्वपूर्ण विभिन्न किस्मों के दुर्लभ पत्थरों के नमूनों को देखने का सुअवसर मिला। यहाँ कार्य करते शोधार्थियों को देखकर मैंने भी भू-भौतिकी में शोध करने की मन ही मन ठान ली। हिमालय को नजदीक से देखने और वहाँ शोध-कार्य करने की इच्छा तीव्रतर होती गई।

प्रभु ने मेरी सुन ली। एम. फिल. करते ही मुझे आणविक ऊर्जा विभाग (भामा अनुसंधान केंद्र, बंबई) की छात्रवृत्ति मिल गई और मेरा शोध का

कार्यक्षेत्र गढ़वाल हिमालय की भागीरथी, यमुना व टौंस घाटियों के भू-भौतिकीय अध्ययन से संबंधित होना स्वीकृत हुआ। मुझे मानो मनमांगी मुराद मिल गई थी। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्रो. कृष्ण नागपाल एवं डॉ. नंदलाल के विश्वप्रसिद्ध भू-भौतिकी शोध ग्रुप एवं रुड़की विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध भू-विज्ञानी प्रो. अरविंद जैन के साथ जुड़ने एवं कार्य करने का सुअवसर मिला, मेरे लिए यह सम्मान की बात थी।

शोधार्थी के रूप में शोधाध्ययन करते हुए अभी मात्र कुछ ही माह बीते थे कि मुझे हिमालय का बुलावा आ गया। रुड़की से प्रो. जैन का संदेश आया था "जल्दी रूड़की पहुँचिए, तुम्हें शोध दल के साथ भागीरथी घाटी जाना है, मैं भी साथ चलूँगा।" मेरी खुशी का पारावार न रहा। मेरी बरसों पुरानी साध पूरी होने को थी, मैंने उसी शाम स्लीपिंग बैग सहित "फील्ड ट्रिप" से संबंधित सभी उपकरणों को व्यवस्थित कर अगले दिन रुड़की विश्वविद्यालय जाने की तैयारी आरंभ कर दी। रात को बमुश्किल नींद आई।

भागीरथी घाटी के लिए प्रस्थान

अगले दिन प्रातः मुँह अंधेरे ही रुड़की विश्वविद्यालय जाने के लिए कुरुक्षेत्र से हरिद्वार जाने वाली बस में मैं सवार हो गया। रुड़की पहुँचते ही सीधे भू-विज्ञान विभाग जा पहुँचा। विभाग के प्रांगण में एम.टेक. के विद्यार्थियों व कुछ शोधार्थियों का दल भागीरथी घाटी की शोध यात्रा पर जाने के लिए तैयार था। ट्रालियों सहित दो जीप गाड़ियों में सभी लोग सवार हो गए। दो सहायक व एक रसोइया भी हमारे साथ था। खाना बनाने में प्रयुक्त होने वाली सामग्री, बर्तन, राशन, अध्ययन में काम आने वाले औजार ट्रालियों में भर दिए गए थे। अंतरराष्ट्रीय ख्याति के सुप्रसिद्ध भूगर्भ विज्ञानी, रुड़की विश्वविद्यालय के प्रो. अरविंद कुमार जैन के नेतृत्व में हमारा काफिला गंतव्य की ओर चल पड़ा।

मैने मन ही मन भगवान को स्मरण किया व अपनी पहली शोध यात्रा की सफलता की कामना की। रुड़की विश्वविद्यालय से तो हिमालय के भूभौतिकी अध्ययन के लिए इस प्रकार की शोध यात्राएँ आयोजित होती ही रहती हैं। लेकिन प्रथम अनुभव होने के कारण मैं अधिक रोमांच का अनुभव कर रहा था। डॉ. जैन मेरे अति उत्साह को देखकर मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे।

हरिद्वार : तीर्थों का प्रवेश द्वार

रुड़की से आधा पौने घंटे की यात्रा के बाद हरिद्वार आ गया था। जीप में बैठे-बैठे ही हमने माँ गंगा के दर्शन किए। पुण्यसलिला गंगा, पर्वतराज हिमालय के वक्ष से उतरकर हरिद्वार में ही प्रथम बार समतल प्रदेश में प्रविष्ट होती है। गंगा के दाहिने किनारे पर बसी यह पवित्र नगरी अपने नामनुरूप तीर्थों का प्रवेश द्वार है। हिमालय के पावन आंचल में स्थित बदरीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री व गंगोत्री जाने के लिए श्रद्धालु पहले हरिद्वार में गंगा स्नान कर पुण्य कमाते हैं। विशेषकर कुंभ पर्व पर यहाँ स्नान करना मोक्षदायक माना गया है।

हरि की पैड़ी (हर की पैड़ी) यहाँ का सबसे प्राचीन व प्रसिद्ध स्नानघाट है। यहाँ भगवान विष्णु की पद छाप पत्थर की दीवार पर अंकित है। हरिद्वार में अनेक दर्शनीय मंदिर व घाट हैं। समयाभाव के कारण हमें हरिद्वार रुकने का लोभ संवरण करना पड़ा। हमारा काफिला हरिद्वार को नमन करता हुआ ऋषिकेश की ओर बढ़ गया।

ऋषिकेश : भगवान विष्णु का धाम

हरिद्वार से लगभग 24 किलोमीटर दूर स्थित ऋषिकेश वस्तुतः हृषिकेश का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ है, इंद्रियों का स्वामी (विष्णु या कृष्ण)। यह भगवान विष्णु के धाम के रूप में प्रसिद्ध है। चारों ओर से हरीतिमायुक्त पर्वतों से घिरी यह धार्मिक स्थली प्रकृति की ममतामयी गोद में आनंदमय शिशु की मानिंद लगती है।

ऋषिकेश आते-आते सूर्यदेव अपनी लालिमा आकाश में पूरी तरह बिखेर चुके थे। सभी को भूख लगने लगी थी। रुड़की से चले लगभग दो घंटे हो चले थे। साथ लाए गए केले सभी में वितरित कर दिए गए। सभी ने कदली फल खाकर उपवास तोड़ा। केले खाते-खाते भावविभोर हो हम प्रभु की नगरी ऋषिकेश को निहारते जा रहे थे। त्रिवेणी, लक्ष्मण झूला एवं स्वर्गाश्रम यहाँ के तीन प्रसिद्ध घाट हैं। यहाँ गंगा पर सन् 1939 में बनाया गया झूला पुल दर्शनीय है। 40 मीटर लंबे इस पुल की विशेषता यह है कि दोनों सिरों को छोड़कर बीच में कहीं भी कोई अन्य आधार प्रदान नहीं किया गया है।

जीप में बैठे-बैठे विभिन्न मंदिरों के दर्शन करते हुए हमने वहीं से शीश नवा दिए। ऋषिकेश के बाद धीरे-धीरे ऊँचाई बढ़ने लगी। पहाड़ियाँ आरंभ हो गई थी। प्रकृति ने अपनी छटा बिखेरना आरंभ कर दिया था। कोलाहल व प्रदूषण पीछे छूट रहा था। ताजी हवा के झोंके शीतलता प्रदान कर रहे थे। घने पेड़ों से होकर आती हवा की सनसनाहट सांगीतिक प्रभाव उत्पन्न कर रही थी। लगभग 15-16 किलोमीटर की चढ़ाई के बाद नरेंद्र नगर आ गया था। वह लगभग 1060 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।

हवा में ठंडक धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। मार्ग में कई जगह स्त्री पुरुष अदरक की बोरियाँ भरकर संयोजित करते दिखाई दिए। इस क्षेत्र में अदरक की खेती खूब लोकप्रिय है। यह बात अलग है कि इसका पूरा लाभ यहाँ के लोगों को नहीं मिल पाता। बिचौलियों की चाँदी है। यहाँ से सस्ता खरीदा गया अदरक मैदानों में पाँच गुणा अधिक दामों पर बिकता है। रास्ते में लकड़ियों के गठ्ठर उठाए हुए महिलाएँ नजर आती हैं। यह इस बात का द्योतक है कि पहाड़ की नारी श्रमशील है व पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती है।

मार्ग में प्राकृतिक सुषमा को तो हम सभी आत्मसात् कर ही रहे थे, साथ-साथ डॉ. जैन चट्टानों के प्रकारों के बारे में विशद जानकारी देकर हमारे ज्ञान में भी अभिवृद्धि कर रहे थे। मार्ग में पहाड़ी पुष्पों का वैविध्य भी हमें आश्चर्यचकित कर रहा था। हमारे साथ आए एक गढ़वाली शोधार्थी ने हमें मीजरा नामक पुष्प दिखाया। यह पुष्प मेहंदी की भांति रंग छोड़ता है। यहाँ की तरुणियाँ तीज त्यौहारों पर इस पुष्प को रगड़कर हथेलियों पर रचाती हैं। इस पुष्प की विशेषता यह है कि यह मेहंदी से भी कम समय में अपना रंग छोड़ देता है। प्रकृति के इंद्रधनुषी रंगों का प्रत्यक्ष प्रमाण है यह लोकप्रिय पहाड़ी पुष्प।

चंबा

हम चंबा पहुँचने वाले थे। डॉ. जैन ने हमारे बिना कहे ही हमारे चेहरों से ही हमारे पेट की स्थिति जान ली थी। उन्होंने चंबा में भोजन की व्यवस्था करने के लिए साथ गए रसोइए विष्णु को कह दिया। भूख से व्याकुल हमारे चेहरों को थोड़ी राहत मिली।

हरी-भरी पहाड़ियों पर स्थित चंबा आसपास के सभी गाँवों व कस्बों से अधिक ऊँचाई पर है। यहाँ की चित्ताकर्षक दृश्यावलियाँ बरबस मन मोह लेती हैं। अपेक्षाकृत अधिक ऊँचाई पर होने के कारण यहाँ ठंड अधिक रहती है। इसीलिए यहाँ पर्यटकों का आवागमन बहुधा बना रहता है। सर्दियों में तो चंबा से बर्फ से ढंकी श्वेत संगमरमरी शुभ्र चोटियों को देखकर मन मयूर नाच उठता है। प्राकृतिक सुषमा से भरपूर चंबा आते ही हमने राहत की सांस ली। हमारी उदर-क्षुधा की पूर्ति का इंतजाम होने वाला था। सड़क के साथ ही एक प्राथमिक पाठशाला में पड़ाव डाल दिया गया।

हम सभी नीचे उतर कर चंबा के सौंदर्य को निहारने लगे। आधा घंटा हम चहलकदमी करते रहे। तभी विष्णु का बुलावा आ गया। उसने आनन-फानन में आलू की सब्जी व पूड़ियाँ तैयार कर दी थी। हम सभी ने आनंदविभोर होकर प्रसाद मानकर पूड़ियों का रसास्वादन किया। हम सभी को तृप्त देखकर विष्णु के चेहरे पर आया संतोष का भाव मुझे आज भी याद है। चाय पीने की इच्छा बलवती हो रही थी, लेकिन डॉ. जैन ने चलने का आदेश दिया। हमारी जीपें मंथर गति से पुनः सर्प-सी बल खाती पहाड़ी सड़क पर दौड़ने लगी। हम सभी कृतज्ञ भाव से विष्णु की ओर देख रहे थे।

हम प्रकृति की आदिम लीला के दर्शन करते, प्राकृतिक दृश्यावलियों का सौंदर्यपान करते टिहरी की तरफ बढ़ रहे थे। मार्ग में एक जगह हमने बकरियों को बड़े सुंदर-सुंदर फूलों को खाते हुए देखा तो आश्चर्य हुआ। हमारे गढ़वाली मित्र ने बताया "इस पुष्प का नाम कींगरा है और बकरियों का यह प्रिय भोजन है।"

टिहरी : गढ़वाल का सांस्कृतिक केंद्र

प्राकृतिक सुषमा का सौंदर्यपान करते कब ऐतिहासिक नगर टिहरी आ गया, पता ही नहीं चला। टिहरी वर्षों से गढ़वाल का सांस्कृतिक केंद्र रहा है। इस शहर ने 134 वर्ष की राजशाही के उत्थान व पतन का ऐतिहासिक दौर देखा है। उत्तरांचल का जलियांवाला बाग कांड कहे जाने वाले "तिलाड़ी गोलीकांड" का यह साक्षी रहा है। यहाँ तिलाड़ी मैदान पर निहत्थे किसानों पर गोलियाँ बरसाई गई थीं। इस शहर की टिहरी जेल में गांधीवादी आंदोलनकारी व उत्तरांचल के

गांधी के नाम से विख्यात श्री देव सुमन ने 84 दिन की भूख हड़ताल के बाद प्राण त्याग दिए थे। यह वही टिहरी है जो स्वामी रामतीर्थ की कर्मस्थली रही। यही के महाराजा के अनुरोध पर स्वामी जी विश्व सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने सन् 1902 में टोकियो गए थे। वहाँ से लौटकर वे यहीं रहने लगे। सन् 1909 में दीपावली के दिन स्वामी रामतीर्थ ने गंगा में जल समाधि ले ली थी। ऐसी पवित्र स्थली को हम सभी ने नमन किया।

विडंबना तो यह है कि कुछ वर्षों बाद ऐतिहासिक क्षणों का चिरसाक्षी यह शहर जलसमाधि लेने को अभिशप्त हो जाएगा, इसी के साथ दफन हो जाएगी एक समृद्ध विरासत। कहते हैं इस नगर की नींव 28 दिसंबर सन् 1815 में रखी गई थी। तत्कालीन राजज्योतिषी ने इस शहर की आयु लगभग 200 वर्ष बताई थी, साथ ही यह चेतावनी दी थी कि 200 वर्ष तक यह शहर पूरा डूब जाएगा। अब ज्योतिषी की भविष्यवाणी पूरा होने के अंतिम चरण में है। जैसे-जैसे भागीरथी पर बन रहा विशालकाय टिहरी बांध का कार्य अनेक भूगोलविदों व पर्यावरणविदों की चेतावनियों के बावजूद आगे बढ़ रहा है, टिहरी के जलप्लावन का दिन नजदीक आता जा रहा है।

कभी हम लोग टिहरी को देखते तो कभी बाँध पर कार्यरत विशालकाय बुलडोजरों व अन्य मशीनरी को देखते। इस सांस्कृतिक नगरी के जलप्लावन की कल्पना कर आँखें नम हो आईं। हजारों लाखों लोगों के आँसुओं की नींव पर बना यह बाँध देश के विकास में कहाँ तक सहयोग दे पाएगा, मैं रह-रहकर सोच रहा था।

चिपको आंदोलन के प्रणेता प्रख्यात पर्यावरणविद सुंदरलाल बहुगुणा गंगा के किनारे बनी गंगा कुटी में यहीं रहते हैं। उनसे मिलने की हार्दिक इच्छा पूरी न हो पाई। वे कहीं व्याख्यान हेतु गए हुए थे। जब बाँध पूरा बन जाएगा तो टिहरी के साथ उनकी गंगा कुटी भी जलसमाधि ले लेगी सोचकर शरीर में सिहरन दौड़ गई। क्या विकास के हाथ इतने क्रूर हो सकते हैं, यह बात मेरे मन को उद्वेलित किए दे रही थी।

भारी मन से हमने टिहरी से विदा ली। टिहरी से कुछ ही दूर है भागीरथी के तट पर बसा मालीदेवल गाँव जहाँ एक अति प्राचीन लक्ष्मीनारायण मंदिर

शोभायमान है। समय के थपेड़े खाकर मंदिर का शीर्ष भाग क्षतिग्रस्त हो चुका है। कहा जाता है कि नेपाली गोरखों के साथ हुए युद्ध में यह खंडित हो गया था।

मालीदेवल से निकलते ही सीढ़ीनुमा खेत दृष्टिगोचर होने लगे थे। इनमें लहलहाती धान की फसल हरी मखमली चादर का-सा आभास दे रही थी। अनेक स्थानों पर पारंपरिक वेशभूषा में कार्य करती गढ़वाली महिलाएँ अपनी जिजीविषा का परिचय दे रही थीं। उल्लेखनीय है गढ़वाल में खेतों में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक कार्य करती हैं। बहुत कठिन है पहाड़ी महिलाओं का जीवन। थोड़ा परिवर्तन आया अवश्य है। लड़कियाँ स्कूल जाने लगी हैं। फिर भी प्रतिशत बहुत कम है। अनेक नन्हीं बालिकाएँ पीठ पर टोकरियाँ बांधे अपनी माताओं का हाथ बँटाती नजर आती हैं।

सड़क मार्ग बहुत अच्छा नहीं था, कई जगह भूक्षरण के कारण मार्ग आंशिक रूप से अवरुद्ध था। यहाँ सड़क सुरक्षा बलों के दस्ते आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित रहते हैं व सूचना पाते ही तत्काल मार्ग साफ करने पहुँच जाते हैं। एक ओर ऊँचे पहाड़ व दूसरी ओर वेग से बहती भागीरथी, कहीं तीखे घुमावदार मोड़, पग-पग पर भयमिश्रित रोमांच की सृष्टि करते प्रतीत होते हैं। यहाँ प्रकृति की असीम शक्ति के समक्ष मानव नतमस्तक नजर आता है। हम बीच-बीच में भगवान को स्मरण कर रहे थे।

धरासू से गंगोत्री व यमुनोत्री के लिए पृथक-पृथक रास्ते हैं। पूर्वनिर्धारित कार्यक्रमानुसार हमारी जीपें गंगोत्री मार्ग पर चल पड़ी थीं। बीच-बीच में चीड़ के सुंदर ऊँचे वृक्षों के दर्शन होने लगे थे। इन वृक्षों से लीसा निकालकर तारपीन का तेल बनाया जाता है। बीच-बीच में अनेक छोटे-बड़े जल-प्रपातों के दर्शन हुए जो अंततः मोक्षदायिनी भागीरथी से एकाकार हो रहे थे।

धीरे-धीरे सूर्यदेव अस्ताचल की ओर बढ़ रहे थे। शाम गहराने लगी थी। पक्षी अपने-अपने घोंसलों की ओर लौट रहे थे। हम भी जल्दी से हमारे आज के अंतिम पड़ाव उत्तरकाशी पहुँच जाना चाहते थे। यहीं पर हमारा रात्रि विश्राम का कार्यक्रम था। ठंड भी बढ़ने लगी थी। आधा-पौने घंटे की यात्रा के बाद हम उत्तरकाशी जा पहुँचे। हमने आज की यात्रा सकुशल पूर्ण होने पर भगवान को

धन्यवाद दिया। वन विभाग के एक विश्राम गृह में हमें स्थान मिल गया था। विष्णु रात्रि-भोज की तैयारियों में जुट गया था। हम चाय की तलाश में बाजार की ओर चल दिए।

उत्तरकाशी : बछेंद्री पाल की नगरी

उत्तरकाशी ऋषिकेश-गंगोत्री मार्ग पर स्थित सबसे बड़ा व सुंदर नगर है। एक ओर हरीतिमा की चादर ओढ़े अपनी अनुपम छटा बिखेरता गगनचुंबी वरुणावत पर्वत, तो दूसरी ओर पवित्र पावनी कलकल निनाद करती स्वच्छ शुभ्र जल अपने आँचल में समेटे बहती भागीरथी, उत्तरकाशी को अनूठा सौंदर्य प्रदान करते हैं। नगर का कुछ भाग गंगा के दूसरे किनारे पर बसा हुआ है। यूँ तो यहाँ कई मंदिर हैं, लेकिन विश्वनाथ मंदिर सर्वाधिक प्राचीन है। कहा जाता है यद्यपि मंदिर तो हजारों वर्ष पूर्व बना था, लेकिन छठी शताब्दी में नागवंशी राजा गणेश ने दुर्गा शक्ति के प्रतीक स्वरूप त्रिशूल निर्मित करवाकर यहाँ इसी मंदिर में स्थापित किया था। अष्टधातु के बने इस भव्य त्रिशूल के विषय में कई रोचक किंवदंतियाँ है। एक किवदंती के अनुसार यह त्रिशूल अनंत गहराई तक गड़ा हुआ है व शेषनाग के फन पर टिका है।

एक छोटी-सी चाय की दुकान में बैठे हम अदरक की चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे। दुकान के मालिक राणा जी स्नेहपूर्वक हमें उत्तरकाशी के विषय में जानकारी दे रहे थे। उन्होंने बताया कि सर्दियों में यहाँ पर्यटकों व स्कीइंग-प्रेमियों का आवागमन बढ़ जाता है। निकटवर्ती विश्वविख्यात औली स्कीइंग केंद्र विश्वभर से पर्यटकों को आमंत्रित करता है। यहाँ की बर्फीली ढलानें स्कीइंग के लिए सर्वथा उपयुक्त है। उत्तरकाशी का "नेहरू पर्वतारोहण प्रशिक्षण संस्थान" पर्वतारोहियों व पर्वतारोहण में रुचि रखने वाले नवप्रशिक्षुओं का तीर्थ-स्थल है। भारत के कई प्रसिद्ध पर्वतारोहियों ने यहीं से प्रशिक्षण प्राप्त किया है और अब कई यहाँ प्रशिक्षण दे रहे हैं। एवरेस्ट को विजित करने वाली भारत की प्रथम महिला बछेंद्री पाल उत्तरकाशी में ही रहती है।

राणा जी की सुस्वादु चाय व किस्से सुनाने की उनकी कला के सम्मोहन में हमें समय का पता ही नहीं चला। रात गहराने लगी थी। समय 9 बजे से अधिक हो गया था। विष्णु हमें ढूँढते-ढूँढते उधर आ निकला था। डॉ. जैन का

बुलावा आ गया था। हम तुरंत लौट पड़े। रात्रि-भोज हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। आज दाल चावल बने थे। जोरों की भूख लगी थी। सभी ने भरपेट खाया। डॉ. जैन ने जल्दी से अगले दिन के कार्यक्रम की रूपरेखा बताई और सोने चले गए। हमें भी नींद आने लगी थी। हम सभी जल्दी से अपने-अपने "स्लीपिंग बैग" में घुस गए। थकान के कारण जल्दी ही हमें नींद ने आ घेरा।

प्रात: एक प्याली चाय पीकर हमने आगे प्रस्थान किया। उत्तरकाशी के ऐतिहासिक व धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर को पीछे छोड़ते हम आगे बढ़ चले। हमें भटवारी पहुँचकर पड़ाव डालना था। वहाँ कुछ चट्टानी सैंपल एकत्रित करने का कार्यक्रम था। भागीरथी घाटी की सौंदर्य सरिता में स्नान करते हम आगे बढ़ रहे थे। मार्ग में वैविध्यपूर्ण जैव-संपदा के साथ-साथ विभिन्न प्रजातियों के दुर्लभ पक्षियों के दर्शन कर मन मयूर मानो नर्तन करने को आतुर हो उठा था। हम दम साधे प्रकृति की लीला को देखते हुए अपनी मंजिल की ओर बढ़ रहे थे। उत्तरकाशी से 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित मनेरी से गुजरते हुए हमें पाठशाला जाते हुए बच्चों का एक समूह दिखाई दिया। वे कौतुहल से हमारे काफिले को देखते हुए हमें हाथ हिला रहे थे, मानो हमारा स्वागत कर रहे हों। प्रत्युत्तर में हमने भी हाथ हिलाया। कल को ये ही बालक बड़े होकर पहाड़ में नव चेतना का शंखनाद करेंगे, मैं सोच रहा था। मन ही मन इन बच्चों को मैंने शुभकामनाएँ दीं। मनेरी में भागीरथी का पानी एक लंबी सुरंग द्वारा पर्वत के दूसरी ओर ले जाकर ऊँचाई से गहराई में गिराया जाता है। कृत्रिम जलप्रपात से विद्युत उत्पादन होता है। इसे मेनरीमाली जल विद्युत योजना का नाम दिया है।

प्रकृति की ममतामयी गोद में संरक्षित गढ़वाल हिमालय का सौंदर्य अनूठा है। सम्मोहित करने वाला। हिमालय की सभी घाटियों में भागीरथी घाटी अतुलनीय है। कही भागीरथी रौद्र रूप दिखाती है तो कहीं अत्यधिक शांत भाव से बहती जाती है। यहाँ की वनस्पतिक व जैव विविधता के साथ-साथ चट्टानी वैविध्य भी कमाल का है।

भटवाड़ी : भागीरथी के किनारे बसा एक सुंदर गाँव

हमारा गंतव्य भटवाड़ी आ गया था। मनेरी से 22 किलोमीटर और उत्तरकाशी से 37 किलोमीटर दूर स्थित यह नन्हा-सा गाँव समुद्रतल से लगभग

271 CHD / 2018—9A

2133 मीटर की ऊँचाई पर है। सौभाग्य से वन विभाग का विश्रामालय खाली था। यद्यपि पहले सूचना भेज दी गई थी लेकिन कुछ निश्चित नहीं था। दो कमरे हमें मिल गए थे। एक कमरे में एम टेक अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों ने डेरा जमाया व दूसरे कमरे में रुड़की के शोधार्थी मित्र व डॉ. अरविंद जैन के साथ मैंने अपना आसन सजा लिया। दोपहर के भोजन के पश्चात् हम लोग डॉ. जैन के साथ पैदल ही चट्टानी सैंपल एकत्रित करने के लिए चल दिए। चार घंटे निरंतर हमने डॉ. जैन के निर्देशन में विभिन्न प्रकार के नमूने एकत्रित किए। प्रत्येक नमूने के साथ उसके प्राप्ति स्थान का चिन्ह हम अंकित करते जाते। डॉ. जैन शाम होने तक हमारी ज्ञान क्षुधा शांत करते रहे। अंत में हम सभी भागीरथी के किनारे बैठकर देर तक एकटक निर्निमेष भाव से मंत्रमुग्ध तेजी से बहती उसकी प्रांजल जलधारा को निहारते रहे।

शाम उतरने लगी थी। पहाड़ों पर शाम जल्दी हो जाती है। हमने भी अपने चट्टानी नमूनों से भरा पिट्ठू अपनी-अपनी पीठ पर लादा व चल पड़े विश्राम गृह की ओर। एकाएक अरविंद ने सस्वर एक पुराना फिल्मी गीत गुनगुनाना आरंभ कर दिया, "गंगा जाए कहाँ रे .....।" हम भावविभोर हो गीत सुनते रहे। वन विश्रामगृह तक रास्ता मजे से कट गया।

रात्रि को भोजन के बाद हम सभी अलाव जलाकर विश्राम गृह के प्रांगण में बैठ गए। डॉ. जैन व हम सभी ने मिलकर खूब मनोरंजन किया। रात्रि के निविड़ अंधकार में भागीरथी के किनारे इस प्राचीन वन विश्राम गृह में देर तक गीत, कविता व लतीफे के बाद के ठहाके गूंजते रहे। जब अलाव की आग मंद पड़ने लगी तभी हम लगभग एक बजे सोने चल दिए। यह भी अपने आप में एक अनूठा अनुभव था।

भटवाड़ी आऐ हमें तीन दिन हो गए थे। आज कार्यक्रम के अनुसार हमारा यहाँ अंतिम दिन था। यहाँ का कार्य लगभग पूरा हो गया था। एक कौतुहल मेरे मन में बना हुआ था। तीन दिनों से मैं वन विश्राम गृह में लगी एक जोड़े की तस्वीर देख रहा था जिसमें एक दाढ़ी वाले रौबीले व्यक्तित्व के मालिक अंग्रेज के साथ पारंपरिक गढ़वाली वेशभूषा व आभूषणों से सजी एक गढ़वाली अनिंद्य सुंदरी थी। मैंने भटवाड़ी के कई लोगों से बातचीत की। अंततः एक बुजुर्गवार ने मेरी जिज्ञासा शांत की। उन्होंने बताया कि गढ़वाल में वनों की व्यावसायिक

271 CHD / 2018—9B

चेतना के प्रेरणास्रोत्र थे एक अंग्रेज मिस्टर विल्सन। ये चित्र उन्हीं का है। एक बार गढ़वाल आए तो आजीवन यहाँ के मोहपाश से निकल न सके। उन्होंने ही यहाँ के लोगों को इंग्लैंड से पौधे मँगाकर सेब व आलू की खेती के गुर सिखाए। उनके द्वारा उगाए गए सेब व आलू उस समय विल्सन सेब व विल्सन आलू के नाम से विख्यात हुए थे।

सन् 1840 के आस-पास वे ईस्ट इंडिया कंपनी की मेरठ स्थित सैनिक छावनी से एक बार तत्कालीन टिहरी रियासत (आजकल जनपद टिहरी गढ़वाल) पहुँचे। उन्होंने हरसिल को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। देवदार के सघन वनों की हरीतिमा से ढका हरसिल उस समय वीरान स्थान था। इसे आबाद करने का श्रेय मिस्टर विल्सन को है। उन्होंने ही यहाँ के लोगों को वनों के व्यावसायिक महत्व से परिचित कराया।

बुर्जुगवार आँखें मूँदे अतीत में खोए अपने पुरखों से सुनी विल्सन की कथा सुनाए जा रहे थे। मैं मुग्ध भाव से गढ़वाल के कभी लोकप्रिय रहे व्यक्तित्व की गाथा सुन रहा था। उन्होंने बताया कि मिस्टर विल्सन ने अनेक स्थानों पर झूला पुलों का भी आम जनता की सुविधार्थ निर्माण करवाया। उन्होंने ही नदी बहाव के माध्यम से काष्ठ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने की "राफ्टिंग पद्धति" का इस क्षेत्र के लोगों के हितार्थ पहले पहल प्रयोग किया। मिस्टर विल्सन ने 1865 से 1885 तक जंगलों के दोहन से जो लाभ प्राप्त किया, उसका अधिकांश भाग उन्होंने इस क्षेत्र में पुल बनवाने व पाँच वन विश्रामगृहों के निर्माण पर खर्च कर दिया। इसीलिए वे स्थानीय लोगों से बहुत घुलमिल गए। यहाँ के लोगों की आत्मीयता से वे इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने हरसिल के पास ही स्थित मुखवा गाँव की एक बेहद खूबसूरत युवती से शादी कर ली। जो चित्र विश्राम गृह में विल्सन के साथ तुम तीन दिनों से देख रहे हो, वह उसी युवती का है कहते-कहते बुर्जुगवार की आँखें चमक उठीं। उन्होंने बताया कि आजीवन यह जोड़ी आदर्श बनी रही। प्रगाढ़ प्रेम था दोनों में। आज भी गढ़वाल के लोग उनको याद करते हैं। न केवल मेरी जिज्ञासा शांत हो गई थी बल्कि डेढ़ सदी पूर्व सीमाओं को लांघकर बनी उस विलक्षण जोड़ी के प्रति मैं नतमस्तक हो गया था। सोच रहा था, किसी ने ठीक ही कहा है कि प्रेम शाश्वत है और देश, जाति, धर्म की सीमाओं व बंधनों से परे एक अलौकिक अनुभूति है।

भटवाड़ी की मधुर यादें संजोए मैंने अपने दल के साथ अगले दिन प्रात: गंगनानी के लिए प्रस्थान किया। भटवाड़ी धीरे-धीरे पीछे छूट रहा था। गंगनानी भटवाड़ी से लगभग 15 किलोमीटर दूर है। गंगनानी में ऋषि कुंड में गर्म पानी के चश्मे हैं। दूर-दूर से लोग यहाँ स्नानार्थ आते हैं। लगभग 2133 मीटर की ऊँचाई पर स्थित गंगनानी से दुर्गम चढ़ाई आरंभ हो जाती है। हमने यहाँ से कुछ चट्टानी नमूने लिए व चल पड़े हरसिल की ओर। गंगनानी से 13 किलोमीटर दूर सुखी आते-आते ऊँचाई 2651 मीटर हो गई थी। हम अपने आपको शिखर पर अनुभव कर रहे थे। एकाएक ठंड बढ़ गई थी। दूर तक छितराए रूइनुमा बादलों से झाँकती पर्वत श्रेणियाँ मनोहारी दृश्य उपस्थित कर रही थीं। यहाँ हम थोड़ी देर रुके। चाय पीने की इच्छा ने हमें रुकने पर विवश कर दिया। चाय सुड़कते हुए जब हमने हरीतिमायुक्त चोटियों के मध्य से झांकती हिमंडित चोटियों को निहारा तो बस एकटक देखते ही रह गए। सारा दृश्य जादुई सौंदर्य से परिपूर्ण लग रहा है। कुछ देर हम मौन भाव से प्राकृतिक सुषमा का सौंदर्यपान करते रहे। चाय कब समाप्त हो गई, पता ही न चला। और चाय पीने का मन था। लेकिन चलने का आदेश हो गया था।

हरसिल : फेल्डरिक विल्सन की कर्मस्थली

हरसिल की ऊँचाई सुखी से तनिक कम है। सुखी से आगे उतराई आरंभ हो गई थी। बीच-बीच में उड़ते बादल जब हमारे पास से गुजरते तो स्वर्गिक आनंद की अनुभूति होती। यह एक रोमांचकारी अनुभव था। हरसिल पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई थी।

लगभग 2438 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हरसिल एक सुरम्य स्थल है। मिस्टर विल्सन जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है की कार्यस्थली रहे हरसिल में ही पहले पहल "विल्सन सेब" व "विल्सन आलू" उगाए गए थे। आज हरसिल सेब के बागीचों के लिए विख्यात है। यहाँ लक्ष्मीनारायण मंदिर, धर्मशाला, एक विश्रामगृह व कुछ होटल भी है। मिस्टर विल्सन ने यहाँ कीमती इमारती लकड़ी का भव्य विश्राम भवन का निर्माण कराया था जो कुछ वर्ष पूर्व आग की भेंट चढ़ गया। चित्ताकर्षक प्राकृतिक दृश्यावलियों को अपने आँचल में समेटे हरसिल का प्राकृतिक सौंदर्य देखते ही बनता है। हरसिल में दो दिन

रहकर हमने चट्टानी नमूने एकत्रित किए। शोध संबंधी कार्य संपन्न हो गया था। शोध ग्रुप अब लौटने की तैयारी में था। मैंने डॉ. जैन से अनुमति लेकर आगे जाने का कार्यक्रम बना लिया। सभी से बिछुड़ते हुए हार्दिक पीड़ा हो रही थी। एक सप्ताह पता ही नहीं चला कैसे बीत गया। एक दूसरे की स्नेह सरिता में डूबे समय बहुत जल्दी बीत गया। भारी मन से मैंने सभी से विदा ली।

लंका प्रस्थान

हरसिल से लंका के लिए बस मिल गई थी। ऊँचाई फिर से बढ़ने लगी थी। मार्ग भी कठिनतर हो चला था। भूस्खलन के कारण कई जगह सड़क दयनीय हालत में थी। फिर भी चालक कुशलता से गाड़ी चला रहा था। हरसिल से 31 किलोमीटर दूर फेल्डरिक विल्सन की ससुराल मुखवा आते ही उनकी गढ़वाली पत्नी का उनके साथ भटवाड़ी विश्राम स्थल में लगा चित्र जेहन में घूम गया। इसी मार्ग पर जह्नु ऋषि की तपस्थली है। पौराणिक आख्यान के अनुसार जब भगीरथ के तप से गंगा का पृथ्वी पर अवतरण हुआ, तो मार्ग में जह्नु ऋषि का आश्रम जल प्लावित हो गया। कहा जाता है उन्होंने गंगा को पी लिया। भागीरथ की अनुनय पर उन्होंने पुत्री के रूप में गंगा को पुनः पृथ्वी पर बहा दिया। इसीलिए गंगा जह्नुसुता या जाह्नवी नाम से भी जानी गईं।

सौभाग्य से मौसम साफ था। आगे का रास्ता भी अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में था। हमने लंका तक का दो तिहाई रास्ता तय कर लिया था। मात्र तीन किलोमीटर का सफर शेष रह गया था। हरसिल से लंका की दूरी लगभग 21 किलोमीटर है। कुशल बस चालक के बस की बात है इस मार्ग पर मोटर चलाना। जैसे ही हमारा बस चालक तीखे मोड़ पर बस घुमाता, भयमिश्रित रोमांच हो आता। हम राम नाम स्मरण करते रहे। देवदार के घने पेड़ों के बीच से छनकर आती सूर्य की रश्मियाँ मनोहारी दृश्य उत्पन्न कर रही थी। यह हमारा सौभाग्य था कि हरसिल से लंका तक कहीं भी भूस्खलन के कारण मार्ग अवरुद्ध नहीं मिला। लंका पहुँचते ही हमने चैन की सांस ली। 2800 मीटर की ऊँचाई पर स्थित लंका एक मनोरम स्थल है। यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर मैं आश्चर्यचकित था।

भैरोंघाटी

लंका से भैरोंघाटी तक का रास्ता पैदल तय करना था। मैंने अपना पिट्ठू पीठ पर लादा व अन्य सहयात्रियों के साथ भैरोंघाटी की ओर चल पड़ा। गाते बजाते रास्ता खूब मजे में कट रहा था। एक गुजराती बंधु तनु पटेल अपने माउथऑर्गन पर कोई पुरानी फिल्मी धुन छेड़ बैठे थे। उन्होंने सभी को भाव विभोर कर दिया था। मुझे पैदल चलते-चलते भूख लग आई थी। मैंने साथ लाए गुड़-चने का भोग स्वयं भी लगाया व सहयात्रियों को भी लगवाया। भैरोंघाटी तक के तीन किलोमीटर के पैदल रास्ते में डेढ़ किलोमीटर उतराई है, फिर लगभग इतनी ही कठिन चढ़ाई। सामान के साथ चढ़ना और भी दूभर लग रहा था पर घाटी का सौंदर्य थकान मिटा देता है। चट्टानों से टकराती, वेग से सर्पिलाकार पथ पर बढ़ती भागीरथी दैवीय शक्ति का स्मरण कराती है। भागीरथी घाटी का सौंदर्य हमारी थकान दूर कर रहा था।

भैरोंघाटी पहुँचते ही हम एक चाय की दुकान पर रुके। चाय पीकर कुछ राहत मिली। अभी हमें गंगोत्री तक 9 किलोमीटर की दूरी और तय करनी थी। आधा घंटा रुककर हम आगे चल पड़े। इस बार हमारे एक बंगाली सहयात्री नरेन घोषाल ने कठिन रास्ते को आसान बनाने की ठान ली। पहले तो उन्होंने कुछ हँसिकाएँ सुनाई। फिर अपनी सुमधुर आवाज में कुछ बंगाली गीत सुनाकर समां बांध दिया। बंगला भाषा न आते हुए भी हम दोनों भाषा के बंधन से मुक्त हो भाव-बंधन में बंध गए थे। यही भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र भी है। मैंने भी कुछ व्यंग्यिकाएँ व कविताएँ सुनाई।

पैर जवाब देने लगे थे। लगता था कि अब गिरे अब गिरे, लेकिन एक अदृश्य शक्ति हमें मानों संचालित कर रही थी। हम निरंतर चलते चले जा रहे थे। पटेल भाई ने गुजराती सींग दाना (भुनी मूंगफली) सभी में वितरित किया। खाते गाते बजाते भक्तिभाव से हम धीरे-धीरे बढ़े जा रहे थे। थकान के कारण यद्यपि हमारी चाल धीमी हो गई थी लेकिन हमारे उत्साह में कोई कमी न आई थी। शाम हो चली थी। हमारी मंजिल भी पास आती जा रही थी।

गंगोत्री : माँ गंगा को समर्पित पवित्र स्थली

अंतत: लगभग 7 बजे हम गंगोत्री पहुँच गए थे। अंधेरा घिर आया था। सबसे पहला कार्य हमने धर्मशाला ढूँढने का किया। सौभाग्य से धर्मशाला मिल

गई। अधिक भीड़भाड़ न थी। रजाइयाँ व गद्दे भी मिल गए थे। एक पंडा जी के माध्यम से हमें हाथ मुँह धोने के लिए गर्म पानी भी मिल गया था। गर्म पानी हमारे लिए नियामत था। कुछ राहत मिली। चाय पी और थोड़ा-सा खा-पीकर मैं रजाई में दुबक गया। रजाई में घुसते ही कब नींद आ गई, पता ही नहीं चला। सुबह छह बजे आँखे खुली तो स्वयं को तरोताजा पाया।

प्रात: ही हम सभी ने भागीरथी में स्नानकर पुण्य लाभ कमाया। कुछ लोगों ने हाथ मुँह धोकर ही इतिश्री कर ली। पानी था ही इतना ठंडा कि एक बार तो शरीर सुन्न हो गया। वहाँ से हम सीधे गंगोत्री मंदिर में गए। आरती में सम्मिलित हुए। "जय गंगे" का मधुरगान बहुत भला लग रहा था। गंगोत्री मंदिर देवी गंगा को समर्पित है। यहीं महाराज भागीरथ ने अपने पुरखों के उद्धार के लिए स्वर्गवासिनी गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए ब्रह्मा जी व भगवान शिव की आराधना की थी। उनकी घोर तपस्या से ब्रह्मा जी व भगवान शंकर प्रसन्न हुए। ऐसा वर्णित है कि गंगा भगवान विष्णु के पद नख से निकलकर ब्रह्मा जी के कमंडल में वास करती हैं। ब्रह्मा जी के कमंडल से वेग से निकली गंगा को भगवान शंकर ने अपनी जटाओं में सहेज लिया। वहीं से धीरे-धीरे गंगा जी का अवतरण हुआ। तभी इस स्थान का नाम गंगोत्री पड़ा। 5500 पूर्व की गई भगीरथ की तपस्या सफल हुई। उनके पुरखों (सगरपुत्रों) का उद्धार करती हुए गंगा अंतत: समुद्र में जा मिलीं। तब से अब तक प्राणदायिनी, मोक्षदायिनी गंगा न जाने कितनों का उद्धार कर चुकी है। ऐसा भी वर्णित है कि भगीरथ से प्रसन्न होकर गंगा ने अपना एक नाम भागीरथी भी रख लिया। गंगा यहाँ कुछ दूर तक उत्तर की दिशा में बहती है इसीलिए इस स्थान का नाम गंगोत्री (गंगा उत्तर की ओर मुड़ी) पड़ा। गंगोत्री तीर्थ का निर्माण 18वीं सदी में गोरखा कमांडर अमर सिंह थापा ने कराया था। गंगोत्री मंदिर मई से अक्तूबर तक ही खुला रहता है। शेष समय बर्फ की चादर से ढका रहता है।

गंगोत्री अनेक ऋषि-मुनियों की तप:स्थली है। आज भी अनेक साधु यहाँ स्थित विभिन्न मंदिरों में व कुछ गुफा कंदराओं में रहते हैं। एक दो साधुओं से मैंने भी आशीर्वाद लिया। कुछ देर बैठकर उनके सत्संग का लाभ उठाया। मैंने उनसे पूछा, "महात्मन् क्या सर्दियों में भी आप यहाँ रहते हैं?" उन्होंने बताया कि

सदियों में भी साधु यहीं रहते हैं। प्रभु भक्ति ही उन्हें यहाँ विषम परिस्थितियों में जीने की शक्ति देती है। मैं कौतुहल से भावविभोर हो उनकी बातें सुन रहा था।

3140 मीटर की ऊँचाई पर स्थित गंगोत्री मंदिर के दर्शन एवं यहाँ गंगोत्री में स्नान कर मैं अपने आपको धन्य समझ रहा था। समयाभाव के कारण मैं गोमुख तक न जा पाया। गोमुख यहाँ से लगभग 23 किलोमीटर दूर दुर्गम पहाड़ों में स्थित है। 4138 मीटर की ऊँचाई पर स्थित गंगोत्री ग्लेशियर से गोमुख नामक स्थान पर प्रस्फुर्टित होती है गंगा। यहाँ तक रास्ता बेहद कठिन व थका देने वाला है, लेकिन कुछ श्रद्धालु फिर भी वहाँ तक पहुँचते हैं।

माँ भागीरथी को नमन कर, अनेक मधुर स्मृतियाँ अतंस् में आत्मसात् किए मैं लौटने की तैयारियों में जुट गया। तैयारियाँ करते-करते मैं सोच रहा था कि गंगा को पवित्रतम नदी यूँ ही नहीं माना जाता। यह हमारे देश की भावनात्मक एकता की सुंदरतम प्रतीक है। भारत की अखंडता की द्योतक है, जन-जन की आराध्य है। इसीलिए चाहे कोई बंगाली हो या मद्रासी या फिर मराठी या राजस्थानी, नहाते समय यही श्लोक गुनगुनाता है :

"जंबू द्वीपे भरत खंडे,
उत्तराखंडे, पवित्र गंगा तीरे।"
'गंगे च यमुने चैव गोदावरी, सरस्वती नर्मदे सिंधु
कावेरी, जलेस्मि न सन्निधिं कुरु।।"

– प्राचार्य, जे. सी. डी. मेमोरियल (पी. जी.) कॉलेज, सिरसा (हरियाणा)

❑❑❑

फूल-पत्ते और काँटे

सतीश श्रोत्रिय

पात्र

1. साहब : एक ऑफिस का अफसर
2. बाबू : ऑफिस का चपरासी
3. मुकेश बाबू : थिएटर के निर्देशक

(पर्दा उठता है।)

(साहब अपने कमरे में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। चपरासी आकर साहब की टेबल पर से फाइल लेकर चला जाता है। क्षणिक मौन के पश्चात् चपरासी आकर साहब को एक चिट देता है।

साहब : (चिट लेकर पढ़कर) उन्हें अंदर भेज दो।

चपरासी : अच्छा साहब। (प्रस्थान) (मुकेश बाबू का प्रवेश)

साहब : (उठकर) आइए मुकेश बाबू, बैठिए। मैं बहुत खुशकिस्मत हूँ कि आज यहाँ पर शहर के बहुत बड़े नाट्य-निर्देशक का आगमन हुआ है।

मुकेश : (कुर्सी पर बैठकर) अजी साहब, आपने तो एक अदने से आदमी को चाँद तक पहुँचा दिया है।

साहब : क्यों नहीं-क्यों नहीं। आपने अपने कुशल निर्देशन द्वारा अदने से अदने नवीन कलाकारों को बहुत ऊँचाई पर पहुँचा दिया है।

मुकेश : बस-बस रहने भी दीजिए साहब। मैं आपके पास एक जरूरी काम से आया हूँ।

साहब : काम और उसका संबंध मुझसे है, यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

मुकेश : जी हाँ, उसका संबंध आपसे है। उसे आप ही पूरा कर सकते हैं।

साहब : मैं ही कर सकता हूँ? तो फिर बताइए, वह कौन-सा काम है?

मुकेश : थिएटर की ओर से एक नाटक विषमता खेला जाने वाला है। जिसमें आपको एक अजीबो-गरीब भूमिका अदा करनी है। (चपरासी एक तरफ छिपकर इन दोनों की बातें सुनता है।)

साहब : अजीबो-गरीब भूमिका, मैं समझा नहीं आपका मतलब?

मुकेश : आप हैं साहब, लेकिन आपको भूमिका अदा करनी है चपरासी की।

साहब : (आश्चर्य से) चपरासी की भूमिका मुझे अदा करनी है। यह आप क्या कह रहे हैं, मुकेश बाबू?

मुकेश : सच्चा कलाकार वही है जो हर तरह की भूमिका कुशलता के साथ अभिनीत कर सके।

साहब : मैं इस भूमिका को करने में संकोच नहीं कर रहा हूँ। मैं उस भूमिका को कैसे कर सकूँगा?

मुकेश : मुझे पूरा विश्वास है कि आप इस भूमिका को भलीभाँति निभा पाएँगे।

साहब : लेकिन मैं इस काबिल कहाँ हूँ?

मुकेश : (बीच में ही) देखिए अब मैं आपकी एक न सुनूँगा। (बैग में से स्क्रिप्ट निकालकर देते हुए) यह है आपकी स्क्रिप्ट। इसे आपको तैयार करना है।

साहब : (स्क्रिप्ट लेकर पन्ने पलटते हुए) मुकेशजी, आपने मुझे बड़ा टिपीकल पार्ट दिया है।

मुकेश : (उठकर) मुझे पूरा विश्वास है कि आप इस भूमिका को बड़ी कुशलता से कर पाएँगे। अच्छा, अब मैं चलता हूँ। (प्रस्थान)

साहब : (खड़े होकर चहलकदमी करते हुए स्वगत) चपरासी का पार्ट करने के लिए क्या करना चाहिए? (सोचकर) अरे हाँ, यह ठीक रहेगा। (कुर्सी पर बैठकर कॉलबेल बजाता है। फिर भी चपरासी नहीं आता है। चिल्लाकर पुकारते हुए।) अरे बाबू? न जाने कहाँ मर गया है? चपरासी आजकल हरामखोर हो गए हैं। कामधाम कुछ करते नहीं। स्टूल पर बैठे नींद निकालते रहते हैं। (जोर से) बाबू$$$, ओय बाबू?

बाबू : (आते हुए) आया साहब।

साहब : (क्रोध से) आया साहब का बच्चा।

बाबू : (जल्दी से) जी साहब।

साहब : (मुँह बनाकर) जी साहब। शेर की तरह बाहर बैठा साहब की बुराइयाँ करता रहता है और अंदर आते ही भीगी बिल्ली बन जाता है। सुनता नहीं, क्या बहरा हो गया है?

बाबू : (भयभीत होकर) जी.... मैं.... वो....

साहब : (तेजी से) बोलता क्यों नहीं-कहाँ चला गया था?

बाबू : (डरते हुए) जी.... वो.... शर्माजी ने चाय मँगवाई थी.... इसीलिए....

साहब : (बीच में) होटल पर चला गया था।

बाबू : जी साहब।

साहब : (डाँटकर) तू होटल का बैरा है या इस ऑफिस का चपरासी? चाय लाने की क्या जरूरत थी?

बाबू : जी, उन्होंने भेजा था। इसलिए जाना पड़ा।

साहब : तुम ऑफिस के नौकर हो या होटल के?

बाबू : ऑफिस का नौकर हूँ, साहब।

साहब : फिर होटल क्यों गए?

बाबू : (डरकर) उनका काम न करुँ तो वे समय पर पगार नहीं देते हैं।

साहब : नालायक, चले जाओ यहाँ से। तुम---तुम गधे हो।

बाबू : जी साहब। (प्रस्थान)

साहब : (चहलकदमी करते हुए स्वगत्) चपरासी किस तरह बोला था- डरते हुए- उनका काम न करूँ साहब, तो वे वेतन नहीं देते जी.... जी.... वो.... शर्माजी ने चाय मँगवाई थी इसलिए ऊँ हूँ, अभी ठीक जमा नहीं। एक बार और आजमाता हूँ। (कुर्सी पर बैठकर कॉलबेल बजाते हैं।) बाबू, सूअर कहीं का, फिर न जाने कहाँ चला गया? अरे बाबू?

बाबू : (प्रवेश करके) आया साहब।

साहब : (टेबल ठोककर) नालायक, उल्लू-सूअर। मैं कब से चिल्ला रहा हूँ और तेरे सिर में जूँ तक न रेंगती है।

बाबू : (डरते हुए) जी.... जी.... मैं.... वो....

साहब : (डाँटकर) कहाँ गए थे?

बाबू : (चुप खड़ा रहता है।)

साहब : (डपटकर) जब देखो तब ऑफिस से नदारतद। यह ऑफिस है, समझे। मैं पूछता हूँ, सुबह देर से क्यों आए थे?

बाबू : (डरकर) मैं हैडसाहब के यहाँ पानी भरने चला गया था इसलिए देर हो गई थी।

साहब : (तेजी से) हेडसाहब के घर पर पानी भरना ऑफिस का काम नहीं है। होटल से चाय लाना क्या ऑफिस का काम है? कल से हेडसाहब की बीबी बीमार हुई तो उनके कहने पर उनकी बीबी का लहँगा धोने लगोगे।

बाबू : (भरे गले से) यह काम भी मुझे करना पड़ता है। मैं मजबूर हूँ, साहब। नौकरी चली जाए तो बाल-बच्चों को कैसे पालूँ?

साहब : (डाँटकर) गलती भी करता है और फिर ऊपर से गिड़गिड़ाता भी है। हेडसाहब के नौकर हो जाओ।

बाबू : हुजूर माई-बाप हैं। गरीबपरवर, मैं तो चौबीस घंटे की ड्यूटी बजाता हूँ साब। मैं अनपढ़ आदमी इसी काबिल हूँ। गर्मी के मौसम में हुजूर कूलर की हवा खाते हैं और मैं बाहर गर्मी में तपता हूँ। यह भेदभाव क्यों होता है, साहब?

साहब : बाबू, मुँह संभालकर बात करो।

बाबू : (गिड़गिड़ाकर) हुजूर.... मैं.... तो....

साहब : (डपटकर) निकल जाओ यहाँ से। गेट आउट। मैं तुम्हें नौकरी से निकालता हूँ।

बाबू : (रोते हुए) हुजूर, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ। मुझे नौकरी से मत निकालिए। मैं मर जाऊँगा। मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे। मैं आपके पैर पड़ता हूँ। (पैर पकड़ता है।)

साहब : (ठोकर लगाकर) मेरे पैर छोड़ दो। कमरे से बाहर हो जाओ।

बाबू : (उठते हुए हाथ जोड़कर रोते हुए) हुजूर, मैं बेकसूर हूँ। मुझे नौकरी से मत निकालिए।

साहब : (जोर से) गेट आउट। चले जाओ यहाँ से।

(बाबू का धीरे-धीरे प्रस्थान)

साहब : (मुस्कराकर स्वगत) बहुत सुंदर। इसे कहते हैं अभिनय। चपरासी ने लाजवाब एक्टिंग की है। बस इसी एक्टिंग की मुझे नकल करनी है। इस एक्टिंग को देखकर मुकेश बाबू तो....। (तत्काल मुकेश का प्रवेश)

मुकेश : ओहो, तो आप मुझे ही याद फरमा रहे थे।

साहब : जी हाँ।

मुकेश : तो मेरी उम्र लाख बरस की हुई।

साहब : बिल्कुल। अचानक फिर कैसे आना हुआ?

मुकेश : अरे साहब, आपकी भूमिका निपटी तो लेडिज पार्ट की समस्या आन फँसी।

साहब : तो फिर क्या सोचा आपने?

मुकेश : मैं सोचता हूँ आपके ऑफिस की सीमा देवी ठीक रहेगी।

साहब : अच्छा, वो मेरी टाइपिस्ट?

मुकेश : हाँ, जिसने गत बार कटु सत्य नाटक में पार्ट किया था।

साहब : आप तो पार्ट देने के मामले में खूब माहिर है।

मुकेश : हाँ, तो आपकी भूमिका तो ठीक रही न?

साहब : आप यहाँ से गए और मैंने चपरासी को बुलाकर जो डाँटना शुरू किया तो वह गिड़गिड़ाया-रोया। बस, मैंने उसकी नकल सीख ली।

मुकेश : आपने तो बिना निर्देशन के ही निर्देशन पा लिया है।

साहब : अरे बेचारा दुखी हो रहा होगा। उसे बुलाता हूँ। (कॉलबेल बजाता हूँ।)

(चपरासी का प्रवेश)

बाबू : जी साब?

साहब : मैंने अभी जो दुर्व्यवहार तुम्हारे साथ किया है। उसे सच मत समझना। वह तो केवल नाटक था।

बाबू : (मुस्कराकर) तो क्या आप मेरे गिड़गिड़ाने और रोने को सच समझ रहे थे?

साहब : हाँ, क्यों, क्या बात है?

बाबू : साब, मैं भी तो आप ही की तरह नाटक कर रहा था।

साहब : (आश्चर्य) तुम भी नाटक कर रहे थे?

बाबू : हाँ साब, मैं भी नाटक ही कर रहा था।

दोनों : (खिलखिलाकर) यह भी खूब रही।

साहब : तुम ऐसा क्यों कर रहे थे?

बाबू : चपरासी संघ भी एक नाटक कर रहा है- फूल-पत्ते और काँटे। मुझे उसमें साहब की भूमिका करना है- वह मैंने साब से सीख ली।

साहब : तो मतलब यह हुआ कि मैं भी ढोंग कर रहा था और तुम भी।

मुकेश : (खड़े होकर) अब मैं पूरी तरह से कह सकता हूँ कि थिएटर और चपरासी संघ दोनों के नाटक सफलता के साथ मंचित होंगे।

साहब : यह भी खूब रही।

(तीनों ताली बजाकर खिलखिलाकर हँसते हैं। पर्दा गिरता है।)

– मुगलपुरा, जावरा, जिला रतलाम (म. प्र.)

❑❑❑

मरण सागर पारे

शिवानी

आज जब उनके संस्मरण लिपिबद्ध करने बैठी, तो न जाने कौन-सी प्रेरणा मुझे बहन के पूजागृह में टंगे उनके बड़े से चित्र की ओर खींच ले गई। शायद यह लेखनी के ही अंतर्मन की प्रेरणा थी, मेरी नहीं। हो सकता है, वह गतिशील होने से पूर्व उस सरल चेहरे की एक-एक रेखा को कंठस्थ करना चाह रही थी। एकदम वही चिरपरिचित स्निग्ध हँसी, उदार आँखों में अकपट वात्सल्य और अनुभव की झुर्रियों में न जाने कितने अनाथ हृदयों के कृतज्ञ हस्ताक्षर! कैसा बोलता, जीता-जागता चित्र था!

वैसे भी मेरी यह धारणा है कि जिसने जैसा जीवन जिया है, उसकी एक-एक रेखा उसके चित्र में उभर आती है, चाहे कुशल चितेरे का कैमरा या तूलिका अनचाही रेखाओं को कितनी ही मिटाना चाहे। जिसका हृदय निष्कपट है, उसका चित्र भी अवश्य ही उतना ही निष्कपट उतरता है, उतना ही स्वाभाविक– अर्थात् अंतरंग और बहिरंग समान रूप से उज्ज्वल ऐसे चित्र और उनके मॉडल प्रायः ही दुर्लभ होते हैं। कैमरामैनों को फोटो खींचने से पूर्व उन्हें फोटोग्राफरों का बहुप्रचलित अंग्रेजी आदेश 'चीज' (Cheese) नहीं देना पड़ता। यही कारण है कि संसार के सर्वश्रेष्ठ बहुचर्चित चित्र वे ही माने गए हैं जिनमें मॉडल की सहज निर्दोष स्वाभाविकता पूर्ण निश्छलता से उभरकर मुखरित हुई है। चित्र को दुबारा देखती हूँ, तो चेहरे की साधारण बनावट को उस अनोखे व्यक्तित्व की गरिमा जैसे किसी अदृश्य रबर से मिटाकर दूर फेंक देती है।

सौभाग्य से मेरे जीवन में परिचय का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत रहा। पिता की रियासती दीवानी ने शैशव से ही जीवन को अनेक व्यक्तित्व-संपन्न महिलाओं

का सान्निध्य निरंतर प्रदान किया। रानी-महारानियाँ, बेगमें, राजकन्याएँ, राजमहलों के आमोद-उत्सवों में अतिथि बनकर आने वाली प्रसिद्ध नृत्यांगनाएँ, गायिकाएँ, राजकुमारियों के पीछे-पीछे 'खम्मा-खम्मा' करती छाया-सी डोलने वाली छत्र-चमरधारिणी सौराष्ट्री खवासिनें, पेशेदारिनें, उच्च आंग्ल समाज के रेजिडेंट-कमिश्नरों की पत्नियाँ, जिनकी चार-चार गिरही फिरंगी जूतियों की ऊँची एड़ियों की खटखट अभी भी कभी भूले-बिसरे दिवास्वप्नों के बीच सहसा चौंका देती है। कभी बुंदेलखंडी ड्योढ़ियों के संगमरमरी फर्श में बजते पैजनों की झंकार, खड्ग-सी तीखी राजपूती नासिका पर चमकती सोने की बुंदेलखंडी 'पुंगनिया', ककरेजी कछोटे से झाँकती सुडौल गेहूंगोरी पिंडलियाँ लेखनी को संवार जाती हैं, और कभी रामपुर के खास बाग के अंदर महल में छापरखट-से चौड़े तख्तों पर अलसाई बिल्लियों-सी बदन तोड़ती, पेचदार गुड़गुड़ी में अंबरी तंबाकू के सुवासित छल्ले उड़ाती रोहिल्ला पठानियों के सतरंगी अबरकी दुपट्टे की स्मृति मुझे विह्वल कर जाती है। नारी के कितने रूप देखने का सुअवसर दिया ईश्वर ने! किंतु सतरंगी रामधुन की छटा के बीच जो सरल-साधारण चेहरा सबसे अधिक प्रखरता से उभरता है, वह है बसंती दीदी का।

इसी साधारण चेहरे की असाधारण स्वामिनी ने मुझे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाया—ऐसा पाठ, जो कंठस्थ करने में समय नहीं लेता; किंतु जिसे साधकर, सही उत्तर लिखने में स्याही सदा फैल ही जाती है। एक बार जब उनके अनेक आश्रितों में से एक पढ़-लिख, योग्य बन विदेश में आया और बैरिस्टर बन गया, तो बहुत वर्षों बाद मैंने किसी से उसके अतीत की कहानी सुनकर बसंती दीदी से कहा, "क्यों, बसंती दी, एक नौकर को तुमने पढ़ा-लिखाकर इतना योग्य बनाया, उसने तुम्हें कभी कुछ भेजा?"

"अरी चल हट, मैंने क्या उसे इसलिए पढ़ाया था कि वह मुझे कुछ भेजे! पर जब कभी भी आया, कुर्सी देने पर भी नहीं बैठा, खड़ा ही रहा।" उनका चेहरा कृतज्ञ भृत्य की नम्रता की स्मृति से स्निग्ध हो उठा।

"मैं उसकी जगह होती, तो तुम्हें सोने से मढ़ देती।" मैंने कहा।

"अरी, सोने से तो मैं तब ही मढ़ गई, जब सुना कि वह 'बारिसटर' बन गया। देख, एक बात मेरी गांठ बांध ले—किसी का भला करती है, तो कभी मुँह मत खोल और न कभी यह आशा रख कि तुझे वह सोने से मढ़ेगा।" नेकी कर

271 CHD / 2018–10A

दरिया में डालने का पाठ तो उन्होंने पढ़ा दिया; किंतु उस पाठ का शतांश भी मैं कभी जीवन में उतार न पाई।

बसंती दीदी से मेरे दो रिश्ते थे। दूसरा रिश्ता प्रथम परिचय के बहुत बाद बना, जब छोटी बहन उनकी पुत्रवधू बनी। उससे पूर्व वे मेरी एकमात्र ननद की जिठानी थीं। मेरी ननद अल्प अवधि तक ही विवाह-सुख भोग सकी थीं; किंतु उस अवधि में ही जिठानी ने मातृहीना देवरानी को जिस अपनत्व से अपनाया, यक्ष्मा की रोगिणी होने का संदेह होने पर भी जिस स्नेह से उनकी दिन-रात सेवा की, उसके लिए हमारा कृतज्ञ परिवार वर्षों से ही उन्हें दिवंगता पुत्री की ही मान्यता देता चला आ रहा था। कुमाऊँ के ऐसे प्रत्येक पर्व पर, जिसमें पुत्री के लिए मायके से विशेष सौगात के साथ घृत-पकवान भेजे जाते हैं, उसी निष्ठा से वे भेजे जाते रहे, जैसे सगी पुत्री के लिए भेजे जाते हैं। इसी से जब मेरा विवाह हुआ, तो मेरे श्वसुर सबसे पहले मुझे अपनी इन्हीं दत्तक पुत्री के पास लाए थे। "बहू, इनके पैर छू! वह तेरी सगी नानज्यू (बड़ी ननद) हैं।"

आज भी उनकी वह प्रथम छवि किसी जराजीर्ण अलबम में लगे धूसर गोधूमवर्णी चित्र-सी आँखों में तिर उठती है। पृथुल चेहरा, वैसा ही पृथुल शरीर, बीसियों सलवटें पड़ी म्लान साड़ी, किंतु अम्लान चेहरे पर दिव्य हँसी, जो पहली ही झलक में किसी अपरिचित को भी परिचय के घेरे में बांधकर अपना बना लेती थी। पास ही एक डलिया में उनका दुधमुंहा शिशु अंगूठा चूस रहा था। मुझे आश्चर्य हुआ था, क्योंकि उनका सद्य: मातृत्व उनके प्रौढ़ व्यक्तित्व से एकदम ही मेल नहीं खा रहा था। शायद मेरा आश्चर्य उन्होंने भाँप लिया। "देखा अंबिदा", उन्होंने मेरे श्वसुर से हँसकर कहा "तुम्हारी बहू सोच रही है कि यह इस बुढ़िया का बेटा है या नाती। अरी, यह मेरी उन्नीसवीं संतान है!" और वे जोर से हँसीं। 'हे भगवान!' मैं आश्चर्य से अभिभूत हो गई, 'क्या सचमुच ही यह उनकी उन्नीसवीं संतान है।' किंतु उन उन्नीस संतानों में अधिकांश ऐसी हैं, जिन्हें उन्होंने गर्भ में धारण न करने पर भी जननी के अकपट वात्सल्य से अपनाया है, यह मुझे घर लौटने पर पता लगा। उनके व्यक्तित्व के उस पहलू से जब मैं परिचित हुई तो उस अपढ़ वात्सल्यमयी के विराट परिवार-संचालन की अद्‌भुत महिमा मुझे दंग कर गई।

271 CHD / 2018-10B

न जाने कितने अनाथ भानजे-भतीजियों, आत्मीय-अनात्मीयों के कल-कंठ से पूरा घर गूंज उठता। एक-एक कर न जाने किधर-किधर से बच्चे आ टपकने लगते! मिट्टी-लिपे चौके में कोयले की लक्ष्मण-रेखा खींच, एकवस्त्रा बनी बसंती दीदी अपने उस विचित्र अटाले का संचालन स्वयं कर स्कूली भीड़ को जिमातीं। बड़ी-सी कड़ाहियाँ, उनसे भी बड़े पतीले और दीर्घ कलछुल। न जाने कितनी थालियों में चावल-दाल परोसते-परोसते बसंती दीदी कठोर अभिभाविका के आदेश देतीं, "अबके फेल हुआ छोकरे, तो पोलीटेकनीक में डाल दूँगी, समझा?.... खबरदार जो एक रोटी का टुकड़ा भी बरबाद किया!" साक्षात् अन्नपूर्णा के धैर्य से ही एक पंगत को जिमा, दूसरी को बैठाने का आदेश देतीं। उस बृहत् आयोजन के बीच भी उनकी पाककला-निपुण उंगलियाँ पहाड़ी व्यंजनों में न जाने कैसा अद्भुत रस टपकाती रहतीं। उनके हाथ के-से स्वादिष्ट 'सिंगल' और कुरकुरे 'खूजर' खाने का सौभाग्य मुझे फिर कभी नहीं मिला।

विवाह होकर ससुराल आई, तो वयस थी कुल ग्यारह वर्ष। भरा-पूरा संस्कारग्रस्त परिवार था। पति की उन दिनों की कप्तानी किसी भी अंश में आज की कमिश्नरी से कम नहीं थी। बालिका वधू ने कैशोर्य में कदम भी नहीं रखा था कि मृत्यु ने किसी अवांछित दुःसाहसी अतिथि की भाँति मरुत की गति से पूरे परिवार को प्रकंपित कर झकझोर दिया। जेठ-जिठानी की लगभग एकसाथ ही मृत्यु हुई और जिठानी अपनी क्षीणकाया पुत्री दुर्गा को उन्हीं की गोद में डाल गई। उस मातृहीन भतीजी पर उनका लाड़-प्यार स्वयं अपने में एक मिसाल था। इतने वर्षों बाद भी जब कभी वे मुझे उसके विवाह, पुत्रजन्म और मृत्यु की बातें सुनाने लगतीं तो आँखें छलछला आतीं। "अरी बड़ी 'मोहिली' (स्नेही) थी दुश्मन! जाने से पहले बस इतना ही कह सकी, 'इजा, इस अभागे को भी तू ऐसी ही छाती से लगा लेना, जैसे तूने मुझे लगाया था।"

पर उस विराट छाती में क्या वही एक अभागा लगा था। उधर भाई-भाभी भी एक साथ प्लेग की चपेट में आ गए। दुधमुँहा पुत्र मृत जननी के स्तन से लगा था। "मेरा खोटा भाग्य ही ऐसा रहा", वे ऐसी अपूर्व हँसी से चेहरा उद्भासित कर कहतीं, जैसे कोई चुटकुला सुना रही हों, "जो भी गया, जोड़ों में ही गया और मेरे लिए एक तोहफा छोड़ गया।" किंतु उनका यही दुर्भाग्य तो

उन अनाथ तोहफों का सौभाग्य बन गया। जिस अनाथ भतीजी को पाल-पोसकर कन्यादान किया वह भी चल बसी। उधर अपना परिवार भी विस्तृत हो चला था। अथर्ववेद में स्त्री का जो गृह-सम्राज्ञीरूप उद्घोषित है, वही अब बसंती दी में पूर्ण रूप से मुखरित हो चुका था

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं साम्राज्येधि पत्युरस्तं परेत्य च।।

उस वटवृक्ष की शीतल उदार छाया में अनेक नन्हे अनाथ पथिक आ-आकर सुस्ताने लगे थे। पितृकुल के ध्वंसावशेष से वे तीन भाइयों को भी अपनी ससुराल में बटोर लाईं। उस अद्भुत विश्रामगृह के संचालन में भी उनकी मौलिकता संजीव हो उठती थीं। "बड़ी-सी कड़ाही में दूध खौला लेती थी", वे कहती, "और कतार में अपने-अपने गिलास लेकर सब बैठ जाते।" वह नन्हा नौकर भी, जिसे उसका क्रोधी पिता कई बार खींचकर घर ले जा चुका था और जो उतनी ही बार खोटे सिक्के-सा, मीलों की दुर्गम चढ़ाई पार करके उन्हीं के पास लौट आया था। "एक-एक कलछुल हर गिलास में डालती जातीं। बराबर न देतीं तो अभागे शंभु-निशंभु से जूझ मरते। फिर कह देती, 'मरो, पियो अब।' किंतु उस 'मरो' में जो 'जियो' का मौन संदेश रहता, उसे वे नन्हे हृदय खूब समझते थे।

तीनों भाइयों को योग्य बना, वे उनकी गृहस्थी बसा चुकी थी, किंतु मृत्यु जैसे कमर बांधकर उनका प्रत्येक विजयी दाँव विफल करने पर तुली थी। जहाँ किसी ललिता-पालिता कन्या के कन्यादान से मुक्ति पातीं कि मृत्यु तुरुप लगा उनके पत्ते अपनी ओर बटोर लेती। एक पुत्री को किडनी की असाध्य व्याधि खींच ले गई, दूसरी को कैंसर, भतीजी को यक्ष्मा, भाई-भाभियों को यक्ष्मा, प्लेग की धूसर गोधूलि में ज्येष्ठा पुत्री का वैधव्य और अंत में स्वयं के वैधव्य का असह्य दुख। किंतु उस अद्भुत अक्लांत महिला के चेहरे की एक भी रेखा को मैंने कभी म्लान होते नहीं देखा। अपने परिहास-रसिक चित्त को उन्होंने विपत्ति के कठिन क्षणों में भी कभी नहीं खोया। "अरी, वह कविता पढ़ी है तूने?" वे हँसकर कहती, "पाँच पूत रामा बुढ़िया के.... बाकी बचा न एक। वह मेरे ही लिए लिखी गई थी।"

संध्या होते ही जब कभी वे अपने बहुरंगी जीवन के अतीत का बही-खाता खोलकर बैठतीं, तो पूरा घर जुट जाता। कुछ उनके किस्से सुनाने का अनोखा ढंग, कुछ स्वयं किस्सों का भोला, सहज कथानक हमें बांध लेता। उनके वे अनूठे संस्मरण प्राय: लैंसडाउन के ही रहते, जहाँ संभवत: उनके जीवन के सबसे सुखद क्षण बीते। कैसे एक बार जब वे भैंसों के नीचे से गोबर बटोर रही थीं कि सहसा उनके पति के किसी अफसर की लंब-तड़ंगी मेम बटुआ झुलाती, अपना रेशमी 'गौन' सरसराती उनके सामने खड़ी हो गई। "अरी, मुझे तो सांप सूंघ गया। हो न हो, यह वही मेम है, जो कई बार 'भुवन के बाबू' से कह चुकी थी कि हमें अपनी मेम से मिलाओ।" "तुम्हारा मेमसाहब किडर है?" उस मेम ने पूछा और तत्काल बसंती दी ने घूंघट खींच, उन्हें जो समझा गई थी, उसी के अपूर्व अभिनय से दबंग फिरंगिन मेम को पलक झपकाते ही उसी दिशा में प्रत्यावर्तित कर दिया, जहाँ से वह आई थी। "हुजूर, हमारा मेमसाहब, साब के साथ घूमने गया।" ....ठीक ही तो था, बेचारी मुझे आया न समझती तो क्या रानी-महारानी समझती? दोनों हाथ गोबर से सने थे। साड़ी घुटनों तक समेटे थी। उस पर सुबह से चोटी-कंघी करने की फुरसत ही कहाँ मिली थी!"

और फिर उनका एक बेजोड़ संस्मरण, जो कई बार उनसे सुनने पर भी सर्वथा नवीन लगता था। "अरी, लैंसडौन की मेरी एक पड़ोसन थी ललाइन। उसके लाला थे जीभ के चटोरे। सुबह हुई नहीं कि मरी जप में विघ्न डाल देती थी, किसका मन लगता था फिर जप में! कभी असली घी में बन रहे पराठों की सुगंध, तो कभी सूजी की सोंधी लपट। कभी हींग-मेथी की बघार का धुआँ, तो कभी उड़द के बड़ों की छन्न-छन्न। इधर मैं "विष्णु-विष्णु!" कर आचमन लेती, उधर ललाइन गर्म घी में दुश्मन-सा मालपुआ छोड़ देती।"

ललाइन अत्यंत पतिपरायणा, धर्मभीरू स्त्री थी। पति का हाजमा बहुत सुविधा का न होने पर भी वह पति की प्रत्येक गरिष्ठ फरमाइश का तत्काल पालन करती। उसका लगभग सारा दिन ही चौके में बीतता। फिर अचानक एक दिन उस चौके से विभिन्न व्यंजनों की सुगंध-भरी धूम्ररेखा स्वयं विलीन हो गई। न लाला बाहर निकलते, न ललाइन। बीच-बीच में लाला की क्षीण कराह का स्वर सुनकर बसंती दी व्याकुल हो उठतीं, "मैं सोचती, क्या हो गया लाला को?

यह तो ठीक ऐसे कराह रहे हैं, जैसे मरे को 'पीड़' (प्रसव-वेदना) उठ रही हो।" लाला की उपस्थिति में वे अपनी सहेली के घर नहीं जातीं थीं। नौकर ने ही बताया कि लाला जी के पेट में दर्द उठा है। तीन-चार दिन तक लाला का उदरशूल-पर्व चला, फिर पाँचवें दिन अचानक ललाइन के हाथ के बने क्रोशिया के मेज-पोश से ढंके बड़े-बड़े चांदी के थालों में ढाल-से बताशे और बमगोले-से मोतीचूर के लड्डू पड़ोस में बाँटने नौकर निकला। बसंती दी ललाइन की अंतरंग सखी थी, इस प्रोटोकॉल के अनुसार पहला थाल उन्हीं के यहाँ आया।

"अरी मेरा तो कलेजा धक् हो गया।" अपने चेहरे को किसी पेशेवर दरबारी विदूषक के परिहास से उद्भासित कर बसंती दी कहतीं, "अरी, कलजुग तो है ही, मरे को दर्द भी उठ रहे थे, हो न हो बेटा जना है लाला ने। क्या हुआ है रे? बताता क्यों नहीं, कैसी मिठाई बाँट रही है तेरी मालकिन?" मैंने उस बजरबट्टू-से नौकर से पूछा; पर वह हरामी मुसकियाने लगा। मुझे तो अब भारी अकुलाहट हो आई। दौड़कर छज्जे से झाँका, खाँसा-खखारा, ताली बजाई, पर ललाइन नहीं निकली। आखिर मैंने उसकी छत पर अपना लोटा लुढ़का दिया। ललाइन पल-भर को बदली से छिटकी पहाड़ी धूप-सी बाहर निकली। 'अरी, क्या हुआ, क्यों मिठाई बाँट रही है? शरमा क्यों रही है इतना?' अब तो मुझे पक्का विश्वास हो गया कि लाला सौर में है। कैसी लाल पड़ रही थी बेचारी! 'क्यों, बता न?' मेरा धड़कता कलेजा सलूके से धड़फड़ाकर बाहर निकला जा रहा था। लग रहा था, अब कहेगी– लाला ने बेटा जना है, पर वह हरामजादी भी अपने उसी नौकर की तरह मुसकियाई, फिर आँचल से मुँह सटाकर धीरे-धीरे बोली, 'लाला जी की हवा खुल गई।'

और फिर बसंती दी की मुँह में आँचल रख 'लालाजी की हवा खुल गई' कहने की अद्भुत मिमिक्री से हमारा राशिभूत अट्टहास फानूस में जल रहे दीपक की लौ को भी प्रकंपित कर जाता।

तीन वर्ष पूर्व विपत्ति के कठिन क्षणों में इस पंक्ति की सार्थकता सहसा स्पष्ट हो उठी थी– स्त्रीणां विपत्प्रतीकारे स्त्रियं एवावलंबनम्। सचमुच स्त्री ही स्त्री का विपत्ति से उद्धार करती है, पुरुष नहीं। नारी का नारी पर यही अटूट विश्वास मुझे उसी वटवृक्ष की उदार छाया में सुस्ताने खींच ले गया था। मैं

अस्वस्थ पति को लेकर उन्हीं की शरण में गई थी। चार-पाँच महीने की सुदीर्घ अवधि तक मुझे उनके पास रहना पड़ा। छोटी बहन की ससुराल में रहने का संकोच मुझे प्रतिपल धरातल में धंसा रहा था। और एक दिन जब वही विवशता अश्रुधारा के साथ उनके सम्मुख बिखर गई, तो वे बरस पड़ीं, "शर्म नहीं आती तुझे? यह क्या तेरी बहन की ही ससुराल है? अरी, तेरी बहन के इस घर में आने के पैंतीस साल पहले जो तेरा पति इस घर में मुझे सगी बहन मान बीसियों बार बग्वाली (भाई दूज) का टीका करा गया है, वह क्या भूल गई है तू? खबरदार, जो अब ऐसी बात जबान पर लाई।"

और फिर, पति के स्वस्थ होने पर भी घर लौटने के मेरे दुराग्रह को वे अपने दुलार-भरे आग्रह से पराजित कर देतीं। "कल अमावस है।" "अब नवरात्रि छोड़कर कैसे जाओगी?" या "भद्रा के दिन बीमार पति को लेकर कैसे जा सकती है तू?" पर अंत में एक दिन उनसे विदा लेनी ही पड़ी। जाने के तीन दिन पूर्व उन्होंने मुझे अपनी दिव्यदृष्टि का जो अद्‌भुत परिचय दिया, उसका रहस्य आज तक नहीं समझ पाई।

"अरी सुन, जब जा रही है तो एक बात कहूँ।"

"कहिए।" मेरे सशंकित चित्त की प्रत्येक धड़कन कानों में बज रही थी। उनके विषण्ण चेहरे की एक-एक झुर्री को उनके उदार हृदय की समस्त सहानुभूति अपने दग्ध पिघले लावे से एक पल को स्याह बना गई।" सब कह तो रहे हैं, यह ठीक हो गया है, पर मुझे ठीक ही नहीं लग रहा है। कैसे चंदन-सा रंग था इसका, और देखती नहीं, एकदम काला पड़कर रह गया है। जब ऐसे गोरे रंग पर ऐसी स्याही फुँकती है, तो समझ लो...." उन्होंने फिर वाक्य अधूरा ही छोड़ मेरा हाथ थाम लिया।

मैं काँप गई। मृत्यु से जिसका परिचय इतना घनिष्ठ था, उस छलनामयी की पदचाप को जिसने एक नहीं, अनेक बार सुना था, क्या वह कभी उसे पहचाने में भूल कर सकती थी? जो उनके विराट साम्राज्य के अनेक सदस्यों को बाज की भाँति झपट्टा मारकर उन्हीं की आँखों के सामने दबोच ले गई थी, उसे मेरे जीवनाकाश की निरभ्रता के बीच मंडराते शायद उन्होंने उसी क्षण देख लिया था।

कुछ ही दिनों बाद मैं एक विवाह में सम्मिलित होने गई। शरीर और मन दोनों में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि नैनीताल जाकर हम दोनों बसंती दी से मिल आएँ। फिर शायद उन्हीं की स्नेह-डोर हमें खींच ले गई। मुझे देखते ही उन्होंने बाँहों में भर लिया, "अरी, जानती थी, जानती थी, तू बिना मुझसे मिले कभी लौट नहीं पाएगी।" उस एक ही रात्रि में उन्होंने न जाने कितनी बार मेरे म्लान मन को गुदगुदाया, हँसाया।

चलने लगी तो मैंने पैर छुए। उनकी अश्रुपूरित मूक दृष्टि जैसे फिर उसी चेतावनी से मुझे कँपा गई, 'अरी, सब कहते तो हैं, यह ठीक हो गया पर....' तीखा उतार उतरते-उतरते मैंने फिर एक बार मुड़कर देखा। अपनी खिड़की से चिबुक टिकाए वे एकटक हमें देख रही थीं, जैसे जान गई थीं कि मेरे साथ उतरने वाला अब फिर कभी वह चढ़ाई चढ़ने नहीं लौट पाएगा।

चलते-चलते उन्होंने अपनी गुदगुदी हथेली से मेरा हाथ दाबा भर था। आज उस स्पर्श की स्मृति ही शेष है। अपनी असंख्य संतानों में से अंतिम अनाया भतीजी का कन्यादान कर उन्होंने अपने इन शब्दों का पालन किया– "इसे ब्याहकर गंगा नहा लूँ, फिर चैन से आँखें मूंद लूँगी।"

पर कैसी भाग्यवती जननी ने आँखें मूंदी थीं, जिसकी मृत्यु ने केवल उसी के पुत्र-पुत्रियों को अनाथ नहीं किया, अनाथ किया उन उन्नीस संतानों को, जिन्होंने अपनी जननी खोकर उस वात्सल्यमयी उदार नारी की गोद में खोई माँ का वात्सल्य पाया था। शायद ऐसे ही अमर प्राणों के लिए रवींद्रनाथ ने यह पंक्ति लिखी थी :

मरण सागर पारे

तोमरा अमर तोमादेर स्मरि।

– मरण-सागर के पार भी तुम अमर हो, हम तुम्हारा स्मरण करते हैं।

❑❑❑

सती सावित्री

पी. सुब्बारामय्या
अनुवादः डॉ. जे. एल. रेड्डी

रजनी खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई। खिड़की में से काले कागज के टुकड़े जैसे दिखते आकाश में तारे बिल्कुल नहीं हैं। घना-चिकना अंधकार ऐसा पसरा है, जैसे पुकारने की देर है, एकदम हाजिर होने को तैयार हो। आकाश में बादल ऐसे गरज रहे हैं, जैसे युद्ध के लिए सन्नद्ध गज सेना ही आ उपस्थित हुई हो। ऐसा लग रहा है जैसे अभी या थोड़ी देर में मूसलाधार पानी बरसना शुरू हो जाएगा। एक बार बारिश शुरू हो गई, तो फिर नहीं रुकेगी। बारिश ऐसे होने लगेगी, जैसे आकाश से कुछ अदृश्य शक्तियाँ मजबूत रस्सियों से जमीन को ऊपर की तरफ खींच रही हों।

रजनी अंदर आकर चटाई पर बैठ गई। छोटी-सी कोठरी, दीवार के साथ लगी लोहे की पुरानी संदूकची.... खिड़की के इस तरफ छोटी-सी फोटो। फोटो में नव-विवाहित वर-वधू, रजनी कुर्सी के साथ हाथ लगाकर लज्जा से सिर झुकाए खड़ी है। प्रभाकर कुर्सी में गंभीरभाव से बैठा हुआ है। पतली-सी मूँछें, चौड़ा माथा, उभरे गाल, बड़ी-बड़ी आँखें, ऐसा युवा प्रभाकर अचानक ही चला गया। रजनी के पास बची रह गई पाँच महीने की नन्हीं बच्ची।

रजनी ने आँचल खींचकर कानों को ढकते हुए लपेट लिया और संदूकची खोली। कोई दो पुस्तकें.... एक छोटी-सी फ़ाइल.... दो या तीन साड़ियाँ और ब्लाउज। प्रभाकर से ताल्लुक रखने वाली जाने कब की डायरी.... उसमें किसी-किसी पन्ने पर लिखे मामूली हिसाब-किताब को छोड़कर ज्यादातर पन्ने

खाली ही हैं.... रजनी ने फाइल पलटी। किसी समय में लगन से जो पढ़ाई की थी, उसके फलस्वरूप प्राप्त ट्रेनिंग का सर्टिफिकेट, हिंदी की पहली परीक्षा जो पास की थी, उसका सर्टिफिकेट। किन्हीं आवेदनपत्रों की नकलें, कुछ ही दिन पहले स्कूल में काम न रह जाने के कारण स्कूल वालों का दिया हुआ नोटिस.... गड्डमड्ड हुए हस्ताक्षर वाले मनीऑर्डर की रसीद.... रजनी ने लंबी सांस ली। दिए में शायद मिट्टी का तेल खत्म हो गया है। रोशनी धीमी हो रही है। ऊपर आकाश में बादलों का कोलाहल बढ़ता ही जा रहा है। साथ वाली कोठरी का दरवाजा बंद है। सावित्री अभी तो आने वाली नहीं है। भोर होने से पहले तो वह नहीं आएगी।

सावित्री गोरी-चिट्टी है, न बहुत मोटी है न बहुत पतली, चेहरे पर छोटे-छोटे और लाल-लाल दाग हैं। कहती रहती है कि आठवीं तक पढ़ी है। एक बार उसने यह भी बताया था कि स्कूल जाते दिनों में वह बहुत ही ज्यादा दुबली थी और लोग उसे 'लाल बिच्छू' कहकर पुकारते थे। रोज रात को आठ-नौ बजे के वक्त सज-सँवरकर निकल जाती है। कभी-कभी फिल्म के पहले शो में जाती है लेकिन फिर बड़े भोर तक नहीं लौटती। सावित्री का कोई नहीं है। रजनी का भी कोई नहीं है, इस नन्हीं बच्ची विज्जी को छोड़कर।

सावित्री विज्जी को कंधे पर लेकर जा रही है। दो-तीन दिन से रातभर उस छोटी बच्ची को कहाँ सुलाती है, क्या करती है, यह भगवान ही जानता है।

सावित्री है तो भली औरत, अचानक नौकरी से छुट्टी हो जाने से रजनी मायूस हो गई थी, तो सावित्री ने ही उसे सहारा दिया था। वह कमाती है और कैसे कमाती है, यह तो उसने कभी नहीं बताया लेकिन रजनी भी ऐसी भोली नहीं है कि लोक व्यवहार को न जानती हो। यह बात नहीं है कि वह जानती नहीं थी लेकिन उसने कभी मुँह खोलकर पूछा नहीं है। इस दस दिन के परिचय में रजनी ऐसा व्यवहार करती रही थी जैसे वह कुछ जानती ही न हो, लेकिन दो-तीन दिन से बहुत मिन्नत करके, दबाव डालकर विज्जी को साथ लेकर जा रही थी, तो आशंकित होते हुए भी रजनी मना नहीं कर पाई थी। आज न जाने क्यों, उसका मन बेचैन है बाहर की प्रकृति की ही तरह उसके मन में भी एक अकारण विकलता है। जाने क्यों आँखें बार-बार गीली हो रही हैं, वह उठी और

फिर से खिड़की के पास जाकर बाहर की तरफ देखने लगी। अचानक ऐसे लगा जैसे ठंडी फुहार उसके चेहरे पर आ पड़ी हो, बदन में सिहरन हुई। कुछ क्षणों बाद हवा के झोंके कम हुए और खड़ी वर्षा होने लगी, रजनी ने आंचल उठाकर उसे फिर से ओढ़ लिया। उसकी जैकेट के सिरे भीग गए थे, कमरे में लालटेन की बत्ती बुझने को हो गई तो रोशनी एकदम मंद हो गई थी।

'इतनी बारिश तो इस बीच कभी नहीं हुई' सावित्री ने सोचा। सड़क के दूसरे सिरे तक बत्तियाँ मंद-मंद जल रही हैं। छोटे-से बरामदे के सिरे पर वह खड़ी है, कंधे पर विज्जी सो रही है। पानी बरसने की आहट सुनाई दे रही है.... सड़क सुनसान हो गई है, बीच-बीच में एक-आध रिक्शा गड्ढों में गिरता-उठता जा रहा है। वह बरामदा छोटा है सड़क के ऊपर तक गया हुआ। मकान जाने किसका है, ताला लगा हुआ है, बरामदे के दूसरे सिरे पर अधेड़ उम्र का एक आदमी खंभे का सहारा लिए खड़ा सिगरेट पी रहा है।

सावित्री ने ही उस आदमी से बात चलाई.... कुछ-कुछ हिचकती हुई। "लगता है, यह बारिश रुकेगी नहीं", उसने कहा। उस आदमी ने सिर घुमाकर देखा, देखकर सिगरेट की राख झाड़ते हुए बोला, "हाँ, लगता तो यही है.... एक रिक्शा ही आ जाए तो अच्छा हो, घर जाया जा सकता है।"

सावित्री कुछ बोली नहीं, कुछ देर उस आदमी की तरफ देखती हुई खड़ी रही। कुछ क्षण बाद उस आदमी ने पूछा, "आपको कहाँ जाना है?"

सावित्री उसके निकट आई और बोली, "अभी आधा घंटा पहले ही ट्रेन से उतरी हूँ। अब हैदराबाद की गाड़ी सवेरे से पहले नहीं है, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है, ऊपर से यह बारिश...."

उस आदमी ने सावित्री की तरफ ध्यान से देखा। फिर जाने क्या सोचकर, सिगरेट फेंककर बोला, "हमारे घर आ जाएंगी तो.... आना चाहें तो आ सकती हैं.... घर में कोई नहीं है। सवेरे गाड़ी पकड़ सकती हैं।"

"पास में पैसा भी नहीं है, पर्स खो गया है।" सावित्री ने धीरे से कहा।

आदमी अनुभवी था.... समझ गया। "मैं दे दूँगा, खाली रिक्शा आ जाए तो चलेंगे हमारे घर। घर जरा अलग-थलग भी है। कोई परेशानी नहीं होगी, पैसा कितना चाहिए?" उसने पूछा।

सावित्री ने पहले कहा, "आपकी मर्जी" फिर बोली "पचास दे दीजिए।"

उस आदमी ने सिर हिलाया। फिर आगे को झुककर उसने सड़क के सिरे की तरफ देखा, कोई रिक्शा शायद आ रहा हो.... यह देखने के लिए....

ऊपर से नीचे तक रेन कोट और सिर पर टोपी पहने पुलिस का एक सिपाही साइकिल पर आता दिखाई पड़ा। अभी-अभी वह इधर से ही गुजरा था, फिर इधर ही आ रहा है। अभी इधर से निकलते हुए बरामदे में खड़े इन दोनों को उसने देखा था, तब वे दोनों दो सिरों पर खड़े थे। अब पास-पास आ गए थे, जाते-जाते सिर घुमाकर उसने सावित्री की तरफ देखा था, उसे कुछ शक भी हुआ था। "यह तो पुराना ही मामला मालूम होता है", उसने सोचा था। इतने में उसे याद हो आया था कि अभी एक महीना भी नहीं गुजरा है। एक होटल में उसने खुद उस औरत को पकड़ा था। वह चुपचाप आगे बढ़ गया था और सड़क के सिरे पर जा रुका।

एक रिक्शा उधर से निकला उस आदमी ने जोर से पुकारा, "ए रिक्शा! खाली है?"

रिक्शा बरामदे के बगल में सीढ़ियों के पास आकर खड़ा हो गया। उस आदमी ने रिक्शा तय किया और सावित्री की तरफ मुड़कर बोला, "चलो"।

दोनों के बैठ चुकने के बाद रिक्शा चल पड़ा। सड़क पर छोटे-छोटे गड्ढों में पानी भरा हुआ था। मोड़ पर रिक्शा मुड़ गया।

उस आदमी ने सावित्री के कंधे पर हाथ रखा और पूछा, "लड़का है या लड़की?"

"लड़की है.... पाँच महीने की हो रही है।" सावित्री ने कहा, यह कहकर मद्धिम रोशनी में सावित्री ने हँसते हुए उस आदमी की तरफ देखा।

सहसा रिक्शा रुका "क्या हुआ?" आगे को देखते हुए उस आदमी ने कहा। सामने पुलिस का सिपाही खड़ा था। उसके रेनकोट पर गिरता हुआ पानी सड़क की बत्ती की रोशनी में चमकता हुआ नीचे को फिसल रहा था। सावित्री ने विज्जी को एक कंधे से दूसरे कंधे पर ले लिया, "क्या बात है?" उस आदमी ने पुलिस के सिपाही से मुखातिब होकर पूछा।

सिपाही ने साइकिल की स्टैंड लगाई और पूछा, "यह औरत कौन है?"

उस आदमी ने कुछ-कुछ असमंजस के साथ दबी आवाज में बोला, "मेरी बीवी है।" उसका स्वर खुद उसी को विचित्र-सा लग रहा था।

"यह क्या है सर, आप बड़े आदमी हैं, पढ़े-लिखे हैं। झूठ क्यों बोल रहे हैं, जिस्म बेचने वाली औरत को अपनी बीवी बताने की तकलीफ क्यों कर रहे हैं?"

उस आदमी से कुछ बोलते नहीं बना। सावित्री का कलेजा धक-धक करने लगा। सिपाही ने सावित्री से कहा, "क्यों री, मैं कितनी बार तुझे ले गया हूँ.... थाने! क्या नाम है तेरा?"

"सावित्री"

ठीक है, चलो थाने.... दोनों...."

वह आदमी घबरा गया। आँखों के सामने उसका दफ्तर, घर-बार, मान-मर्यादा तेजी से घूम गए। वह हठात् रिक्शे से उतर पड़ा और सिपाही के सामने "मैं....मैं...." कहता हुआ बड़बड़ाने लगा।

"क्या बात है? क्या कहना चाहते हैं आप?" सिपाही ने तेज होकर पूछा। वह आदमी सिपाही को एक तरफ ले गया और धीरे से बात करने लगा। सावित्री सांप के गले में फँसे चूहे की तरह असहाय भाव से बैठी रही। उस आदमी की बातों में "दफ्तर.... जरूर.... जाना ही पड़ेगा, अब की बार...." जैसी कुछ ही बातें उसे सुनाई दीं।

बाद में पूर्णकाम हुए सिपाही का "ठीक है, आप जाइए...." कहना सुनाई पड़ा।

सावित्री ने सिर घुमाकर बगल में देखा, तो वह आदमी बारिश में लंबे-लंबे कदम बढ़ाता हुआ जाता दिखाई दिया।

सिपाही ने रिक्शे वाले से "चल रे, थाने चल" कहा और खुद साइकिल पर चढ़ गया।

छोटे से जंगले वाले कमरे में चार औरतें हैं। मैली साड़ियों में.... प्लास्टिक के मनकों की मालाएँ पहने.... ब्लाउजों के पीछे तेल के धब्बे.... किट्ट जमे दांत.... बालों में मुर्दा फूल लगाए.... उन्हीं फूलों की तरह दिखने वाली उन बेनूर औरतों को देखते ही समझ में आ रहा था कि वे वेश्याएँ हैं।

आवाज करता हुआ दरवाजा खुला, बच्ची समेत सावित्री को अंदर ठेलकर सिपाही ने दरवाजा फिर से बंद कर दिया। अंदर बैठी औरतों ने एक बार सावित्री की तरफ देखा और फिर यों बैठ गईं जैसे कुछ हुआ न हो।

सावित्री कुछ क्षण दीवार के सहारे खड़ी रही और फिर निढाल होकर बैठ गई। बच्ची को गोद में लिटा लिया और उसको कपड़ा ठीक से ओढ़ा दिया। फिर आंचल को सिर के चारों ओर लपेट लिया और क्षणभर के लिए आँखें बंद कर लीं। इतने में उसे रजनी की याद हो आई।

बाहर बारिश ऐसे हो रही थी जैसे बादल पुराने वैर का बदला चुकाने पर आमादा हों।

जंगले के बाहर पुलिस का एक सिपाही स्टूल पर बैठा तल्लीन भाव से बीड़ी पी रहा था। आनंदातिरेक से उसकी आँखें मुंद-मुंद जाती थीं।

सावित्री ने चौंककर आँखें खोलीं।

आधी रात बीत चुकी होगी। बच्ची जाने कब जग गई थी, रो रही थी। जोर-जोर से रो रही थी।

सावित्री सम्हलकर बैठी और बच्ची को चुप कराने का प्रयत्न करने लगी। उसने अपने चारों ओर देखा, जहाँ-तहाँ लोग ऊंघ रहे थे। बच्ची का रोना सुनकर एक औरत ने आँखे खोलीं और कुछ देर देखते रहने के बाद हँसकर बोली, "देखो तो पिद्दी जितनी भी नहीं है, लेकिन आवाज देखो, कितनी जोरदार है!"

सावित्री बच्ची के पेट पर हाथ रखकर थपथपाते हुए उसे चुप कराने लगी। लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकल रहा था। जंगले से दूसरी तरफ स्टूल पर बैठे पुलिस के सिपाही ने उबासी लेते हुए चुटकी बजाई और कड़क आवाज में पूछा, "अरे, कौन है उधर? कैसा शोर है यह?"

उधर की एक औरत अकारण ही हंसी और बोली, "बात और क्या है? बच्ची रो रही है, बस।"

सुनकर सिपाही बोला, "यह तो मालूम हो ही रहा है।" फिर सावित्री को लक्ष्य करके बोला, "अरी, भूख से रो रही है शायद, दूध पिलाओ, दूध पिलाओ, सो जाएगी।"

सावित्री का दिमाग सुन्न हो गया। शायद यही बात हो! लेकिन ऊपर से तो उसने यही कहा, "पेट में शायद दर्द हो रहा है।"

"दूध पिला पहले, वरना रातभर सबके लिए सिर दर्द बना रहेगा।" सिपाही ने जोर से कहा।

उधर वाली औरत ने भी कहा, "हाँ, भूख से ही रो रही है। दूध पिला...." सावित्री चक्कर में पड़ गई। इधर बच्ची लगातार रोए जा रही थी। वह ऐसे जोर-जोर से रो रही थी जैसे किसी ने चुटकी काट ली हो।

इधर सावित्री ने उसे चुप कराने की अपनी कोशिश नहीं छोड़ी तो उधर बच्ची ने भी रोना बंद नहीं किया। झपकी ले रहे सभी की नींद खुल गई। वे आँखें बड़ी-बड़ी करके देखते हुए बैठ गए।

बाहर बैठा सिपाही फिर जोर से चिल्लाया, "क्या न्यूइसेंस है यह? दूध पिलाकर सुलाने को कहता हूँ, तो सुनती क्यों नहीं?" फिर सबको सुनाते हुए ही अपने आप से उसने कहा, "आधी रात के वक्त यह क्या मुसीबत है रे भगवान!"

फिर वह अंदर गया और घनघनाता फोन उठा लिया। शुरू में विनयभाव से "हैलो, जी आप कौन बोल रहे है?" से आरंभ करके बाद में जोर-जोर से बोलने लगा, "क्या कहा? अरे भाई यह अस्पताल नहीं है, मेरी बात तो सुनिए पहले.... यह अस्पताल नहीं, पुलिस स्टेशन है। समझ में आई बात? हाँ....हाँ.... रांग नंबर है...." बात खत्म करके उसने फोन रख दिया।

बच्ची अपना रोना बंद नहीं कर रही है और जोर-जोर से चीख रही है। उबासी लेती हुई एक औरत बोली, "क्यों हमारी जान खा रही है? दूध पिलाकर उसे सुलाती क्यों नहीं तू?"

बीड़ी सुलगाकर धुआँ फूँकते हुए सिपाही ने गुस्से से कहा, "अब और चुप रहने वाला नहीं हूँ मैं, सुनती क्यों नहीं, जब इतने लोग कह रहे हैं? कैसा जमाना आया है रे भगवान, बच्ची रो रही है, तब भी पत्थर की तरह बैठी है.... कैसी माँ है तू...."

सावित्री सब कुछ सुनती हुई पत्थर की ही तरह बैठी रही।

थोड़ी देर में हालत और बिगड़ गई। नींद में खलल पड़ने से सब लोग बड़बड़ाने लगे ओर अपने-अपने तरीके से अपनी खीज जाहिर करने लगे।

सावित्री का दिमाग जैसे पथरा गया। काठ की मूरत की तरह वह निश्चल बैठी रही।

बाहर जोर की बारिश जारी है और बच्ची का जोर-जोर से रोना भी।

सावित्री ने ब्लाउज में से छोटा-सा पर्स निकाला और पैसे गिनने लगी। कुल नौ रुपए और कुछ पैसे थे। उसे जैसे चक्कर आ रहा था। कल छूटने में कितना पैसा खर्च होगा, कुछ पता नहीं। यह अनुभव उसके लिए नया तो नहीं था, फिर भी ऐसी परेशानी उसे पहले कभी नहीं हुई थी। बच्ची की वजह से आज बड़ी मुसीबत आ पड़ी थी।

इतने में वह किसी कोंपल की तरह काँपने लगी। एक मिनट बाद पगलाई-सी रो रही बच्ची को उसने नीचे लिटा दिया और जंगले के पास जाकर खड़ी हो गई।

सिपाही ने आँखों के इशारे से ही पूछा, "क्या बात है?"

सावित्री ने एक रुपए का नोट बाहर निकाला और बोली, "बच्ची के लिए दूध चाहिए।"

सिपाही ने भौंहें उछालकर मजाक करते हुए पूछा, "यह तो मालूम हो ही रहा है। लेकिन मुझे क्या करने को कहती है? दूध मैं दे दूँ।"

अंदर कोई हँसा।

क्षणभर रुककर सावित्री बोली, "वह बात नहीं है, पास में कहीं छोटी-मोटी दुकान हो तो, दूध ले आऊँगी...."

"यह नहीं हो सकता।" सिपाही ने 'न' में सिर हिलाते हुए कहा।

"नहीं तो आप ला दीजिए, मेहरबानी होगी.... नन्ही-सी बच्ची है.... गला सूख जाने से तड़प रही है...." सावित्री ने विनती की।

सिपाही ने आँखें बड़ी-बड़ी करके देखा। "क्या? इस बारिश में? बड़ी अच्छी है तू भी! लेकिन तेरा मामला तो बड़ा अजीब है.... सच-सच बता.... अभी-अभी राइटर साहब को क्या बताया था तूने? यह तेरी ही बच्ची है न?"

सावित्री ने "हाँ" में सिर हिला दिया।

"तब पागलों की हरकतें करना छोड़कर इसे दूध पिला...."

सावित्री जड़ होकर खड़ी रह गई।

लग नहीं रहा था कि बच्ची का रोना कम होगा। यह भी नहीं लग रहा था कि उधर बारिश थमने वाली है। बच्ची रोती ही जा रही थी लेकिन कमजोरी आ जाने से कुछ-कुछ धीरे से।

कुछ देर में बारिश थमने लगी।

धीरे-धीरे सवेरा हुआ। पहले पक्षियों का कलरव, फिर कौओं की चीख-पुकार, फिर उजास, उसके बाद सुनहली धूप। इस तरह आराम-आराम से सवेरा हुआ।

एक औरत ने कहा, "बाप रे! कैसी लड़की है! रातभर रोती ही रही।"

सिपाही ने मन में कहा, "कैसी माँ है भाई, बच्ची कलेजा फाड़कर रो रही थी और यह पत्थर की तरह बैठी रही, बैठी ही रही, दूध तो नहीं पिलाया।"

चश्मा मेज पर रखकर आँखें मलते हुए न्यायमूर्ति ने पुलिस के सिपाहियों का बयान सुना। कुछ देर तक ऊपर झूलते हुए कपड़े के पंखे की ओर देखते रहे। उन सभी औरतों का अपराध एक ही था- वेश्यावृत्ति।

अचानक उन्होंने ऐसे जैसे कुछ याद आ गया हो, चश्मा हाथ में लेकर आँखों पर लगा लिया और आदतन "एक-एक को पचास रुपए जुर्माना। जुर्माना न देने पर एक महीने की कैद।" कहकर वे उठकर चले गए।

सावित्री का कलेजा धक-धक करने लगा। दूसरी औरतों के कुछ संबंधी आए और जुर्माना चुकाने लगे। कुछ ही देर में सब लोग वहाँ से चले जाने के लिए तैयार हो गए।

सिर हिलाते हुए सिपाही ने पूछा, "तेरा क्या होगा?"

सावित्री कुछ बोली नहीं।

तेज हवा चल रही थी। अदालत के अहाते में और बरामदे में कुछ हलचल होने लगी।

दुपहर के एक बजे से ज्यादा हो गया होगा।

"अभी तक यहीं खड़ी हो?"

सावित्री ने सिर उठाकर देखा। सामने माणिक्यम खड़ी थी.... छह फुट का भारी शरीर... काली और मोटी.... हँस रही थी। उसके मैले दांत बाहर को निकले पड़ रहे थे। जवान लड़कियों को जुटाकर बस्ती में वेश्यालय चलाती है।

"पैसा नहीं है" सावित्री ने कहा।

"यह तो मालूम हो ही रहा है। यह बच्ची किसकी है?"

271 CHD / 2018—11A

सावित्री ने जवाब नहीं दिया। बच्ची की पीठ पर टिके उसके हाथ को यह तो पता चल ही रहा था कि वह अब भी जिंदा है। अब और रोने की ताकत न होने से थककर सोई पड़ी है।

माणिक्यम ने फिर पूछा, "कोई बात नहीं, पैसा मैं भरूंगी, दस दिन के लिए मेरे यहाँ आएगी? हाथ बिल्कुल कम हो गए हैं।"

सावित्री की आँखे चमक उठीं। सिर हिलाते हुए उसने कहा, "ठीक है।" उसकी आँखों में आँसुओं की परत छा गई थी।

उसके बाद कुछ ही देर में सारा मामला खत्म हो गया।

सावित्री ने तेज-तेज कदम बढ़ाए। पीछे-पीछे चलते हुए माणिक्यम धीरे-धीरे कह रही थी, "याद रखना.... याद ही से आना.... रात को सात बजे तक मेरे घर पहुँच जाना, खाना-पीना सब वहीं होगा।"

सावित्री ने सिर तो हिलाया लेकिन वह रुकी नहीं। भागती हुई-सी वह अहाते से बाहर निकल आई और रिक्शे पर बैठ गई।

रजनी देहली पर ही मिली। रिक्शे के रुकते ही हड़बड़ाती हुई वह सीढ़ियाँ उतरकर सामने आई और हाथ बढ़ाकर पूछने लगी, "क्या हो गया था?"

सहमी-सहमी सावित्री ने एक बार बच्ची की तरफ देखा और उसे रजनी के हाथों में दे दिया।

"क्या हुआ?.... क्या हुआ....?" बच्ची को हाथों में लेते हुए रजनी ने बेतहाशा पूछा।

"दूध पिलाओ इसे, दूध.... जल्दी...." सावित्री इतना ही कह पाई। अगले ही क्षण वह अपनी कोठरी में चटाई पर ढेर हो गई थी। फिर उसका रोना उफन पड़ा था।

– 206, के. पी. टावर, बी. ब्लॉक, कनक दुर्गा टाकिज के सामने, सीतारामपुरम, विजयवाड़ा-4, (आंध्र प्रदेश)

– बी-1/93, जनकपुरी, नई दिल्ली-110056

❑❑❑

271 CHD / 2018—11B

अपरिचित

संयुक्ता महांति
अनुवाद : सुरभि बेहेरा

बरामदे का स्विच ऑन करते ही अचानक शिप्रा चौंक पड़ी। उसे लगा, बाहर अंधेरे में कोई सो रहा है। आजकल किसी अनजान पर भरोसा भी तो नहीं किया जा सकता। वंदना के पति को अस्पताल में देखकर लौटते-लौटते करीब ग्यारह बज गये थे। उसने अच्छी तरह देखने के बाद आवाज लगाई, "कौन? कौन है वहाँ?"

उसकी आवाज सुनते ही वह व्यक्ति उठने की चेष्टा करने लगा। शिप्रा ने नजदीक जाकर उसे गौर से देखा, उसका मुख अत्यंत सुशील एवं संपन्न प्रतीत हो रहा था। उसे ऐसा महसूस हुआ कि एक थका हुआ चेहरा मायूस आँखों से सिर्फ उसी की ओर देखे जा रहा था।

बेटा! क्या मुझे देखकर डर गई हो? मैंने एकांत स्थान देखा तो यहीं सो गई। सुबह होते ही यहाँ से चली जाऊँगी।

बेटा! बेटा की पुकार सुनकर शिप्रा का हृदय विचलित होने लगा। यह किसकी पुकार है। इस पुकार में कितना अपनत्व है। उसका कंठ अचानक भावविह्वल हो उठा, उसके मन की सारी आशंकाएँ विलुप्त हो गईं। वह कुछ देर तक चुपचाप खड़ी हो गई। दोबारा उसकी ओर देखते हुए उसने अपनी माँ के चेहरे से उसे मिलाना चाहा। किसी भी बुजुर्ग को देखने पर उसे अपनी माँ की याद आती। वह भी अभी ऐसी ही दिखती होगी।

उसकी माँ की उम्र अभी पचहत्तर वर्ष हो रही होगी। बाबूजी की मौत के बाद वे अंदर से बिल्कुल टूट-सी गई हैं। लेकिन अभी भी उसी गति से काम करती हैं। हाई ब्लड प्रेशर के कारण उनका शरीर बहुत दुबला हो गया है। फिर भी वे किसी देवी माँ से कम नहीं दिखती हैं। छोटी भाभी की नीले और हरे रंग की संबलपुरी पाट साड़ी पहनकर तथा माथे में बड़ा-सा सिंदुर का टीका लगाकर वह बिल्कुल पटरानी की तरह लगती थीं। बाबूजी की बगल में बैठकर पेपर पढ़ते हुए कई विषयों पर बहस भी करतीं। परंतु आजकल श्वेत वस्त्र में उनका चेहरा बिल्कुल उदास दिखलाई पड़ता है। बाबूजी को गुजरे हुए तीन वर्ष हो गए इस बीच उसने कई बार सोचा कि माँ के लिए एक अच्छी साड़ी खरीद कर दूँगी। पर, हर बार दुकान जाकर लौट आती। माँ के लिए सफेद साड़ी खरीदने की बात सोचकर ही वह वापस आ जाती। अपनी माँ को वह इस रूप में कैसे देख पाएगी। इसलिए हर बार वह दुकान जाकर भी वापस लौट आती। मन ही मन सोचती उनके पास जो भी साड़ी है उसी को पहनकर वे अपना काम चला लेगी पर अपनी माँ को सफेद साड़ी खरीदकर वह कभी नहीं दे पाएगी।

अपनी माँ का ख्याल आते ही वह सोचने को मजबूर हो जाती कि इस शीतलहरी रात्रि में उसकी माँ क्या कर रही होंगी? वे न तो कभी किसी का कहना मानतीं और न ही उनके कामं करने की तीव्रता ही कुछ कम होती है। उनकी पुरानी आदत थी कि रोज सुबह चार बजे से उठकर अपना नित्यकर्म पूरा करतीं और करीब एक घंटे तक ईश्वर का ध्यान करतीं। उनका मानना था कि ऐसा करने पर मनुष्य की स्मरण शक्ति अच्छी रहती है। जरूरत पड़ने पर किसी की भी मदद करने में वे कभी पीछे नहीं रहतीं। प्रारंभ से ही वे जीवन के प्रति अत्यंत संवेदनशील एवं अनुभवी थीं।

बेटा! इस छोटे से शब्द में कितना अपनापन है? इस एक शब्द ने उसके हृदय के तार को इस कदर झंकृत किया कि वह कँपकँपाती ठंड में भी उस वृद्धा के समीप बैठ गई। इस साल इस्पात नगरी राउरकेला शहर में ठंड भी बहुत अधिक पड़ी है। उस वृद्धा को उठने के लिए मना करते हुए वह कुछ सोचकर अंदर चली गई।

थोड़ी देर बाद दौड़ते हुए अपने हाथों में कुछ लेकर आई और उस वृद्धा के हाथ में देते हुए कहा, मौसी! थोड़ी ग्लूकोज़ पानी पी लो, तुम्हें अच्छा लगेगा।

उसके कंधे को सहारा देकर उसे पानी पिलाया। लगभग सत्तर साल की वह वृद्धा इतनी डरी सहमी-सी बातें कर रही थी मानों वर्षों से वह लोगों की कितनी उपेक्षाएँ सह रही होंगी। शिप्रा ने और कुछ देना चाहा तो उसने इशारे से मना कर दिया।

बेटा, थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर लूँगी, फिर वापस चली जाऊँगी। उसकी आवाज में इतना डर और भय समाया हुआ था मानो अपनी बातों को कहने के बावजूद उसे विश्वास नहीं हो पा रहा था।

रात बहुत हो गयी है, और ऐसी हालत में आप कहाँ जाएँगी? मैं आपको इतनी ठंड में जाने नहीं दे सकती। मुझे पाप का भागीदार मत बनाइये। आपने मुझे बेटा कहकर पुकारा है। आप मेरे घर के अंदर चलिए, वहाँ आपको अच्छा लगेगा।

शिप्रा की बातें सुनकर उस वृद्धा को उस पर संदेह होने लगा कि यह कोई देवी है या मानवी? उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

जिसे बहू बनाकर अपने घर लाई थी, वह क्या ऐसी हो सकती है? जिसके आगे-पीछे और कोई नहीं था। इकलौते बेटे की बहू ने सब कुछ अपने अधिकार में कर उसे ही जाने को कह दिया, खबरदार! आप घर के अंदर नहीं आ सकतीं। एक ही तो कमरा है जिसमें मेरा बेटा पढ़ाई करता है। मेरे ससुर ने कोई महल बनाकर नहीं छोड़ा है, जिसमें आप आराम से रह सकती हैं। आपके लिए आउटहाउस ही ठीक है, आप वहीं जाकर रहिए।

वृद्धा को अचानक ध्यान आया कि यह तो किसी भली महिला का घर है। वह उसके घर के अंदर क्यों जाएगी? नहीं.... नहीं.... उसके लिए यह बरामदा ही ठीक है, एक रात की ही तो बात है। एक तो इतनी ठंड और अंधेरे में उसे ठीक तरह से दिखाई भी नहीं पड़ता। इस एकांत शहर में वह जाए भी तो कहाँ? अंधेरी रात में सड़क पर कुत्ते भी बहुत परेशान करते हैं। वैसे भी घर से बाहर रहनें की उसे आदत हो गई है। इतने बड़े घर के अंदर तो उसे डर भी लगेगा। फिर यह घर कोई साधारण घर तो नहीं दिखता है। इतना सुंदर घर उसके लिए है ही नहीं। यही सोचते हुए उस वृद्धा ने शिप्रा को मना करते हुए कहा- नहीं बेटा। सिर्फ एक रात के लिए मुझे यहीं रहने की अनुमति दे दो। कल सुबह होते ही मैं यहाँ से चली जाऊँगी।

मौसी! सुबह की बात तो बाद में करूँगी, पहले आज का काम तो खत्म हो। घर के अंदर चलकर हाथ-पैर धो लो, कपड़े बदल लो, फिर साथ मिलकर खाना खाएँगे। आज रात के लिए आप मेरी अतिथि हैं। आप बाहर कैसे सो सकती हैं?

इतना कहकर शिप्रा अंदर चली गई। उसकी बातें सुनकर वृद्धा दुविधा में पड़ गई थी। आज तक उसे इतना सम्मान देकर किसी ने नहीं बुलाया था। आज भी खाने का समय हो जाने पर वह खुद उठकर भगोने और कड़ाई को टटोलकर देखती कि उसके लिए कुछ बचा है या नहीं? दोपहर के समय उसकी बहू पटरानी की तरह सोई रहती या फिर टी.वी. सीरियल देख रही होती। उसका बेटा प्राइवेट फर्म में नौकरी करता था। बच्चों के स्कूल जाने और बेटे के काम पर चले जाने के बाद उसकी इतनी हिम्मत भी नहीं होती कि वह अपनी बहू से कह पाती कि उसके लिए भी कुछ खाना निकाल कर दे। जब नई-नई शादी हुई थी तब औरों को दिखाने के लिए अच्छा अभिनय कर लेती थी।

माँ! आप मत उठिए, मैं सब कुछ संभाल लूँगी। शुरुआत के दिनों में कितने आदर के साथ बातें किया करती थी। पर जब से उसे माँ बनने का सौभाग्य मिला तब से उसके बात करने का अंदाज ही बदल गया है। खाना माँगने पर कहती-रुकिये, अभी बच्चे को दूध पिला रही हूँ। आप क्या अपने से खाना नहीं निकाल पाती हैं? हमेशा दूसरे के भरोसे बैठी रहती हैं?

विनोदिनी लाचार होकर बचा-खुचा जो भी मिलता, खा लेती। प्रायः हर दिन उसके घर पर ऐसा ही माहौल बना रहता। बेटे को ऑफिस से लौटते-लौटते रात के आठ-नौ बज ही जाते। सारा दिन काम करने के बाद जब थककर घर आता तो पत्नी की जली-कटी बातें सुनकर झल्ला पड़ता। बहू भी उससे दस कदम आगे थी। इतनी बहस होती कि सब कुछ आपे से बाहर हो जाता।

आपके लिए आपकी माँ ही सब कुछ है। मेरा बेटा तो आपका कोई है ही नहीं।

ओह! क्यों बहस कर रही हो? किसने कहा कि हमारा बेटा कुछ नहीं लगता? बूढ़ी माँ को थोड़ा तो ध्यान दोगी न!

आप क्या सोचते हैं कि मैं उनकी देखभाल नहीं करती? आखिर और किस तरह से देखूँगी? अगर आपको ऐसा लगता है तो मुझे अपने घर छोड़ आइये। जब मेरा बेटा बड़ा हो जएगा तभी मैं यहाँ आऊँगी। ऐसा कहकर पैर पटकते हुए बहू अंदर चली जाती।

उसकी बातें सुनकर बेटा शांत हो जाता। शायद उसकी धमकियों से तथा उसकी जाने की बात सुनकर वह डर जाता। विनोदिनी मन ही मन सोचती-क्या पुरुष के लिए नारी ही एकमात्र आश्रय है? क्या माँ और पत्नी के बिना उसकी जीवन नैया नहीं चल पाएगी?

विनोदिनी को अपना जीवन बोझ-सा लगने लगा। वह सोचने लगी, केवल उसी के कारण उसके बेटे-बहू का सुखी संसार टूटने की कगार तक पहुँच जाएगा। उसके कारण उसका बेटा अपने ही घर में अपराधी बन गया है। इन्हीं छोटी-छोटी परेशानियों के कारण वह खाना-पीना भी समय पर नहीं कर पा रहा है। आजकल इसी वजह से कम उम्र में ही ब्लड प्रेशर, सुगर, गैस्टिक आदि कई प्रकार की बीमारियाँ भी होने लगी हैं। नहीं.... नहीं, उसका बेटा अपने गृहस्थ जीवन को प्रेमपूर्वक व्यतीत करे। बल्कि वही उसके जीवन से बहुत दूर चली जाएगी। इतनी लंबी आयु उसके लिए एक अभिशाप बन गई है। भला इस उम्र में वह कहाँ जाएगी, किसके पास रहेगी? उसे मृत्यु से तनिक भी डर नहीं है, बल्कि यह सोचकर वह डर जाती है कि मौत से पहले आई बीमारी का सामना वह कैसे कर पाएगी? अकेली रहकर न वह अपनी देखरेख कर पाएगी और न ही अपने बेटे-बहू, पोते के मोह को भूल पाएगी।

मौसी! यह लीजिए मेरी साड़ी, आप जल्दी से कपड़े बदलकर खाना खाने आ जाइए। शिप्रा ने वृद्धा के हाथ में साड़ी थमाते हुए कहा।

अचानक विनोदिनी की तंद्रा भंग हुई। शिप्रा के प्रत्येक शब्द में कितना अपनत्व था। मानो अपनी कोख से जन्मी बेटी कह रही हो। विनोदिनी की अपनी बेटी नहीं थी, इस सुख से वह वंचित थी। वह सोचने लगी कि क्या सचमुच बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।

शिप्रा ने साड़ी बदलने में उनकी मदद की। वह अपने-आप को समझा नहीं पा रही थी कि वह उस अपरिचित वृद्धा की मदद कर रही है या फिर

अपनी माँ की। उसकी माँ भी पचहत्तर के आस-पास के उम्र की ही हैं। आजकल सीधी खड़ी होकर अपना कोई भी काम नहीं कर पाती हैं। रीढ़ की हड्डी में चोट लगने के कारण डॉक्टर ने उन्हें काम करने से मना कर दिया है। पैरालाइसिस नहीं हुआ वर्ना उनके लिए बाथरूम जाना भी मुश्किल हो जाता। उनकी पोती कपड़े धोने से लेकर नहलाने तक का सारा काम करती है।

माँ का ख्याल आते ही शिप्रा की नजर वृद्धा की मैली साड़ी पर गई। शायद दिन भर की थकान के कारण उनकी साड़ी बहुत मैली हो गयी थी, उसने बाथरूम ले जाकर उसे सर्फ में भिगो दिया। शिप्रा ने मन ही मन सोचा, कल सुबह साफ कपड़े पहनकर मौसी बहुत खुश हो जाएगी।

विनोदिनी इतनी देर तक शिप्रा के हर हाव-भाव को चुपचाप देखे जा रही थी। उसने इशारे से पास बुलाकर धीरे से कहा, मैं अपनी साड़ी खुद धो लूँगी। तुम इस गरीब-दुखियारी के लिए क्यों परेशान हो रही हो?

मौसी, आप कैसी बातें कर रही हैं, इतनी ठंड में आप कैसे कपड़े धोएंगी? यहाँ कोई बड़ा-छोटा नहीं है। आप बेवजह परेशान न हों। शिप्रा ने ढाँढस बँधाते हुए कहा। विनोदिनी मन ही मन सोचने लगी, ईश्वर का यह कैसा मिलाप है? जिसके साथ आज तक कोई संपर्क नहीं, फिर यह कौन-सा संबंध है? केवल इंसानियत ही है, और कुछ भी तो नहीं। विनोदिनी की आँखें छलछला आईं।

उसके अपने घर में कई बार समय निकालकर बेटा ही उसकी साड़ी धो देता, लेकिन उसकी बहू के पास उसके लिए समय ही नहीं रहता। अपने पति और बेटे के कपड़े, चादर को वह बड़े सलीके के साथ धोती तथा प्रेस करवाती। पर जब विनोदिनी के कपड़े धोने की बात आती तो कई प्रकार के सुझाव दे देती। अपने कपड़े आप खुद नहीं धो सकतीं? क्या आपके कपड़े को भी साफ करने के लिए धोबी के पास जाना पड़ेगा? भला, धोबी को देने के लिए पाँच रुपये वह कहाँ से लाएगी?

उस वक्त विनोदिनी के पास एक रुपए भी नहीं रहता कि वह कहीं खर्च कर सके। मंदिर जाने पर दान पेटी में चाहकर भी वह कुछ नहीं दे पाती। उसके पति कलकत्ता की टायर कंपनी में नौकरी करते थे, उन्हें जो भी पैसे मिलते, सभी खर्च हो जाते। अंतिम समय में उन्होंने एक ही जिद पकड़ ली थी कि भाड़े

के घर में नहीं रहूँगा इसलिए अपने सारे पैसे घर बनाने में खर्च कर दिए। परंतु अचानक हार्ट अटैक के कारण उनकी मौत हो गई। वे न ही अपने घर पर रह पाए और न ही अपना इलाज करा पाए। उनकी मंदबुद्धि के कारण ही उनके जाने के बाद विनोदिनी की हालात भिखारी से भी बदतर हो गई। बेटे के संवेदनशील होने के बावजूद बहू के आने के बाद न जाने क्यों उसकी बोलचाल की भाषा ही बदल गई। माँ से ऐसे बात करता मानो घर पर किसी मेहमान से बात कर रहा हो। एकदम माप-तोल कर बात करता या फिर चुप ही रहता।

विनोदिनी अच्छी तरह जानती है कि उसका बेटा जितना कमाता है, उससे कहीं ज्यादा खर्च हो जाते हैं। इसलिए चिड़चिड़ा होना उसकी आदत बन चुकी है। यही वजह है कि उसकी अपनी सगी माँ भी उसे बोझ लगने लगी है। अपने बेटे के इस बदले हुए रूप को देखकर विनोदिनी सोचने पर मजबूर हो जाती है कि क्यों समय के साथ इंसान की सोच भी बदलने लगती है। यदि मनुष्य को पैसे की तंगी हो जाए तो क्या उसके मन की परिभाषा भी बदल जाती है?

दोपहर के समय जब उसे भूख लगती और वह रसोईघर जाकर खाना टटोलती तो उसके लिए कुछ भी बचा नहीं होता। किसी तरह थोड़ी सी दाल में भात मिलाकर अपने गले को भिगो लेती। संकोचपूर्वक बहू से कुछ कहती तो जवाब मिलता- आपका बेटा कोई साहेब नहीं है, वे जो लाकर देते हैं, मैं बना देती हूँ। आपको जो भी कहना है अपने बेटे से कहिए। आजकल हर चीज के दाम इतने बढ़ गए हैं, कौन आपको दस प्रकार का खाना बनाकर देगा? आपकी जीभ कुछ ज्यादा ही चटोरी हो गई है?

रात में उन्हें रोटी के साथ दूध खाने की आदत थी। उसकी बहू उसमें भी कंजूसी करती, थोड़े से दूध में भी पानी मिलाकर देती। विनोदिनी के गले से रोटी का एक निवाला भी नीचे नहीं उतरता। अपनी पीड़ा वह किसे कहती? कौन उसकी तकलीफ समझता, सभी के लिए वह एक बोझ बन गई थी। जब अपना खून ही पराया हो जाए तो अपना दुखड़ा वह किसे सुना पाएगी।

अचानक शिप्रा ने नजदीक आकर कहा, मौसी आज आपका चेहरा तो बिल्कुल देवी प्रतिमा की तरह दिख रहा है। फिर इतना सुंदर चेहरा मलीन क्यों पड़ गया था?

हाँ बेटा, यह सब कुछ समय का ही फेर है। समय के साथ इंसान को बदलना ही पड़ता है। सभी की किस्मत में सुख नहीं होता। मुझ गरीब के लिए तुम क्यों परेशान हो रही हो। एक रात की बात है, कल सुबह तो मैं चली ही जाऊँगी।

हाँ, जाएंगी तो जरूर, पर आज इतना मत सोचिए। रात काफी हो चुकी है। आप अभी सो जाइये, कल सुबह आपकी सारी बातें सुने बिना मैं आपको जाने नहीं दूँगी।

कुछ ठहरकर विनोदिनी ने शिप्रा से कहा, बेटा मेरे लिए नीचे ही खाना लगा दो। इतने आराम की जिंदगी जीना हम गरीबों के भाग्य में नहीं है। वैसे भी मैं अपने घर पर भी नीचे ही खाना खाती थी।

ओह! इस छोटी-सी बात बात के लिए आप इतना संकोच क्यों कर रही हैं। शिप्रा ने कंधे का सहारा देकर उसे कुर्सी पर बिठाया। ओह, आप बिल्कुल मेरी माँ की तरह हैं। वे भी नीचे बैठकर ही खाना खाती हैं, कितना समझाने पर भी कुर्सी पर नहीं बैठतीं। उनका कहना था हमारे समय में टेबल-कुर्सी का चलन नहीं था। ये सारे साहबी ढंग मैं कभी नहीं अपनाऊँगी।

विनोदिनी चुपचाप शिप्रा की बातें सुनती रही। उसकी बातों में कितना आत्मीय भाव था। उसके प्रति अचानक इस व्यवहार को देखकर वह मुग्ध हो गई थी। अगाध सागर का रहस्य उसकी आँखों के सामने था। संसार की यह कैसी माया है। कैसे पलक झपकते ही पराये अपने हो जाते हैं और अपने हो जाते हैं पराये।

मौसी को बिस्तर में सुलाकर शिप्रा अपने कमरे में चली गयी। राकेश और अपने बेटे से बात करने के लिए वह ज्यादातर मोबाइल का ही इस्तेमाल करती। राकेश एक नामी दवा कंपनी के मालिक हैं। एक नए प्रोडक्ट लॉन्च के लिए वे अहमदाबाद गए हुए हैं। महीने में करीब बीस-पच्चीस दिन तो वे घर से बाहर ही रहते हैं। उन्हें पैसे कमाने का एक नशा-सा हो गया है। हमेशा कुछ नया करने का जोश और पैसे कमाने की लोलुपता ने उन्हें घर के मोहजाल से बिल्कुल दूर कर दिया है। करीब रात बारह बजे राकेश ने फोन पर बताया कि वे परसों फ्लाइट से पहुँच रहे हैं। इतना सुनते ही शिप्रा की खुशी दोगुनी हो गई थी।

पिछले कई दिनों से शिप्रा को अकेलापन बोझ-सा लगने लगा था। उसने कई बार राकेश से इस बारे में चर्चा भी की थी। तुमने हमारे इकलौते बेटे बुबुन को भी हॉस्टल भेज दिया। बड़ा होकर स्मार्ट होगा, हाई सोसाइटी में रहकर अपना बिजनेस संभालेगा इसलिए उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसे दून स्कूल भेज दिया। लेकिन इसके बदले मुझे क्या मिला? मैं तो हमेशा से अकेली ही रह गई।

तुम अकेली कहाँ हो, मैं तो हमेशा तुम्हारे साथ ही हूँ। अगर तुम ऐसे ही बच्चों की तरह जिद करोगी तो मैं अपना काम कैसे कर पाऊँगा? अब मेरी भी उम्र हो गई है, मुझे भी काम करने की इच्छा नहीं होती। लेकिन जो लोग पूरी तरह से हमारे कारखाने पर निर्भर हैं, यदि उनका काम बंद हो गया तो वे रास्ते के भिखारी बन जाएंगे। हमारे अलावा उनकी मदद कौन करेगा? तुम परेशान मत हो, मैं जल्द ही अपना काम खत्म कर आ जाऊँगा। राकेश ने शिप्रा को समझाते हुए कहा।

उनकी बातें शिप्रा को चुप जरूर करा देतीं। लेकिन सारी रात नींद की गोली खाकर भी वह करवट बदलती रहती और दूसरी ओर उसकी परेशानियों से बेखबर राकेश अपने बिजनेस की फाइल संभालने में ही उलझे रहते।

चालीस की उम्र में ही शिप्रा को हाई ब्लड प्रेशर तथा नींद न आने की बीमारी ने घेर रखा था। दरअसल अकेले जीवन काटना ही इंसान को बीमार कर देता है। कई बार बुबुन को याद कर उसे आशीर्वाद देते हुए कहती, बेटा तू हमेशा खुश रहना और अपने जीवन में आगे बढ़ते रहना। तुझे साहब बनाने के लिए ही न चाहकर भी इतनी छोटी उम्र में बाहर भेजा। दूसरे कमरे में सोई हुई मौसी को देखकर उसे अपनी माँ की याद आ गयी। मच्छर से बचने के लिए उसने मौसी के बिस्तर में मसहरी लगा दी थी। किंतु उसकी अपनी माँ की देखभाल कौन करता होगा। उनके लिए तो खुद चलना भी मुश्किल है। जब से उनकी पोती पढ़ाई करने शहर गई है, उनका काम करने वाला कोई नहीं है। बहू को अपने श्रृंगार से फुरसत मिले, तभी तो माँ की सेवा करेगी। शिप्रा चाहकर भी माँ को अपने पास नहीं रख पाती। पुराने रीति रिवाजों की मान्यता के कारण वे अपनी ही बेटी के घर का पानी भी नहीं पिएंगी।

माँ को याद करते-करते कब उसकी आँख लग गयी उसे पता ही नहीं चला। एलार्म की घंटी भी उसे सुनाई नहीं दी। सुबह के आठ बजे नींद खुलते ही उसे घर में सोई हुई अतिथि का ख्याल आया। वह झटपट बिस्तर छोड़कर बाथरूम की ओर भागी। कुछ देर बाद को कप चाय लेकर वह मौसी के कमरे में आई। सुबह की रोशनी में उसे मौसी का चेहरा ताजगी से भरा दिखा। इस उम्र में भी इतनी सुंदर, तेजस्वी, सरल एवं निरीह चेहरा। उसकी हाथों से चाय का प्याला लेते हुए विनोदिनी ने कहा, बेटा तुम सो रही थी, वर्ना मेरी इच्छा थी कि मैं तुम्हारे लिए चाय बनाकर लाऊँ।

नहीं मौसी! आप तो ऐसे भी थकी हुई हैं, आप क्यों चाय बनाएँगी। आपने मेरे लिए इतना सोचा, यही बहुत है। शिप्रा ने प्यार से मौसी के कंधे में हाथ रखते हुए कहा।

नहीं बेटा, दरअसल तुम्हारा मन बहुत सरल है। वरना आज के युग में अनजान लोगों को कौन आश्रय देता है। तुम्हारा मन अच्छा है इसलिए तुम सभी को उसी नजर से देखती हो।

विनोदिनी भावुक हो गई। वह सोचने लगी- काश, उसकी बहू भी ऐसी ही सरल स्वभाव की होती। सुबह चाय बनाकर पिलाती। पर नहीं, वह तो अपने मन की मालिक है। जब उसकी इच्छा होगी तो वह चाय बनाएगी, वरना नहीं। बेटा भी अपने आप ही चाय बनाकर पीता। कुछ कहने पर उलटा जवाब मिलता। अपने बेटे का अमंगल न हो इसलिए वह कुछ नहीं कह पाती। विनोदिनी समझ नहीं पाती कि क्यों अपना ही कोखजाया बच्चा इतनी जल्दी बदल जाता है? क्यों उसकी याददाश्त इतनी कमजोर हो जाती है? घर वही रहता है, छत और दीवारें भी वही रहती हैं, पर माँ-बेटे के संबंधों में इतनी बड़ी खाई कहाँ से उपज जाती है। माँ से बात करना तो दूर, अपनी पत्नी के गलत आरोपों पर भी वह कुछ नहीं कहता। बहू की जिद थी कि जब तक माँ इस घर में रहेगी, मैं नहीं रहूँगी। अपने बच्चे को लेकर मैं मायके चली जाऊँगी। अपनी पत्नी की जिद के आगे उसकी बोलती बंद हो गई और मजबूर होकर उसने माँ से विनतीवश कहा- माँ, चल, मैं तेरे रहने का कहीं और बंदोबस्त कर दूँगा। बेबस, लाचार बेटे के अनुरोध को सुनकर विनोदिनी सोचने लगी, भला इस घर को छोड़कर वह और कहाँ जाएगी। बेटा, मुझे घर से अलग कर कहाँ ले जाओगे? विनोदिनी ने जिज्ञासावश पूछा।

वृद्धाश्रम! बेटे ने सिर झुकाते हुए कहा।

उस दिन अपने बेटे की जुबान से वृद्धाश्रम का नाम सुनकर विनोदिनी के होश उड़ गए। ऐसा लगा जैसे उसके पैरों की जमीन खिसक गई हो। उनकी आँखों के आगे अंधकार छा गया। मन को सांत्वना देने के लिए उसने अपनी आँखों पर पानी छिड़का। आखिर रोती भी तो किसके सामने? कुछ देर बाद शांत होकर उसने बेटे से कहा - तू जैसा कहेगा, वैसा ही होगा। लेकिन पहले तू बहू को घर ले आ। तुम दोनों सुख चैन से रहो, इसी में मेरी खुशी है। अच्छा बेटा, अब और देरी नहीं करो, अगर बहू के आने में देरी हो गई तो शायद अपने मायके के मोह में पड़कर तुझे भी भूल जाएगी। इतना कहकर विनोदिनी खुशी-खुशी वृद्धाश्रम चली गई। कम से कम वहाँ उससे बातें करने के लिए उसे उसके हमसाथी तो मिल जाएँगे।

उस दिन विनोदिनी को अपने बेटे के चेहरे में संकोच की जगह खुशी की झलक दिखाई दी थी। उसकी गृहस्थी का सबसे बड़ा काँटा उससे अलग हो गया था। शायद उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि माँ उसकी बात इतनी आसानी से मान जाएगी।

लेकिन उस दिन विनोदिनी को सबसे बड़ा धक्का लगा जब वृद्धाश्रम वाले ने दो महीने के बाद ही उन्हें वहाँ से निकालते हुए कहा कि अब आप यहाँ नहीं रह सकतीं। आपकी अग्रिम राशि खत्म हो गई है। कई दिनों तक अपने बेटे के आने का इंतजार किया पर उसने कोई पैसे नहीं भेजे। बिना पैसे के वृद्धाश्रम वाले भी कितने दिनों तक रख पाते? चार महीने इंतजार करने के बाद उन्हें बाहर निकाल दिया गया। इसके अलावा उनके पास कोई उपाय भी नहीं था। अब विनोदिनी के पास न पैसे थे और न ही कोई सहारा। विनोदिनी ने वापस घर आकर अपने बेटे-बहू से मिलना चाहा। पर वहाँ भी कोई नहीं मिला। उसके मन में संदेह हुआ कि कहीं उसकी बहू घर छोड़कर तो नहीं चली गई। उसके जीवन का सबसे बड़ा काँटा तो उनकी जिंदगी से हमेशा के लिए दूर हो गया था। फिर वे लोग कहाँ चले गए? थक-हारकर वह वहीं जमीन पर बैठ गई। इसी बरामदे पर बैठकर न जाने उसने कितनी शामें गुजारी होंगी। पर, आज उसी आशियाने में वह अपरिचित बन गई है।

कौन? किसे खोज रही हैं? घर के अंदर से आवाज आई।

सुरेश महापात्र को? विनोदिनी ने डरते-सहमते हुए कहा।

वे यहाँ नहीं रहते हैं! यह घर अब उनका नहीं है, हमने इस घर को खरीद लिया है।

अब यह हमारा घर है। लेकिन आप कौन हैं और यहाँ क्यों आई हैं? आगंतुक ने उत्सुकतावश पूछा।

नहीं नहीं, मैं कोई नहीं हूँ। मैं जा रही हूँ बेटा। इतना कहते हुए विनोदिनी चुपचाप वहाँ से बाहर आ गई थी। कुछ दूरी पर खड़ी होकर उस घर को छलछलाई आँखों से एकटक निहारती रही जिसकी एक-एक ईंट को जोड़ने में अपने जीवन की सारी जमा-पूंजी लगा दी। आज उस 'स्वप्न निकेतन' में न कोई स्वप्न है और न ही निकेतन। उसके लिए अब कोई आश्रय ही नहीं है। सिर पर खुला आकाश और पाँव के नीचे वीरान रास्ता। शाम होने वाली है, अब वह कहाँ जाएगी। यही सोचकर वह वहीं सो गई थी।

अतीत की यादों में खोई विनोदिनी की तंद्रा भंग हुई तो खिड़की से हल्की रोशनी घर के अंदर प्रवेश करने लगी थी। सुबह हो गई थी और उसे अब यहाँ से जाना था। पर वह कहाँ जाएगी? इतना बड़ा संसार, इतने सारे शहर और उसमें रहने वाले इतने सारे लोग लेकिन उसके रहने का कोई ठिकाना ही नहीं। वह किसके पास जाकर रहेगी? यह सोचकर ही उसका दिल काँप उठा।

मौसी, आप नहाकर आ जाइए, तब तक मैं आपके लिए नाश्ता तैयार कर लेती हूँ। फिर आराम से आपकी सारी बातें सुनूँगी। शिप्रा ने मौसी के हाथ से चाय का कप लेते हुए कहा।

इस अभागिनी के पास ऐसी कौन-सी बात है जो तुम सुनोगी बेटा। इतना कहकर छलछलाई आँखों से विनोदिनी ने कहा, 'बेटा, अब मुझे जाने दो। मुझ अभागी के लिए तुम क्यों परेशान हो रही हो।'

न जाने क्यों शिप्रा अचानक चौंक पड़ी। उसे लगने लगा जैसे उसकी अपनी माँ को कोई खदेड़ रहा हो। या फिर वह खुद इस वृद्धा की भूमिका में खड़ी है और कोई उससे कह रहा है कि जा.... जा इस घर से निकल जा। उसे ऐसा महसूस होने लगा कि यह अनगिनत पैसे, प्रतिष्ठा सब कुछ तो राकेश के

ही हैं, उसका अपना कोई अस्तित्व तो है ही नहीं। क्यों चालीस की उम्र में ही उसे अपनी जिंदगी से डर लगने लगा है।

उसका मन चुनौती के शिखर पर खड़ा था। यदि आज एक आश्रिता को वह यहाँ से भगा देती है तो भविष्य में उसे कौन आश्रय देगा। हठात् शिप्रा ने एक झटके से वृद्धा का हाथ पकड़ते हुए कहा- क्या कोई बेटी कभी अपनी माँ को रास्ते में छोड़ सकती है? आज से आप मेरे साथ यहीं रहेंगी, यह घर भी आपका ही है। एक माँ के कई बच्चे होते हैं तो क्या मैं आपकी बेटी नहीं बन सकती!!

– द्वारा सुश्री सुरभि बेहेरा, मकान 'स्वरांजली', गड़ासाही, पोस्ट-जाँला, खोरधा (ओडिशा)-752054

– मकान 'स्वरांजली' गड़ासाही, पोस्ट-जाँला, खोरधा (ओडिशा)-752054

❑❑❑

पुण्या

मूल एवं अनुवाद : शकुंतला कालरा

मैं अस्पताल से सीधा घर आया। माँ बेताबी से मेरा इंतजार कर रही थी। स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट पोते की सुखद कल्पना में डूबी माँ को कन्या के जन्म की खबर ने स्तब्ध कर दिया। वे मानो ऊपर झूले से गिरी हों अथवा किसी ने उन्हें दुखद दुर्घटना का अप्रिय समाचार दे दिया हो। पोते की जगह पोती को देखने वे अस्पताल भी नहीं गईं।

उस दिन माँ की आंखों में आँसू थे। कुल के वंशधर के लिए कराए गए उसके सारे पूजा-पाठ निरर्थक हो गए थे। यज्ञ और हवन निष्फल। प्रसव से पूर्व ही माँ ने गाँव से गाय का शुद्ध घी मँगा कर आटा, सूजी और गोंद मिला कर मेवा और खोये के लड्डू बाँधकर कनस्तर तैयार कर लिया था। सुंदर गोल-मटोल, गोरे-चिट्टे पोते की तीव्र लालसा लिए वह बहू को पलंग से नीचे पाँव न रखने देती। अशक्त हाथों में एक अजीब-सी शक्ति आ गई थी। बड़ी स्फूर्ति से घर के सारे काम स्वयं ही कर लेती।

नियत समय पर उनकी इच्छा के विपरीत लक्ष्मी रूपा पुण्या का जन्म मेरी बेटी के रूप में हुआ। अपनी प्रतिछवि को पुत्र रूप में न पाकर मैं भी थोड़ा-सा उदास हो गया था। शशि बहुत कमजोर और थकी लग रही थी। प्रसूति के दर्दभार से और कुछ माँ जी के डर से, जिन्हें वह पोता न दे पाने का स्वयं को कसूरवार मान रही थी। मेरी उदासी को वह भाँप न ले, इसलिए बिना कुछ बोले ही घर चला आया। मुझे उदास देखकर उसकी रोती आँखों में भी अजब उदासी-सी उभर आई थी।

मैं अपने कमरे में आकर बिस्तर पर लेट गया। सारी रात की थकावट के बाद भी मुझे नींद नहीं आई। मेरी नींद उड़ गई थी। मैं भी करवटें बदलता रहा।

लेटे-लेटे मेरी निगाह अचानक दीवार पर टंगे चित्र पर गई। सरस्वती, लक्ष्मी और वैष्णवी का संयुक्त चित्र था। मुझे लगा यही शक्ति तो मेरे यहाँ साकार रूप में आई है। मैं उठा और नहा-धोकर दोपहर का खाना लेकर अस्पताल की ओर चल पड़ा।

शशि की बगल में संगमरमर की तराशी सुकोमल मूर्ति को देखकर मैं अभिभूत हो उठा। माँ बेटी दोनों की मासूमियत देखकर मेरा हृदय प्यार से भर उठा। मैंने बेटी का मस्तक चूम लिया। दुग्ध-फेन की तरह गोरी-गोरी सुंदर-सुकुमार बेटी के रूप में मेरा स्वर्ग धरती पर उतर आया था। उसे मैंने अपनी बाँहों में भर लिया और एक बार फिर जी भर कर चूम लिया। शशि मुस्करा दी, उसने मेरी ओर देखा और पूछा, किस पर है?

'हू-ब-हू तुम्हारी तरह, वही रंग, वही रूप, वही नक्श।'

'और तेवर? वे तो तुम्हारे हैं ना?' कहती-कहती शशि शरारत से हँस पड़ी। वही निर्मल निश्छल हँसी, पर बहुत थकी और कमजोर-सी।

मेरे अंतस का वात्सल्य आँखों से बहकर नन्हें कपोल भिगोने लगा। मुझे लगा मेरे कई जन्मों का संचित पुण्य मुझे बेटी के रूप में मिला है। मैंने वहीं उसका नाम 'पुण्या' रख दिया और उसे शशि की बगल में लिटा दिया।

माँ बहुत दिन भगवान से रूठी रहीं। कई दिनों तक पूजा-घर में नहीं गईं। तुलसी को जल नहीं चढ़ाया, न दिया जलाया। न सूरज देव को अर्घ्य दिया। उनकी झोली में पोते की जगह पोती को डालकर भगवान अब पूजनीय नहीं रहे थे। वह अक्सर बड़बड़ाती रहती और हम दोनों कनखियों से एक दूसरे की ओर देखकर मुस्करा देते। मैं जान-बूझकर पुण्या को माँ की गोद में डाल देता। धीरे-धीरे वह अपनी बाल-सुलभ किलकारियों से दादी माँ के स्नेह को भी पा गई।

पुण्या बड़ी होने लगी। अपने नाम के अनुरूप ही वह हम सबके पुण्यों का साकार रूप थी। बचपन से ही शांत और संतुष्ट पुण्या दादी माँ के आसपास ही

271 CHD / 2018—12A

मंडराती रहती। दूसरे बच्चों की तरह उसे घर से बाहर खेलना कभी अच्छा नहीं लगता। अन्य बच्चों की तरह वह भूख-प्यास में भी रोती-चिल्लाती नहीं थी। बच्चों जैसी जिद या नखरे उसके स्वभाव में ही नहीं थे। किसी रंग की कोई भी पोशाक उसे पहना दो। चप्पल, जूता, सैंडिल, बूट जो चाहे सुविधा से पहना देते, उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

वह सदा अपने चचेरे भाई नील के साथ घर में खेलती। नील जब बाहर भी जाता, वह घर ही रहती। नील की आस-पड़ोस से शिकायत आती। वह अक्सर बच्चों की पिटाई कर देता। घर-बाहर सभी उसकी शरारतों से दुखी थे।

नील पुण्या से दो महीने बड़ा था। दोनों अब दो वर्ष के थे। हम जब भी कभी लॉन में बैठते, नील और पुण्या भी हमारे पास ही खेलते रहते। मैं दोनों के स्वभाव को ऑबजर्व करता। जहाँ नील का मनोरंजन टी.वी., वीडियो गेम तथा बैटरी के महँगे-महँगे कंप्यूटर इंडस्ट्री द्वारा विकसित खिलौनों ने किया, वहाँ पुण्या ने दादी से कहानियाँ सुनकर उन्हीं के साथ बाहर फुलवारी में तितलियों के पीछे भागते-भागते समय बिताया।

नील अक्सर उससे झगड़ा करता। जब वह बहुत तंग करता तो वह माँ के गले में बाँहें डालकर झूलने लगती और कहती- 'देखो न मम्मी। नील भैया ने फिर हमाली खिलौने की टोकली उलट दी है।' वह उन्हें समेट कर फिर टोकरी में रख देती। नील फिर आता और चुपके से उसकी टोकरी फिर पलट कर उसे खूब चिढ़ाता और ताली पीटता हुआ भाग खड़ा होता। वह मेरी गोद से उतरकर फिर अपने खिलौने समेटने लगती, पर परेशान न होती। उसकी सहनशीलता हमें चौंका देती। शशि जब आलू-प्याज की टोकरियाँ लेकर बाहर सब्जी आदि काटने बैठती तो नील अपने स्वभाव के मुताबिक टोकरियाँ उलट कर सब्जियाँ बिखेर देता। बगीचे के फूल टहनियों सहित तोड़कर मसल डालता। पुण्या उन पंखुड़ियों को उठाकर अपनी झोली में डाल लेती। इसी तरह बिखरे आलू प्याज भी उठाकर अलग-अलग टोकरियों में करीने से भर देती। शायद यही उसका खेल होता। मैं उसे उठाकर चूम लेता। नील अपनी छोटी ट्राइसाइकिल पर बाहर निकल जाता और वह वहीं मेरी टांगों पर झूलकर पता नहीं क्या खजाना पा जाती। मैं अक्सर बाहर कुर्सी पर बैठा उसे अपनी टांगों में झुलाता।

271 CHD / 2018—12B

समय का रथ आगे बढ़ता गया। स्कूल की पढ़ाई पूरी करते ही नील और पुण्या की दिशाएँ अब अलग-अलग हो गईं। पिछली हर परीक्षा की तरह इस बार बोर्ड की परीक्षा में भी पुण्या नील से बहुत आगे थी। उसे आई.आई.टी. दिल्ली में सीट मिल गई और ढेर-सी केपीटेशन फीस देकर नील को भी बंगलुरु पढ़ने के लिए भेज दिया गया। चार साल की डिग्री लेने में उसने छह साल लगा दिए और ढेर सारा पैसा भी, कुछ पढ़ाई पर और बाकी मौज मस्ती में। भाईसाहब नील की हरकतों से भीतर ही भीतर बहुत दुखी रहते। कभी-कभी उनकी धुंधली बुझी आँखों में मैं झाँकता तो वहाँ विवशता के सिवा कुछ भी न पाता। अकेले बैठकर वे रो देते ताकि कोई देख न पाए। नील में जिम्मेदारी का अहसास बिल्कुल भी नहीं था। भाई-साहब की छूट या उनकी अवशता ने उसे उच्छृंखल बना दिया था।

पुण्या अब आई.आई.एम. अहमदाबाद से एम.बी.ए. करके आ गई थी। उसकी प्लेसमेंट यहीं दिल्ली में ही हो गई थी। उम्र के साथ-साथ उसमें शालीनता तथा मधुरिमा और भी बढ़ गई थी। पुण्या जैसा मर्यादा-भाव नील में कहीं भी नहीं था। नई-नई ड्रेस में नील पानी की तरह पैसा बहाता। भाईसाहब मूक और लाचार बने निर्विकार भाव से सब देखते और सहते। इसके सिवा चारा भी क्या था? भाभी भी अपने बुढ़ापे के दुर्दिनों को अपनी तीसरी आँख से स्पष्ट देख रही थी। अक्सर उनकी आँखों में मजबूरी के आँसू होते। उसके जन्म के समय ही वे बहुत खुश हुए थे शायद।

पुण्या नई ड्रेस पर फिजूलखर्ची करने के पक्ष में कभी नहीं रहती। नौकरी के बाद भी वह कपड़े पर पैसा कम ही खर्च करती। वह अक्सर साड़ी ही पहनती। साड़ी में उसकी सौम्यता और भी द्विगुणित हो उठती। साड़ी उसका प्रिय पहनावा था या उसकी समझदारी? शायद दोनों ही। माँ जब भी उसे दो-चार अच्छे सूट सिलवाने के लिए कहती तो वह हमेशा तर्क देती- माँ, बाद में सूट कौन पहनेगा? रोज तो फैशन बदलते रहते हैं। कभी लंबे तो कभी ऊँचे। कभी ढीले तो कभी चुस्त। फिजूल में इतनी सिलाई। साड़ी तो एवरग्रीन है माँ। हमारा भारतीय पहनावा। कोई भी साड़ी पहनो, ब्लाउज अपनी फिटिंग का होना चाहिए बस। नई साड़ी भी वह कम ही खरीदती। अक्सर माँ की साड़ी के साथ का

मैचिंग ब्लाउज बनवाती और उसे पहनकर उसकी शालीनता और भी निखर-निखर आती।

पुण्या मेरे पुण्यों की तरह ही बढ़ रही थी। उसकी शादी का खयाल अब स्वाभाविक था। उसके बिछोह की कल्पना मात्र से हृदय में एक हूक-सी उठती। कितना कठिन होता है अपने हृदय के टुकड़े को दूसरे को सौंपना। बेटी की करुण विदाई की कल्पना मात्र से मैं भीतर ही भीतर काँप जाता। पर एक दिन मौका पाकर हमने पुण्या से इस विषय पर बात की तो वह भी हमारी ही तरह उदास हो गई। उसने जो तर्क दिया, वह उस जैसी बेटी ही दे सकती है। पुण्या ने कहा, आपने मेरी पढ़ाई पर सारा पैसा खर्च कर दिया है। आपका बुढ़ापा किसके सहारे सुरक्षित छोड़ा जा सकता है? आपको सँभालने वाला कौन होगा बेटा या पैसा? आपके पास तो दोनों चीजें नहीं हैं। कौन आपका खयाल रखेगा? पैसा होगा तो घर में बाकी लोग आपका खयाल भी कर लेंगे। मैंने तय किया है कि अभी दो साल मैं शादी नहीं करूँगी, शादी करूँगी भी तो अत्यंत सादगी से। कोई फिजूलखर्ची नहीं।

पुण्या की शादी मैं धूमधाम से करना चाहता था। प्रोविडैंट का पैसा मैंने संभाल कर रख छोड़ा था। बुढ़ापे के लिए पेंशन का सहारा काफी था। पुण्या ही मेरी बेटी और वही मेरा बेटा भी था। मैं अपने सारे शौक उसी से पूरे करना चाहता था। रंग-बिरंगी रोशनी से पूरा घर जगमगाना चाहता था। चारों ओर रोशनी की गंगा में नहाती कीमती लाल सुनहरी साड़ी में आभूषणों से सजी गुड़िया के रूप में पुण्या को देखना चाहता था। शशि का भी यही सपना था। पर पुण्या की जिद के आगे हमें झुकना पड़ा।

पूरे दो वर्ष बाद सादे समारोह में अत्यंत आत्मीयों की उपस्थिति में पुण्या का विवाह संपन्न हो गया। उस दिन मैं फिर रोया। पहली बार मैं तब रोया था जब पुत्र की तीव्र लालसा लिए पुण्या मेरे यहाँ बेटी के रूप में आई थी। उसके जन्म के समय ही डॉक्टर ने मुझे अलग बुलाकर बता दिया था कि शशि अब पुनः माँ नहीं बन सकेगी। उसकी डिलीवरी बड़ा जटिल रूप ले ली थी। और आज मैं फिर रोया, जब वह मेरे घर से जा रही थी। उसकी विदाई में कौन नहीं रोया था। पुण्या के बिना घर के अस्तित्व की कल्पना ही बेमानी लग रही थी।

वह हमारे नेत्रों का जल और हृदय की धड़कन थी। हम सब उसे एयरपोर्ट छोड़ने गए। वह अपने जीवन साथी दिव्य के साथ अमरीका जा रही थी। उसने चलते-चलते कहा था, 'आप लोग रोना नहीं और ना ही उदास होना। मैं रोज आपको फोन करूँगी, अपना खयाल रखना। और पापा, ससुराल जाती बेटी की एक इच्छा जरूर रख लेना। मेरी फोटो के पीछे एक लिफाफा पड़ा है, उसे देख लेना।' दूर तक हाथ हिलाते-हिलाते वह विदा हो गई।

पूरे रास्ते हम सोचते रहे, क्या होगा उस लिफाफे में? पत्र? पर ऐसा क्या लिखा होगा उस पत्र में, जो वह हमें कह नहीं सकती थी। तरह-तरह की आशंकाओं से घिरे हम घर आए। टेबल पर पुण्या की फोटो पड़ी थी। सजीव मुस्कराती पुण्या जैसे स्वयं हमसे बात कर रही थी। मैंने लिफाफा उठाया और पत्र जल्दी से पढ़ना शुरू किया-

प्यारे मम्मी-पापा,

काश! मैं बेटा होती और तब आप मुझे यूँ विदा न करते। मुझे आपकी बहुत याद आएगी, पर मैं आपकी पुण्या हूँ और पुण्य सदा साथ रहते हैं। मैं सदा आपके साथ हूँ। दादी माँ कहती हैं पुण्य दिखाई नहीं देते पर समय पर प्रकट होते हैं। आप मुझे भी सदा अपने पास पाओगे। मैं आपको रोज फोन करूँगी। आप उदास न होना। मेरी चिंता न करना। आपने मुझे पढ़ा लिखा कर आत्म-निर्भर बना दिया है।

और हाँ! जो दहेज के रूप में आपने दिव्य और मुझे पाँच लाख का चेक दिया है, उसे हमने आपके एकाउंट में जमा करवा दिया है। पत्र के साथ ही रसीद भी रखी है। मेरी नौकरी के पैसे को आपने बेटी का धन क्यों कहा? क्या मैं आपका बेटा नहीं बन पाई? आपसे दूर जाना मेरी विवशता है। दिव्य के भविष्य को देखते हुए मुझे यह फैसला लेना पड़ा। एक वर्ष की तो बात है। हम शीघ्र ही मिलेंगे।

और पापा! दिव्य बहुत ही अच्छे हैं। यह फैसला मेरा ही नहीं, दिव्य का भी है। उसने चेक लेने से साफ इंकार कर दिया था। उसका कहना है कि बुढ़ापे में बेटे की कमी के साथ पैसे की कमी बड़ी कष्टकर होती है। अतः आप मन पर कोई बोझ न रखें। नील भैया का खयाल रखना।- आपकी पुण्या

मैं अभिभूत-सा कभी पत्र, कभी पुण्या की तस्वीर की ओर देखता। मैंने उस समय भगवान से यही कहा- 'पुण्या जैसी बेटी मुझे हर जन्म में देना।'

– एन.डी.-57, पीतम पुरा, दिल्ली-110034

❑❑❑

प्रभु की माया

गुरचरण सिंह

मेरा मुँह अब भी दीवार की तरफ था। कमरे में हो रही हलचल से मैं अनजान नहीं था, पर मैं गहरी सुस्ती की गिरफ्त में था। उठने को मन ही नहीं कर रहा था। मेरी पत्नी कमरे में आते-जाते मुझे जल्दी उठने और तैयार हो जाने के लिए कह रही थी। मैंने करवट बदल कर एक बार कमरे की तरफ देखा। सामान हटाया जा चुका था। कमरे के बीचों-बीच हवन होना था। पंडित जी के लिए आवश्यक सामान भी सलीके से लगाया जा चुका था। इस बार पत्नी कमरे में आई तो उसने पानी के छींटे मेरे मुँह पर मार दिए। मैं हड़बड़ा कर उठा- 'अरे क्या है, सोने भी नहीं देती हो।'

पत्नी के स्वर में खीझ के साथ-साथ गुस्सा भी था- 'नौ बज गए हैं और जनाब अभी भी कह रहे हैं- 'सोने नहीं देते।' आपकी वजह से मेरे सभी काम लटक जाते हैं। ग्यारह-बारह रसोई में ही बज जाते हैं। अब उठो, नहा धो लो, पंडित जी आने वाले हैं। यह नहीं, काम में कुछ हाथ ही बँटा दो, सुबह से अकेली ही लगी हुई हूँ।'

मैं जब से सेवानिवृत्त हुआ हूँ, मेरी दिनचर्या ही बदल गई है। पहाड़-सा दिन काटे नहीं कटता। इतना सो लेने के बाद भी लगता है कि अभी पूरा दिन बाकी है। दिन कैसे कटेगा- की चिंता सुबह से ही सताने लगती है। पत्नी ने मेरी समस्या को समझते हुए ही टाइमटेबल बनाकर सामने रख दिया था। उसके अनुसार मैं पूरे दिन व्यस्त हो गया था। पर कुछ दिनों के बाद मुझे रोज-रोज वही काम खलने लगे थे। मैं खुद को बंधा हुआ अनुभव करने लगा था। मैं आज तक सुबह सैर करने नहीं गया था अब दो घंटे पार्क में क्या करूँ! पार्क के तीन-चार

चक्कर लगा लेने के बाद बेंच पर बैठ जाने के सिवाए मैं कर ही क्या सकता था। पर अकेले कब तक बैठा जा सकता है। मैं आधे घंटे के बाद ही घर वापस आने लगा। घर पर पत्नी अपने कामों में व्यस्त थी। बच्चों को अपने-अपने कामों पर निकलना था, वे भी हड़बड़ी में नजर आते थे। पत्नी सभी को नाश्ता कराने और सभी का लंच पैक करने में व्यस्त रहती थी। मैं जानता था कि ये सभी काम जरूरी हैं, इसलिए पत्नी को आवाज भी नहीं लगा सकता था।

मुझे याद है, पत्नी ने कहा था- 'आधे घंटे में ही वापस आ गए.... कोई बात नहीं, आओ, रसोई में मेरा हाथ बँटा दो।'

रसोई में तो मैं आज तक गया ही नहीं था। सभी कुछ मुझे मेज पर मिलता रहा है। मैं तो पानी के गिलास के लिए भी आवाजें ही लगाता था।

पत्नी के दोबारा कमरे में आने से पहले ही मैं नहाने-धोने चला गया था। उसने फुर्ती से नाश्ता तैयार कर दिया था। बच्चे अपने-अपने काम पर चले गए थे। वह बर्तन लेने आई तो मैंने यूँ ही कह दिया- 'क्यों रखवाती हो आए दिन ये पूजा। बच्चे घर में नहीं हैं, मेरी पूजा में कोई रुचि नहीं है- ऐसे ही अकेली लगी रहती हो।'

पत्नी मुस्करा दी- धर्म-कर्म का काम घर में होते रहना चाहिए- घर में खुशी और बरकत के लिए यह जरूरी है।

मैं जानता हूँ, मेरा कोई तर्क यहाँ काम नहीं करेगा। नाश्ता करते ही मैं फिर दीवान पर लेट गया। मेरा मुँह फिर दीवार की तरफ था। पंडित आएगा, तो पत्नी उठा लेगी।

आँखों में नींद नहीं थी, पर बदन अलसाया हुआ था। कमरे में पत्नी के कदमों की आवाज को अनुभव करता हूँ। लगता है फिर डाँट पड़ेगी.... वह कुछ-न-कुछ कहेगी। उसके कमरे से बाहर जाने को भी अनुभव करता हूँ। आश्चर्य होता है कि उसने कुछ नहीं कहा। मैं करवट बदल कर कमरे के हर कोने को देखता हूँ। कमरे में कोई नहीं है। मैं पीठ के बल लेट जाता हूँ। बस, पंडित आने वाला होगा। तब तो मुझे उठना ही पड़ेगा। पंडित कमरे में आते ही पंखा बंद कर देगा। आसन पर बैठ जाएगा, छोटे से लोहे के हवनकुंड में लकड़ियाँ रखेगा, सामग्री को अपने आगे सरका लेगा, फिर सभी को आने के लिए कहेगा.... इस सभी में केवल दो ही लोग होंगे.... मैं और मेरी पत्नी, मैं बदन

को जोर से खींचता हूँ। पैर दो-तीन इंच और द्वार की ओर हो गए है। दरवाजा खुला हुआ है। बाहर से आ रहा प्रकाश मेरे घुटनों तक पड़ रहा है।

पंडित अंदर आते ही खुशी से उछल पड़ता है- 'अरे वाह, यजमान! आपके पैर में तो पद्म है।'

मेरी पत्नी आभा भी खुशी में उछलती है- 'क्या कहा पंडित जी....'

'यजमान के दाएँ पैर में पद्म है। ऐसा पुरुष अवतारी होता है.... तुम धन्य हो, यह घर धन्य है। मेरा अहोभाग्य अवतारी पुरुष के दर्शन हुए।' वह हाथ जोड़कर प्रणाम करता है।

मैं चौंकता हूँ, यह क्या हो रहा है?

आभा फोन कर रही है- 'अरे अमला, सुनती हो, पंडित जी क्या कह रहे हैं.... इनके पैर में पद्म है। पंडित जी कह रहे हैं ऐसा पुरुष अवतारी होता है। ....हाँ ....हाँ आ जाओ, दर्शन करने हैं, हाँ, आ जाओ, वैसे भी घर में पूजा रखी हुई है। हाँ.... हाँ.... औरों को लाना है तो लेती आना।'

मैं एकदम उठकर बैठ जाता हूँ, आश्चर्य से पंडित जी की ओर देखता हूँ, फिर पत्नी की ओर.... वह एक के बाद एक फोन किए जा रही है।

मैं ही कहता हूँ- 'अरे आभा! यह क्या कर रही हो?'

पंडित जी कहते हैं- 'आ जाओ, पूजा प्रारंभ करें।'

पूजा समाप्त होने तक घर में पंद्रह-बीस औरतें आ गई थीं, जो भक्ति भाव से मेरे चरण स्पर्श कर रही थीं और मैं सकुचाते हुए पैरों को इकट्ठा करने का व्यर्थ प्रयास कर रहा था।

पंडित जी ने उठते हुए कहा था- 'यजमान, दीवान पर ही पालथी मार कर बैठ जाओ। मैं कल मोतियों की माला लेता आऊँगा, हाथ में वह होनी चाहिए।'

पंडित जी ने मेरे माथे पर लंबा सा टीका लगा दिया था। अचानक हो रहे इन बदलावों से मैं हतप्रभ था। कुछ कहना चाहते हुए भी कह नहीं पा रहा था। पैरों की उंगलियों पर स्त्रियों के हाथों का स्पर्श रोमांचित कर रहा था। एक योगी या सन्यासी की तरह मेरी आँखें स्वत: ही बंद हो गई थीं। आज तक कभी भगवान का नाम नहीं लिया, पर आज मन में जाप चल रहा था। जाप के साथ-साथ कई विपरीत विचार मन में चल रहे थे। आभा कहा करती थी, जीवन

में कब क्या हो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता- हमें हर स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। पर इस स्थिति की न तो संभावना थी और न ही तैयारी के लिए समय मिला था। स्त्रियाँ पत्नी की परिचित थीं, इसलिए चाय-पानी की सेवा हो रही थी। मैंने आँखें खोल कर चाय पी रही महिलाओं की ओर देखा, फिर अपने चरणों की ओर। कुछ फल तथा कुछ पैसे पड़े थे। खुद पर ही ग्लानि हुई। यह क्या है? मेरा तो ईश्वर से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं और ये मुझे ही पूजने लगी हैं। जाने से पहले स्त्रियों ने फिर प्रणाम किया। दो-चार ने फिर चरणों को छुआ। मेरा हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में खुद ही उठ गया।

कमला जाने लगी तो आभा के गले मिली- 'तुम कितनी भाग्यशाली हो, अवतारी पुरुष पति के रूप में मिला।' आभा के चेहरे पर अलौकिक मुस्कान थी। पर वह जल्दी ही यथार्थ की जमीन पर आ गई- 'कमला, आज चौदह तारीख है। तुमने अभी तक कमेटी के पैसे नहीं दिए।' कमला ने चौंकते हुए कहा- 'अरे, जल्दी में आई तो याद ही नहीं रहा। शाम को आती हूँ तो लेती आऊँगी।'

बर्तनों को समेट कर जब पत्नी कमरे में आई तो उसकी चाल बदली हुई थी। मुझे देखते ही बोली- 'अरे! आपको प्रसाद तो दिया ही नहीं।' उसके स्वर में भूल का अहसास था। मैंने कुछ नहीं कहा। उसने एक लड्डू मेरे हाथ पर रख दिया, जिसे मैं धीरे-धीरे खाने लगा। तभी द्वार पर कुछ भक्त और आ गए, मैंने तुरंत पालथी लगा ली, आँखें स्वत: ही बंद हो गईं। मन ने खुद को धिक्कारा- 'अरे! तुम तो नौटंकी करने लगे।'

'करने कहाँ लगा हूँ, खुद ही हो रही है बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के।' मैंने खुद को समझाते हुए मन ही मन कहा।

पत्नी सुबह से ही पूजा-पाठ के काम में व्यस्त थी। इन भक्तों के आने से उसकी व्यस्तता और बढ़ गई। दरवाजे पर कमरे में कोई तो होना चाहिए। शाम को बच्चे आएँगे तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी, इसकी चिंता भी आभा को सता रही थी।

पालथी लगाकर बैठने की मेरी आदत नहीं थी। लग रहा था, पैर अब खुलेंगे नहीं। वाशरूम जाने की इच्छा थी, पर कुछ दर्शनार्थी अभी भी द्वार पर खड़े थे। मैंने आभा को पास बुला उसे पैर खोलने के लिए कहा। वह मुस्कराई। उसने पैरों को खोला। सहारा देकर उठाया। कुछ क्षण खड़े रहने के बाद चलने

की हिम्मत हुई। आभा ने फिर दीवान पर लाकर बैठा दिया। शाम को बच्चे आए तब भी घर के बाहर कुछ लोग थे। उनका विस्मित होना स्वाभाविक था। आभा ही उन्हें पकड़कर अंदर ले गई। पता नहीं क्या समझाया कि दोनों में से कोई भी नहीं बोला। शाम को कमला आई तो आठ-दस और औरतों को साथ ले आई।

मन में गणित चलना स्वाभाविक था। एक दूसरे को कह रहा था और दूसरा तीसरे को, प्रचार तेजी से हो रहा था। इतनी तेजी से तो जंगल की आग भी नहीं फैलती। मैं सोच रहा था कि शाम तक खेल खत्म हो जाएगा, पर गणित कह रहा था, कल घर के बाहर सैकड़ों की भीड़ होगी, लोगों को संभालना कठिन हो जाएगा।

सुबह रसोई की बत्ती जलते ही मेरी नींद भी टूट गई। घड़ी देखी, अभी पाँच ही बजे थे। नौ-दस बजे तक करवटें बदलने वाला मैं आज सुबह पाँच बजे ही उठ गया था। रूप बदलने के साथ मुझमें भी परिवर्तन आ गया था।

नहा-धोकर जब छह बजे अपने दीवान पर आया तो बाहर कमला लोगों को लाइन में लगा रही थी। लाइन लंबी होती जा रही थी।

चाय की जगह दूध और कुछ सूखे मेवे लेकर पत्नी ने कमरे में प्रवेश किया था। फिर बाहर झाँक कर देखा था- 'आपने यह अच्छा किया जो सुबह उठ गए। इतनी सुबह लोग आ जाएँगे यह तो सोचा ही नहीं था- जल्दी से नाश्ता कर लो। भीड़ को रोकने के लिए कुछ व्यवस्था करनी होगी।'

सात बजे पंडित जी आ गए थे। मोतियों की माला मेरे हाथ में पकड़ाते हुए कहा था- 'एक सौ आठ मनकों की माला है। आप तो स्वयं अवतार हैं, प्रभु का जाप होते रहना चाहिए।' माथे पर कल की तरह फिर लंबा टीका लगा दिया था। आभा के माथे पर टीका लगाते हुए गले में रुद्राक्ष की माला पहना दी थी। उसका रूप भी बदल गया था।

लोग चरण-स्पर्श कर रहे थे और मेरा हाथ स्वतः आशीर्वाद की मुद्रा में उठ रहा था। लोगों की अपनी समस्याएँ, परेशानियाँ थीं, वे विनय कर रहे थे और मैं मौन हाथ उठा उन्हें आशीर्वाद दे रहा था। मुझे समझ ही नहीं आ रहा था कि ऐसी स्थिति में उन्हें क्या कहूँ?

दिन कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला। कुछ न करते हुए भी मैं इतना व्यस्त कभी नहीं रहा था।

आज सोलह तारीख थी। सुबह उठा तो लगा व्यवस्था में परिवर्तन है। द्वार पर वर्दी में कुछ सुरक्षा गार्ड खड़े थे। यह भी पता चला कि मिलने का समय भी निर्धारित कर दिया गया है। आभा ने ही बताया 'आपके आराम का समय दो से पाँच निश्चित कर दिया है। इस बीच भक्त आपसे नहीं मिल सकते।' यह जानकर अच्छा लगा कि टाँगें सीधी करने के लिए कुछ समय तो मिलेगा।

पिछले दो दिनों की अपेक्षा आज भीड़ कई गुना अधिक थी। इसका मतलब मेरा गणित ठीक काम कर रहा है। आज रविवार था, बच्चे घर पर ही थे। आभा के साथ वे भी व्यवस्था को देख रहे थे। बेटे ने माँ से कहा था- 'भीड़ को देखते हुए जगह छोटी लग रही है।'

माँ ने मुस्कराते हुए कहा था- 'बेटा, जगह को बड़ा तो नहीं किया जा सकता, पर भविष्य में बड़ी हो सकती है।'

बेटे ने ही बताया कल चढ़ावा अठारह हजार था, आज दुगना हो जाएगा। जो इतना फल आ रहा है, उसका क्या करें?

आभा के पास इसका समाधान था- दर्शनार्थियों को प्रसाद के रूप में दे दो.... इसके लिए एक सेवक रखना पड़ेगा।

नहा-धोकर जब दीवान पर आसन जमाने के लिए आया तो गहरे लाल रंग की मखमली चादर देखकर चकित हुआ। दीवार के साथ लगे गाव तकिए भी आकार में कुछ बड़े थे।

आभा ने ही बताया था- 'बेटे ने दफ्तर से कुछ दिनों की छुट्टी ले ली है। चढ़ावा वही संभाल रहा है। फिर कोई और व्यवस्था करनी होगी।' प्रसाद देने के लिए सेवक की व्यवस्था कर ली गई थी। आभा एक अच्छी गृहिणी होने के साथ-साथ सभी प्रबंध व्यवस्था भी सुचारू रूप से कर रही थी। मेरा काम सबसे आसान था, पालथी मारकर बैठना और आशीर्वाद देना।

कितने दिन बीत गए, पता ही नहीं चला।

बच्चों ने ही बताया अखबारों में मेरी फोटो छपी है। घर के बाहर भक्तों की भीड़ दिखाई गई थी। बच्चों ने, भक्तों ने, आस-पड़ोस वालों ने, दूर-पास से आए लोगों ने कई चित्र सोशल मीडिया पर डाल दिए हैं.... ऐसा भी पता चला था।

पर मैं अनुभव कर रहा था कि मैं बहुत-सी चीजों से विरक्त होता जा रहा हूँ। चढ़ावे में मेरी कोई रुचि नहीं थी, पर देख रहा था कि बच्चों की सिर्फ उसी में रुचि है।

कमला आज सुबह-सुबह ही आ गई थी। आभा को पैसे थमाते हुए कहा था- 'लो, आज तो सबसे पहले मेरी कमेटी लो।'

तो नाटक करते हुए आज पूरा महीना बीत गया। मैंने एक गहरी साँस ली।

एक भक्त अंदर आते ही मेरे पैरों में लोट गया। 'स्वामी जी आपकी कृपा से मैं केस जीत गया.... मेरी ओर से यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें।' चरणों में उसने एक लिफाफा रख दिया। मैं जानता था, उसमें कुछ नोट होंगे। लिफाफे पर बेटे की नजर होगी, यह भी मैं जानता था।

बेटे ने उस भक्त के साथ बातचीत की, उसका वीडियो बनाया और उसे सोशल मीडिया पर डाल दिया। दोपहर के बाद ऐसा ही एक और भक्त आ गया जिसकी कोई कामना पूरी हो गई थी। उसने भी एक भारी लिफाफा चरणों में रख दिया था।

मैंने जैसे ही आँखें बंद कीं- बेटे के भविष्य की चिंता सताने लगी। इतना पैसा देखकर बच्चे गलत रास्ते पर जा सकते हैं। चढ़ावे की समुचित व्यवस्था करनी होगी। रात को आभा से बात हुई तो उसे भी चिंता हुई। मैंने कहा- बच्चों को किसी भी दिन घर पर मत रुकने दो। उन्हें अपने काम पर रोज भेजो। चढ़ावे की भी कोई और व्यवस्था करो।

व्यवस्था में एक बार फिर परिवर्तन देखा गया। दानपात्र रख दिया गया था जिस पर डिजीटल ताला था जो बिना पासवर्ड के नहीं खुल सकता था। पासवर्ड आभा के अतिरिक्त किसी को मालूम नहीं था। बेटे को यह नई व्यवस्था अच्छी नहीं लगी, पर वह कुछ बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।

दोपहर के समय कुछ पुलिस वाले धड़धड़ाते द्वार तक आ गए। आभा दौड़ती हुई बाहर आई। मालूम चला कि कोई नेता दर्शनों के लिए आया है। सिपाही उसे सीधा कमरे में लाना चाहते थे, पर मैंने ही सहज भाव से कह दिया- 'मेरे दरबार में सभी बराबर हैं, उन्हें कहो पंक्ति में आएँ।' जानता हूँ सिपाही को यह अच्छा नहीं लगा था, नेता भी किसी प्रकार का विवाद खड़ा

करने के पक्ष में नहीं था। उसने अपने किसी आदमी को पंक्ति में लगा दिया था। सिपाही भक्तों को जल्दी-जल्दी दर्शन करने के लिए प्रेरित कर रहा था।

नेता ने लगभग गिड़गिड़ाते हुए कहा था- 'स्वामी जी, यह चुनाव जीतना मेरे लिए बहुत जरूरी है। हार गया तो यहीं करियर खत्म हो जाएगा। मुझे आशीर्वाद दो, मेरे लिए प्रार्थना करें कि मैं चुनाव जीत जाऊँ।'

मैंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। ऐसे अवसरों पर मौन रहना कितना जरूरी है, मैं समझ गया था। नेता आशीर्वाद लेकर चला गया था।

आय को देखते हुए आभा को सलाह दी गई थी कि न्यास बनाना पड़ेगा, पर वह इसके पक्ष में नहीं थी। अन्य विकल्प तलाशे जा रहे थे। आभा ने एक दिन, रात को बताया था कि उसने किसी सी. ए. से भी बात की है।

नेता जी के चुनाव जीतते ही स्थिति एकदम बदल गई। वे अपने सैंकड़ों समर्थकों के साथ दर्शनों के लिए उपस्थित हुए। आशीर्वाद लिया। आभा से उन्होंने कहा- मैं जल्दी ही आश्रम के लिए जमीन दिलाने की कोशिश करता हूँ। यह जगह बहुत छोटी है। फिर उन्होंने एक बैग आभा की ओर करते हुए कहा- 'यह ग्यारह लाख की तुच्छ भेंट स्वीकार करें।'

उसके बाद विभिन्न नेताओं, मंत्रियों, सरकारी अधिकारियों दुखी-परेशान लोगों का ताँता लग गया। आश्रम के लिए जमीन की व्यवस्था भी हो गई। मंदिर और भवन-निर्माण का कार्य भी प्रारंभ हो गया।

आँखें बंद कर, मोतियों की माला फेरते हुए मैंने हिसाब लगाया- हम लाखों में नहीं, करोड़ों में हो गए हैं।

अभी आसन पर बैठ आँखें बंद करने ही लगा था कि पंडित जी आ गए। उनका चेहरा तमतमाया हुआ था। उन्होंने न तो प्रणाम किया और न ही माथे पर टीका लगाया। वे सीधे दूसरे कमरे में चले गए। आभा से उन्होंने गुस्से से कहा- 'ऐसा अब नहीं चलेगा।'

आभा ने शांत स्वर में कहा था- 'पंडित जी, क्या नहीं चलेगा?'

'आज तुम जो हो, जिस जगह पर हो, मेरे कारण हो, और मेरी ही घोर उपेक्षा हो रही है।'

'पंडित जी, आप गलत कह रहे हैं। आपकी उपेक्षा हम भला कैसे कर सकते हैं....'

वह क्रोध में बोला- 'मैं बाहर जाकर सभी को सच बता दूँगा.... पोल खोल दूँगा।'

आभा का स्वर अब भी शांत था- 'आप सोचते हैं लोग आपकी बात पर विश्वास कर लेंगे.... मेरे एक इशारे पर इतनी धुनाई करेंगे कि उठने के काबिल भी नहीं रहोगे।'

मैं जानना चाहता था कि बात क्या है। उठकर द्वार तक आ जाता हूँ।

आभा ने कहा- पंडित जी, आपने ही कहा था पैर में पद्म कहने के पाँच सौ लूँगा.... आपको तुरंत दे दिए थे। समय-समय पर आपको दक्षिणा मिल ही रही है। फिर क्रोध और उत्तेजना क्यों?

'मुझे हिस्सा चाहिए।'

आभा ने मुस्कराते हुए कहा- आश्रम में भव्य मंदिर का निर्माण हो रहा है, वहाँ आपको मुख्य पुजारी नियुक्त कर लेंगे। बस, अब तो खुश।'

मैं वापस दीवान पर आकर बैठ गया था। मेरी आँखें बंद थी। मोतियों की माला का एक-एक मनका मेरे अंगूठे और तर्जनी का दबाव सहते हुए नीचे की ओर जा रहा था।

– 6/15, अशोक नगर, नई दिल्ली-110018

❑❑❑

सिमटती दूरियाँ

योगेश चंद्र शर्मा

ट्रेन में भीड़ अवश्य थी, मगर इतनी नहीं कि कोशिश करने पर भी बैठने के लिए स्थान न मिले। डिब्बे में चढ़कर मैंने एक नजर इधर-उधर डाली। सामने की एक बर्थ पर बेहद गंदे किस्म के चार-पाँच स्त्री पुरुष और दो-तीन बच्चे किसी तरह गड्डमड्ड बैठे हुए थे। स्पष्ट ही वहाँ बैठने की कोशिश करना बेकार था। वैसे भी उस गंदे और फटेहाल परिवार के पास बैठने की इच्छा नहीं हो रही थी। उसके ठीक सामने, दूसरी बर्थ पर संपन्न दिखलाई देने वाला एक युगल अपने दो वर्षीय बालक के साथ बैठा था। बालक बर्थ के खाली स्थान पर इधर-उधर लोटपोट रहा था और दोनों ओर बैठे उसके माता-पिता उसे अपने-अपने पास आने के लिए उकसा रहे थे। एक कहता- पिंटू बेटे! हमारे पास आओ। हम तुम्हें टॉफी देंगे।' दूसरा कहता- 'हमारे पास आओ बेटे! हम तुम्हें बिस्किट देंगे।' इसी तरह उन्होंने इस बर्थ को अपना ड्रॉइंगरूम बनाया हुआ था।

मैंने यहीं पर बैठने की इच्छा व्यक्त करते हुए बच्चे के पिता से पूछा- 'आपको एतराज न हो तो मैं यहाँ बैठ जाऊँ?'

यह बात सुनकर उन्होंने मेरी ओर इस तरह देखा, जैसे मैंने उन्हें कोई आठवें आश्चर्य की बात बतला दी हो। बोले- 'यहाँ जगह ही कहाँ है? देख नहीं रहे हैं? साथ में बच्चा है। उसे खेलने के लिए भी तो कुछ जगह चाहिए।'

सुनकर बहुत बुरा लगा। द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में बैठकर भी उनकी इस सुविधाभोगी प्रवृत्ति पर मुझे आश्चर्य होने लगा। मगर इस आश्चर्य की स्थिति से मुझे उबारा सामने की बर्थ पर लदेफदे गंदे ओर फटेहाल परिवार ने ही। एक बूढ़े-से व्यक्ति ने अपने एक किशोर हुए से बच्चे को खड़े होने का आदेश देते

हुए मुझसे कहा- 'इधर बैठ जाइए बाबूजी! सफर ही तो करना है। हमें कौन-सा यह डिब्बा अपने साथ ले जाना है। बच्चा है, खड़ा रहेगा।'

बूढ़े व्यक्ति ने सहज भाव से ही अपनी बात कही थी, मगर दूसरी ओर बैठे रहने वाले युगल ने इसे अपने लिए शायद अपमानजनक समझा और इसीलिए उन दोनों ने लगभग कच्चा खा जाने वाली नजरों से उस बूढ़े की ओर देखा। मगर कहा कुछ नहीं। मैं पल भर के लिए पशोपेश की स्थिति में रहा कि उन गंदे और फटेहाल व्यक्तियों के पास बैठूँ या नहीं? कहीं उनके कपड़ों की गंदगी मेरे नए सिले और चमकते हुए सूट को गंदा तो नहीं कर देगी? मगर अब वहाँ न बैठने का अर्थ स्पष्ट ही उस बूढ़े व्यक्ति की भावना का अपमान होता। इसलिए मैं चुपचाप उन लोगों के पास जाकर अपने को भरसक उनके वस्त्रों से बचाने का प्रयत्न करते हुए बैठ गया।

संपन्न परिवार के बच्चे की आयु के बराबर का ही एक बच्चा इस गंदे और फटेहाल परिवार में भी था। वह नंगधड़ंग अपनी मां की गोद में सो रहा था। थोड़ी देर बाद ही उसकी आँखें खुलीं तो रोने लगा। माँ ने उसे अपने सूखे स्तनों से लगा लिया। मगर बच्चे को उनमें शायद कोई आकर्षण नजर नहीं आया। वह बदस्तूर रोता रहा। माँ उसे दुलराने लगी। कभी-कभी बीच में डाँट भी देती। माँ के संबोधन से पता चला, बच्चे का नाम मंगलू है, शायद मंगलवार को जन्म लेने के कारण।

मंगलू के रोने की आवाज को सुनकर पिंटू ने भी उधर देखा। थोड़ी देर तक वह उस नंगधड़ंग बच्चे की ओर देखता रहा, फिर अस्पष्ट से स्वरों में उसने अपनी कुछ भावना व्यक्त की। थोड़ा मुस्कुराया भी और बर्थ से नीचे उतरने का प्रयत्न करने लगा। मगर उसकी माँ ने उसे वैसा करने से रोक दिया। मंगलू का भी ध्यान अब पिंटू की तरफ गया तो उसका रोना थम गया। वह भी अपलक दृष्टि से, सजे-धजे अपने समवयस्क को देखता रहा। उसके चेहरे पर प्रसन्नता के स्थान पर उत्सुकता ही अधिक थी।

पिंटू और मंगलू का यह दृष्टि-मिलन पिंटू के माता-पिता को रुचिकर नहीं हो सकता था। हुआ भी नहीं। उन्होंने पिंटू का ध्यान उधर से हटाने के लिए अपने बक्स से एक खिलौना निकालकर उसे दे दिया। पिंटू का ध्यान मंगलू की ओर से हटकर अपने खिलौने की ओर लग गया।

271 CHD / 2018—13A

मंगलू ने पिंटू के पास वह खूबसूरत खिलौना देखा तो अपनी माँ की गोद से उठ खड़ा हुआ और किसी तरह खिसक कर बर्थ से नीचे आ गया। मंगलू की माँ ने पहले तो इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया, मगर जब मंगलू पिंटू की तरफ आगे बढ़ने लगा तो उसने उसे रोक दिया। मंगलू आगे बढ़ने के लिए जिद करने लगा तो उसने मंगलू को कसकर एक चपत भी लगा दी। मंगलू रो उठा। अब भी उसकी निगाहें पिंटू के खिलौने की तरफ थी।

मंगलू के रोने की आवाज सुनकर पिंटू का ध्यान पुनः उस ओर चला गया। उसने मंगलू की भावना को शायद समझा और अपना खिलौना उसकी ओर पटक दिया। खिलौना मंगलू से थोड़ी दूर दोनों बर्थों के बीच में पड़ा हुआ था। मंगलू तेजी से खिलौने की तरफ लपका तो पिंटू के पापा ने उसे डाँट दिया- 'ए छोकरे, खिलौने को गंदा मत करना।' फिर खिलौने को जल्दी से उठाते हुए वे मंगलू की माँ पर बरस पड़े- 'अपने बच्चे को संभालकर अपने पास नहीं रख सकती? उसे दूर रख। उधर अपने पास ही।'

मंगलू की माँ ने क्षणभर के लिए मेरी ओर इस दृष्टि से देखा कि मैं शायद उन लोगों का समर्थन करूँ। मगर मैंने अपना दामन साफ बचाकर झगड़े से दूर ही रहना ठीक समझा। मेरी ओर से निराश होकर उसने अपने मंगलू को तत्काल अपनी गोद में उठाते हुए कहा- 'पकड़े हुए तो हूँ बाबूजी! फिर भी बच्चा है, मानता ही नहीं।'

पिंटू की माँ ने भी अपने पिंटू को अब गोद में बैठा लिया और अपने पति को उलाहना देने लगी- 'मैंने पहले ही कहा था कि फर्स्ट क्लास का रिजर्वेशन ले लो।'

पिंटू के पिता ने तत्काल उत्तर दिया- 'फर्स्ट क्लास के लिए मैंने कम कोशिश की थी क्या? मगर तुम्हारा प्रोग्राम ही इतनी देर से बना कि तब तक सब सीटें बुक हो चुकी थीं।' इसके बाद उन्होंने सामने वाली बर्थ पर सरसरी तौर से दृष्टि डालते हुए कहा-'इस देश में पॉपुलेशन इस कदर बढ़ रही है कि कहीं भी जगह मिलना आसान नहीं रहा।'

उनकी जनसंख्या से संबंधित टिप्पणी का अर्थ मैं नहीं समझ पाया। फर्स्ट क्लास में जगह तो उन्हीं के वर्ग के लोगों ने घेरी थी, मंगलू के वर्ग ने नहीं। हाँ, मंगलू की जगह उन लोगों ने अवश्य घेरी हुई थी। जब मैं ही कुछ नहीं समझा

271 CHD / 2018—13B

तो मंगलू के माता-पिता के तो कुछ समझने का प्रश्न ही नहीं उठता। सो वे चुप रहे। मैं तो चुप था ही।

पिंटू अपनी माँ की गोद में बैठा-बैठा थक गया तो थोड़ी देर बाद वह रोने लगा। खिलौना भी उसके रोने को बंद नहीं कर सका। तब पिंटू के पिता उठे और अपने सूटकेस में से बिस्किटों का एक बड़ा-सा डिब्बा निकाला। उन्होंने दो बिस्किट निकाल कर पिंटू के हाथ में रखते हुए और उसे दुलराते हुए कहा- 'अब हमारा पिंटू बेटा बिस्किट खाएगा।' इसके बाद उन्हें कुछ ध्यान आया तो एक और बिस्किट निकालकर मंगलू की तरफ फेंकते हुए कहा- 'ले तू भी खा ले।'

मंगलू ने बिस्किट उठा तो लिया, मगर खाया नहीं। वह कभी बिस्किट की ओर देखता और कभी पिंटू के पिता की तरफ। इसके बाद उसने बिस्किट को खिड़की की तरफ फेंक दिया और पिंटू के पिता की तरफ से मुँह मोड़कर बैठ गया। मंगलू की यह हरकत मुझे अच्छी लगी। सोचा, बच्चे में आत्मसम्मान है। मगर मंगलू की हरकत ने पिंटू के पिता के मुँह पर जैसे स्याही पोत दी। बड़े क्रोधित हुए। बोले- 'अबे, बिस्किट का कभी स्वाद भी चखा है, जो इतने महंगे बिस्किट को इस तरह फेंक दिया। सुअर कहीं के।' मंगलू की हरकत उसकी माँ को भी पसंद नहीं आई थी और अब पिंटू के पिता की बात सुनकर उसका मंगलू के प्रति क्रोध काफी अधिक बढ़ गया। उसने मंगलू के लगातार कई चपत जड़ दिए। वह रोने लगा। परिवार के जिस बूढ़े व्यक्ति ने मुझे स्थान दिया था, उसी ने किसी तरह मंगलू की माँ को रोका और पिंटू के पिता से बोला- 'आप भी बाबूजी, बच्चों की बातों पर बेकार गुस्सा होते हैं। आप तो पढ़े-लिखे आदमी हैं....।

अपनी पढ़ाई-लिखाई की बात याद करके, पिंटू के पिता भड़क उठे- 'हां, हां ठीक है। उपदेश देने की जरूरत नहीं है। तुम लोगों के साथ अहसान करना भी एक गुनाह है। इडियट....!'

बूढ़े व्यक्ति ने 'इडियट' शब्द का अर्थ तो शायद नहीं समझा, मगर इतना अनुमान उसने अवश्य लगा लिया कि उसे कुछ बुरा कहा जा रहा है। सो उसने भी हल्के से अपनी आँखें तरेरते हुए कहा- "गाली क्यों दें रहे हैं बाबूजी? हमने किसी का क्या बिगाड़ा है।" बूढ़े के इन शब्दों में जो चुनौती थी, उसने परिवार

के सभी सदस्यों को सावधान कर दिया और सब पिंटू के पिता की तरफ क्रोधित दृष्टि से देखने लगे। पिंटू के पिता ने खतरे को भांप लिया। सो, वह सकपका गया। पिंटू की माँ ने भी उसे शांत करते हुए कहा- 'क्यों बेकार झगड़ा बढ़ा रहे हैं। जो हो गया, सो हो गया।'

मैं अब भी खामोश ही था। हाँ, यह अवश्य सोचने लगा था कि अगर दोनों वर्गों में मारपीट होने लगे तो मुझे किस का साथ देना है? एक तरफ संख्या की अधिकता थी तो दूसरी तरफ सामर्थ्य की। एक का विरोध मेरे शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता था तो दूसरे का विरोध मुझे जेल खाने का रास्ता दिखा सकता था। मैं अपने स्वार्थ को टटोल रहा था।

पिंटू के पिता परिस्थिति की विवशता को देखते हुए खामोश हो गए और झगड़ा टल गया। इससे मैंने भी कुछ राहत महसूस की। मंगलू के परिवार के सभी सदस्यों की दृष्टि घूमकर थोड़ी देर के लिए मेरे ऊपर केंद्रित हो गई। वे शायद मेरी सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगा रहे थे। मगर मैं इस तरह निर्विकार बैठा रहा, जैसे मैंने कुछ देखा या सुना ही न हो।

मंगलू की माँ ने अपने रोते हुए बच्चे को अपनी गोद में समेट लिया। थोड़ी ही देर में उसकी आँखें लग गई। पिंटू भी अब तक अपनी माँ की गोद में सो चुका था। पिंटू की माँ ने खाली बर्थ पर तौलिया बिछाकर उसे लिटा दिया। कुछ ही देर बाद दोनों बच्चों के परिवारों के सभी सदस्य ऊंघने लगे। मैं जिस स्थिति में बैठा था, उसमें ऊंघने का प्रश्न ही नहीं था। वैसे भी सफर में मुझे नींद कम ही आती है। सो, मैं अपने बैग में से एक उपन्यास निकालकर उसमें खो गया।

वक्त गुजरता गया, ट्रेन भागती रही और मैं उपन्यास के पृष्ठ पलटता गया। निगाह उठी तो दोनों बच्चों को जागते हुए पाया। वे दोनों ही एक-दूसरे की तरफ देखकर मुस्कुरा रहे थे। पिंटू ने अपने पास में रखे खिलौने को मंगलू की तरफ नीचे पटक दिया। मंगलू अपनी मां की गोद से खिसक कर बर्थ के नीचे आ गया और खिलौने से खेलने लगा। पिंटू थोड़ी देर चुपचाप मंगलू को देखता रहा। फिर वह भी अपने पैरों को बर्थ से लटकाकर नीचे आ गया।

अब दोनों बच्चे खेल रहे थे। एक बेहद सजाधजा और संपन्न परिवार का गौर वर्ण तथा दूसरा एकदम नंगधड़ंग, दीनहीन, श्याम वर्ण। मगर उन दोनों में कहीं कोई वर्ग-भेद या पारस्परिक घृणा के भाव नजर नहीं आ रहे थे। उनमें से

एक खिलौने को दूर उछालता और दूसरा उसे जाकर ले आता। फिर दूसरा उसे उछालता और पहला आगे बढ़कर ले आता। वर्ग-भेद की मानसिकता वाले उनके माता-पिता गहरी नींद में सो रहे थे। उन दोनों के मध्य मैं सभी पिछली बातों को भूलकर उन बच्चों को मंत्रमुग्ध देखे जा रहा था। अब मुझे अपनी बर्थ पर बैठे लोग भी उतने गंदे और फटेहाल नहीं लग रहे थे। बर्थ पर मैं अब अधिक आराम से बैठा हुआ था।

– 10/611, कावेरी पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राजस्थान)

❑❑❑

कला

महेंद्र भटनागर

जो सुदूर स्वप्न-राज्य की विहारिका
व्योम पार देश की रही निहारिका
कर्म-मार्ग हीन, स्वर्ण-विश्व साधिका
द्वंद्व से विमुख, सदा नवीन बाधिका
हेय व्यर्थ युग-उपेक्षिता अमर कला!

धूल से विलग विचार वास्तविक नहीं
झूठ शब्द-जाल चित्र-मात्र है वहीं
जो मनुष्य भाव-राग से जुड़ा न हो
दर्द-हास तार से सहज बुना न हो
कब समाज में टिका? कहाँ अरे चला?

व्यक्त सिर्फ आज के सवाल चाहिए
तम नहीं, प्रभात लाल-लाल चाहिए
व्यक्ति की करुण कराह है उतारनी
आग जो दबी उसे पुनः उभारनी
सब कुरीतियाँ मिटें, प्रहार जलजला!

कला

मराठी अनुवाद : डॉ. गजानन चव्हाण

दूरच्या स्वप्न-राज्याची जी विहारिका
नभापार असते देशाची निहारिका
कर्म-मार्ग हीन, स्वर्ण-विश्व साधिका
द्वंद्व विमुख, सदा नवीन बाधिका
हेय युग-उपेक्षिता अमर कला!

मृद्विलग विचारांचे कांही नसते खरे
असत्य शब्द-जाल चित्र-मात्र ते
भाव-रागयुक्त जो मनुष्य नाही
व्यथा-हास्य तारेत जो गुंतला नाही
समाजात कुंठ टिकला? कुंठ निधून गेला?

अद्यतन प्रश्न व्यक्त झाला पाहिजे
अंध:कार नाही प्रभात लाल पाहिजे
करुण विव्हळणं थांबल पाहिजे
आग दबलेली विझली पाहिजे
थांबावेत जुने रिवाज, प्रहार ज्वाला!

भावना निराश ना मृतक समान हो
अश्रु औ' रुदन नहीं, न मोह गान हो,
आज जीर्ण देह तोड़ता मजूर है
पर, समानता समय बहुत न दूर है,
कवि मुखर करो! य' किसलिए कला भला?

– 110, बलवंत नगर, गांधी रोड, ग्वालियर-474002 (म. प्र.)

❑❑❑

नको दैन्य, नैराश्य मृत्युसम ते
अश्रू नको, नको रुदन मोह गान ते
जीर्ण दाह आटवतो मजूर इथं आहे
समतेचे युग अजून फार दूर आहे
कवी! हो मुखर, यास्तव तर कला!

– 3, नताशा रोड, औंध, पुणे-411007 (महाराष्ट्र)

❑❑❑

बर्षा

यज्ञदत्त सामंतराय

बर्षा आसे
बर्षा जाए
एमिति केते थर
आसिछि
आऊ जाइछि मध्य
एमितिकि जाऊथिब बि।
चातक पक्षी परि
समस्ते अपेक्षा करिथिले
बर्षाकु।
बर्षा 'आसिबि-आसिबि'
बोलि कहि आसिलानि
ड़ेरिकला
हेले, से आसिबा आगरु
आणिदेला झड़ ओ तोफान
आऊ सूनामि मध्य।
देखु-देखु सबुकिछि
ओलट पालट होइगला
दु:ख आऊ दुर्दशारे
लक्ष-लक्ष मणिष चालिगले

भाषा ISSN 0523-1418

वर्षा

हिंदी अनुवाद: निबेदिता पंडा

वर्षा आती है
वर्षा जाती है
ऐसे भी कितनी बार
आई है;
और गई भी है,
ऐसी गई होगी भी।
चातक पंछी की तरह
सब इंतजार कर रहे थे
वर्षा का।
वर्षा 'आऊँगी, आऊँगी'
कहकर भी नहीं आई
देर कर दी,
लेकिन उसके
आने से पहले
आई आंधी और तूफान
और सूनामी भी।
देखते ही सब कुछ
इधर-उधर हो गया
दुख और दर्द में

मरण मुहँकु
क्षणिक भितरे
सबु किछि शेष करिदेला।
हे बर्षा, तुमकु मोर अनुरोध
एणीकि आसिलाबेले
दु:ख, दुर्दशा बदलरे
आणिब
सुख, शांति, स्नेह, प्रेम एबं
मैत्रीर पबित्र संदेश।

– कविसूर्य नगर, गंजाम, ओडिशा-761104

❑❑❑

मौत की ओर
चल पड़े लाखों इंसान
कुछ पल में
सब कुछ तबाह कर दिया।
हे वर्षा, तुमको मेरा अनुरोध,
अब तुम आने के समय
दुख और दर्द के बदले
ले आना
सुख, शांति, स्नेह, प्रेम और
मैत्री का पावन संदेश।।

– द्वारा सुबास चंद्र पंडा, पाँचवीं लाइन, तुलसी नगर (रेड़ी गैरेज के सामने)
ब्रह्मपुर, गंजाम-760001, ओडिशा

❑❑❑

संत्रासर त्रासेरे

अभिजित पायेङ्

एटि ग्रेनेडेरे
खंतेकेते बारासित
हाजार-हाजार जनजीवन।
अनाथ बिधवा
कत शिशु नरनारी
सूचना आतंक आर्तनादर।
जीवन आरु जीयाइ
थकार तारनात
टक टककै कपि उठे
तजबजीया उठन बुकु।
सिहतबोर संत्रासेरे
आचलते कि आनिब खोजे?
निधन यज्ञरे
एक परिवर्तन....
निका सुदृढ़ मानवता!!!
बिकृत एइ मानसिकता।
लुटियाइ देखुउवा इतिहासर पाठ
संत्रास ओलमि आछे
उलंग पंगु प्रतिच्छवि।

– द्वारा डॉ. जाकिर हुसैन, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कन्या महाविद्यालय, गीता नगर, गुवाहाटी-781021

❑❑❑

संत्रास

हिंदी अनुवादः डॉ. जाकिर हुसैन

एक ग्रेनेड से
मुहूर्त में धारशायी
हजार-हजार जन-जीवन।
अनाथ विधवा
अनेक शिशु, नर-नारी
सूचना आतंक, आर्तनाद की।
जीवन और जिंदा
रहने की यंत्रणा से
अनायास ही काँप उठती हैं
कोमल यौवन युक्त छाती।
वे संत्रास से
क्या परिवर्तन चाहते हैं?
मृत्यु-यज्ञ से
एक परिवर्तन स्वच्छ सुदृढ़ मानवता!!!
विकृत यह मानसिकता
पुनरभाष इतिहास के पाठ में
संत्रास से लटका हुआ है
उलंग नंगा, प्रतिछवि।

– सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, कन्या महाविद्यालय, गीता नगर, गुवाहाटी-781021

❑❑❑

सुबह-सवेरे

ए. कीर्तिवर्धन

चाहो जीवन में कुछ बनना
सुबह-सवेरे जल्दी उठना।
मात-पिता को कर प्रणाम
फिर करना तुम नियमित काम।
पेट साफ फिर कुल्ला-मंजन
तब करना स्नान और ध्यान।
प्रात:काल का समय स्वर्णिम
पढ़ना खूब लगाकर ध्यान।

सुबह-सवेरे कभी ध्यान से
चिड़ियों की तुम बातें सुनना।
हँसती-गातीं, गीत सुनातीं
उनसे घर-आंगन में मिलना।
एक बरतन पानी का रखना,
पास में थोड़ा दाना रखना।
चिड़िया आती और नहाती,
दाना खाना उनका तकना।

– विद्यालक्ष्मी निकेतन, 53, महालक्ष्मी एंक्लेव, जानसठ रोड, मुजफ्फर नगर-251001 (उ. प्र.)

❑❑❑

बेलगिन नसुकिनल्लि

कन्नड अनुवाद : डॉ. सुनील कुमार परीट

जीवनदल्लि एनादरू साधिसबेकु
बेलगिन नसुकिनल्लि बेग एलबेकु।
तंदे तायिगे नमस्करिसि
नंतर दैनंदिन कार्य माडबेकु।।
होट्टे स्वच्छगोलिसि हल्लु उज्जि
आग स्नान ध्यान माडबेकु।
प्रात:कालद होत्तु स्वर्णिम होत्तु
एकाग्र मनस्सिनिंद तुंबा ओदबेकु।।

बेलगिन नसुकिनल्लि स्वल्प गमनविट्टु
हक्किगल हाडन्नु नीनु केलबेकु।
कुणियुत्ता नलियुत्ता हाडुत्ता
अवुगलन्नु मने अंगलदि नोडबेकु।।
ओंदु पात्रेयल्लि नीरन्नु हाकि
पक्कदलि स्वल्प कालु इडबेकु।
हक्किगलु बंदु स्नान माडि
अवु कालु तिन्नुवुदन्नु नोडबेकु।।

– द्वारा मारुति पाटिल, हाउस न.-56, मार्कंडेय नगर, मार्किट यार्ड, नेहरू नगर पोस्ट ऑफिस, बेलगाँव-590010 (कर्नाटक)

❑❑❑

271 CHD / 2018—14A

यह ज़िहाद नहीं है

तारिक असलम 'तस्नीम'

यह ज़िहाद नहीं है....!
कहता है जब कोई बार-बार
बस.... कुछ पल और इंतजार करो
गुजरात के बदले के लिए
अल्लाह की रजा के लिए
मौत का खौफ महसूस करेंगे अब
ये लोग
रोक सकते हो तो रोक लो
इस हमले को
नहीं तो कबूल करो कलमे को
भला! ये अल्फाज़ किसके कानों
को भले लगेंगे?/ जो ये
अल्फाज सुनेंगे?
जरा आप भी सोचिए
किसी एक व्यक्ति की गलती
के लिए/ पूरी कौम किस तरह
मुजरिम करार दी जा सकती है....
जबकि मेरी नजर में
मेरे अगल-बगल के घर में
एक नहीं अनगिनत

271 CHD / 2018—14B

गैर मुस्लिम बसते हैं/ बरसों बरस
से वे हमारे साथ रहते हैं
ईद / होली / दिवाली / मुहर्रम सब
साथ-साथ मनाते हैं।
ये कौन हैं फिर हम सब के दिल
के दरीचे में छिपे हैं?
हम सब / जिसे नहीं जानते
उसे हम नहीं पहचानते
सदियों से किया है / जिन्होंने
रक्तरंजित
एक नई साजिश के तहत / फिर
तमाम रिश्ते करना चाहता है
नए सिरे से परिभाषित
सबके दिलों में पनपतीं
आशंकाओं की बेलें
जाने अनजाने मन में ख्याल-सा
गुजरे
उनकी तरह हम भी खून की होली
क्यों नहीं खेलें?
जबकि / हम सब न जाने कितनी
बार
पढ़ चुके हैं धर्म-ग्रंथों में
इंसानियत का पाठ।
कोई मजहब नहीं देता
किसी को कत्ले आम का अधिकार
ये बातें बिल्कुल हैं निराधार
फिर ये कौन हैं तैयार
खंजर करने को जिगर के

आरपार?
बहेगा किसी न किसी
इंसान का ही खून
यह कैसा जुनून?
ये कैसी शहादत
कि मासूम बच्चों को
पहनाई जा रही गले में कारतूस
की मालाएँ?
जिनकी उम्र इतनी कि बस
उन्हें गोद में खिलाएँ
हम खोलने पर उतारू हैं
उनके दिलो-दिमाग में नफरत की
पाठशालाएँ
सच तो यह है कि
कुरआनी आयतें हों या कोई नबी
या पैगंबर / किसी ने नहीं दिया
कभी ऐसा कोई आदेश
अपने अनुयायियों को / कि
इंसानी लाशों से पाट दो / गलियाँ,
सड़कें, झील, तालाब और नदी / समंदर
फिर किसके कहने पर सभी
बाँटते-फिरते यह संदेश?
मैं पूछता हूँ....
क्या वाकई तुम जानते हो
जिहाद के सही मायने?
बनते हो सयाने
नहीं, तुम आजतक
इस हकीकत से अंजान हो

वरना / तुम अपनी
माँ / बहन / बहू / बेटियों से नहीं
करते
दोयम दर्जे का व्यवहार
जिन्हें तुम नहीं करते
अपनी जूती से बढ़कर
किसी और श्रेणी में शुमार
तुम्हारी दुआ होनी चाहिए....
ऐ! मेरे खुदा!
तू हम सबको
अमनो सकून का जरिया बना।
हमने तेरा बताया हुआ
सही रास्ता है चुना
जिसके लिए तूने लोक-परलोक
की खातिर अनेक तरह के
पुरस्कारों की कर रखी घोषणाएँ
हमारी कानों ने ऐसी प्रत्येक
कुरआनी आयत को है सुना।
हमें नहीं करना पूरा विश्व के
इस्लामीकरण का सपना!
यह मेरा नहीं!
तुम जिस आसमानी किताब
को सीने से लगा
खाते हो रोज कसमें
उसका यह है कहना
किसी के दिल में बसने के लिए
जरूरी है कि
उसकी प्रत्येक जायज बातें

सुनी जाएँ
जमीं से आसमान तक
एक ही पगडंडी चुनी जाए
अतीत के खंडहर
नजरअंदाज किए जाएँ
शुरू हो रिश्तों का नया सफर
करें हम खुले आसमां के नीचे
नए मुहब्बतनामे पर दस्तखत
जहाँ चांदनी की चादर बिछी हो
चांद नहीं होता हो रूखसत
ऐसा हो हमारे
ख्वाबों का शहर
जहाँ उल्फतो चाहत की
दहलीज पर
झिलमिल सितारों से सजा-सँवरा
हो हर इक घर
ऐसा हो हमारे ख्वाबों का शहर....!

– हारून नगर कॉलोनी, प्लॉट-6, सेक्टर-2, रोड नंबर-3, फुलवारी शरीफ, पटना-801505

❑❑❑

बोलो न पापा

भगवान वैद्य 'प्रखर'

आप किस भाषा में बतियाते थे अपनी चिड़िया से,
बोलो न पापा!

आपकी चिड़िया अब भी रोज आती है
दहलीज पर फुदकती है
रोशनदानों से झाँकती है
मुंडेर पर चढ़ जाती है
गाती है, नाचती है, शोर मचाती है
उससे किस भाषा में बात करें,
बोलो न पापा!

आपके जाने के बाद
कुछ दिन रहकर
रिश्तेदार लौट गए
पड़ोसियों ने पूछताछ बंद कर दी
मित्र, स्नेहीजनों ने खोज-खबर लेना छोड़ दिया
वर्षों से पता पूछ-पूछकर आने वाली
पत्र-पत्रिकाओं ने भी मुँह मोड़ लिया
सिर-कटे पखेरू की तरह

आपकी किताबें जरूर फड़फड़ाती रहीं कुछ दिन
अलबत्ता, उन पर अब धूल जम चुकी है
पर, पीले-नीले पंखोंवाली वह चिड़िया अब भी आती है
हर रोज, बिना नागा
कभी अकेली
तो कभी अपना पूरा कुनबा लेकर
जैसे किसी अपने की चाहत में
लोग मोर्चा लेकर पहुँच जाते हैं थाने में

उससे हम क्या कहें, कैसे कहें, बोलो न पापा!

सुबह-सुबह धूप में बैठकर आप
उसे चावल चुगाते
अखबार, अपनी कविताएँ पढ़कर सुनाते
तब वह आपके सामने काकभुशुंडि बन जाती
कभी-कभी वह अपना भी सुख-दुख आपको सुनाती
'चीं-चीं, चूं-चूं.... चीं....चीं, चूं....चूं....'
आप देर तक सुनते रहते
बागबानी करते तब वह आपको ऐसे निहारती
जैसे उसकी अपनी बगिया में काम करने वाले माली हों आप!

आपके जाने बाद
वह एकेक पौधे से
कई-कई बार पूछ चुकी है आपके बारे में।

उसे किस प्रकार बतलाएँ
बोलो न पापा!

ढीठ कहीं की!
एक दिन बेधड़क घुस आई घर में
और करती रही तफ्तीश फुदक-फुदककर
कोई संदूक, कोई अलमारी नहीं छोड़ी
जिसपर बैठकर आहट न ली हो उसने
सिर पटक-पटककर
पूछती रही आइने से आपका पता
फिर हताश हो बैठ गई
आपके लिखने की मेज पर
और करती रही पूछताछ आपकी कलम से
कि आखिरी बार कब देखा था उसने आपको!

उसे हम कैसे समझाएँ
बोलो न पापा!

चावल हम भी देते हैं उसे
पर वह एक दाना नहीं चुगती
चीखते-चुहचुहाते सूख जाता है गला उसका
पर, पेड़ पर टंगे पानी के मटके की ओर
आँख उठाकर भी नहीं देखती
बस,
द्वार, आंगन, मुंडेर, रौशनदानों में बैठकर चुहचुहाती रहती है
और थककर लौट जाती है
अगले दिन फिर आने के लिए।

उसे कैसे बताएँ कि
आप चले गए हैं, अब कभी न आने के लिए।

आप किस भाषा में बतियाते थे अपनी चिड़िया से,
बोलो न पापा!

– 30, गुरुछाया कॉलोनी, साईनगर, अमरावती-444607

❑❑❑

वह फूटा था

दिविक रमेश

दिमाग के किसी उर्वर भाग में
वह फूटा था
ठीक जैसे फूटता है दाना
जमीन को फोड़कर।

ठीक वैसा ही स्वागत किया था मैंने
उस नवजात का
जैसे करता है किसान
निहारता
बढ़ता पहला कदम दानों का
फसलों की ओर।

उसी तरह बढ़ाने लगा था पींगे
मेरा मन भी
जैसे बढ़ता है किसान सहज ही।

अचानक हुआ था शंकित
शायद होता हो जैसे किसान भी।
कहीं
बढ़ तो नहीं रहा था मैं आत्महत्या की ओर?

मैं डरा हुआ था।
और आप हैं कि न डरने का नाटक करते हुए
बंधा रहे थे मेरा साहस।

समय दिखा रहा था अंगूठा।
शायद सिखा रहा हो अंगूठा दिखाने की कला।
पर कब समझा!

– बी-295, सेक्टर-20, नोएडा-201301

❑❑❑

ग़ज़ल

कुलदीप सलिल

दिल की सयाह राहों से ऐसे गुज़र गया
मेरे सवेरे शाम सब रोशन वो कर गया

आहट हुई, खुशबू उड़ी, उजला लिबास था
आवाज दे के देखा तो जाने किधर गया

वीरानियों में गूंजती थी खोखली हँसी
खुशहाल एक दोस्त के मैं आज घर गया

परछाइयों के आगे-पीछे भागने लगा
दुनिया लगी सँवरने तो इनसां बिखर गया

राहे-हयात में मिला इक बार ही मगर
मंज़िल का नक़्शा आँखों में रोशन वो कर गया

फिर आज कत्लगाह में है माहौल जश्न का
आशिक वतन का लगता है फिर कोई मर गया

मेरी-तुम्हारी बात क्या ये फितना इश्क का
जिसके भी घर गया बरबाद कर गया

तेरा तो इक-इक लफ्ज़ मैं हीरों में तोलता
लेकिन हमारा दौर ही शायद गुज़र गया

जाता रहा मरीज तो मैं चौंका सोचकर
ये क्या हुआ, दुआओं से मेरी असर गया

हँसता-हँसाता आता है वो याद आज भी
आया सलिल न जाने कब, जाने किधर गया।

– 1770, ऑट्रम लाइंस, किंग्जवे कैंप, दिल्ली-110009

❑❑❑

ग्रीष्म का आँचल

कमल सिंह चौहान

सूरज निकला, किरणें फैली, ग्रीष्म ऋतु ने आँचल खोला,
पलायन किया था शीत ऋतु ने, धूप ने अपना पट खोला।
आंगन पर पसरा गरमी का साया, पतझड़ ने वृक्षों पर डाला डेरा,
कूहू-कूहू कर कोयल बोली, आम ने भी अब बदला चोला।
सूरज निकला, किरणें फैलीं, ग्रीष्म ऋतु ने आँचल खोला।

गोंद लाख और चिरोंजी वन में लगा है अब फलों का मेला,
शेर सियार भालू चीता हर जीव-जंतु को धरती ने झेला।
उठती लपटें गरम हवा की पत्तों का खड़-खड़ संगीत बना,
फूल खिले गरमी के देखो, खुशबू ने भी अब ढक्कन खोला।
सूरज निकला, किरणें फैलीं, ग्रीष्म ऋतु ने आँचल खोला।

नव वधू के चेहरे पर श्रम की बूंदें गरमी में भी निखर आई,
खेतों में श्रम करती बालाओं की मुस्कान सहज सिमट आई।
गरमी का चंचलपन नदी कुँओं से करता है देख ठिठोली,
जनमानस के कंठों को तर करता रहता मौसम है कितना भोला।
सूरज निकला, किरणें फैलीं, ग्रीष्म ऋतु ने आँचल खोला।

ऋतुएँ सब पावन होती है मन का संयम कभी ना तोड़ो,
वर्षा शीत हो या गरमी सब ऋतुओं से ही नाता जोड़ो।
बढ़ते रहना आगे पथ पर अवसाद कभी ना जीवन में आए,
किलकारी भरते रहते बच्चे शीत हो या गरमी का गोला।
सूरज निकला, किरणें फैलीं, ग्रीष्म ऋतु ने आँचल खोला।

– कविता निवास, दुर्गा मंदिर के पास, रेलवे स्टेशन रोड, बीड़, जिला खंडवा (म. प्र.)-450110

❑❑❑

मेरा नाम लोकतंत्र है

राजकुमार कुंभज

मैंने गूंगों को बोलना सिखाया
मैंने गुलामों को बोलना सिखाया
मैंने बेजुबानों को बोलना सिखाया
मैंने जिन-जिन को भी बोलना सिखाया
एक दिन फिर उन्होंने ही मुझे डराया
मैं डरा नहीं; क्योंकि मैं डरता नहीं
मैं मरा नहीं; क्योंकि मैं मरता नहीं
मैं हारा नहीं; क्योंकि मैं हारता नहीं
मैंने जीना सिखाया जिन्हें भी
वे, जीते रहे सुखपूर्वक
मैंने लड़ना सिखाया जिन्हें भी
वे, लड़ते रहे सुखपूर्वक
मैंने झुकना नहीं सिखाया
कभी भी, किसी को
और जिन्हें सिखाया नहीं झुकना
वे डटे रहे और झुके नहीं कभी भी
मेंने उन लोगों को, वो-वो सिखाया
जो-जो वे सीखना नहीं चाहते थे
और सीखने से बहुत-बहुत डरते थे

271 CHD / 2018—15A

और अंधेरे बंद कमरों में ही रहते थे
मैंने उनसे कहा
कि मैं कोई मसीहा नहीं, सिर्फ एक मंत्र हूँ
तुम्हारे लिए, तुम्हारे हिस्से का लोकतंत्र हूँ
मुझसे बात करो
दिन-रात करो
मेरे पास बातचीत करने का एक यंत्र है
मेरा नाम लोकतंत्र है।

– 331, जवाहर मार्ग, इंदौर-452002

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

271 CHD / 2018—15B

सामाजिक सच से सीधा साक्षात्कार

डॉ. राहुल

जन-जीवन-जगत की तल्ख सच्चाइयों से साक्षात्कार कराती हैं युवा कथाशिल्पी देवेंद्र कुमार मिश्रा की "अंतहीन सिलसिला" की कहानियाँ। इसमें कुल जमा 20 कहानियाँ हैं जो पारिवारिक परिवेश के साथ सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य को देखने-समझने की दृष्टि देती हैं। जन-जीवन के विविध मार्मिक प्रसंगों को कथाकार ने बेबाकी से इसमें रूपायित किया है। ये कहानियाँ समसामयिक समस्याओं से संघर्ष करते हुए दुर्बोध संत्रासों की यथार्थ प्रस्तुति है। हर कहानी का ताना-बाना सामाजिकों द्वारा अधिक निकट से देखी-सुनी या कहें कि किसी हद तक भोगी गई स्थिति का जीवंत चित्रण है।

जिंदगी की असलियत से जुड़कर ही कहानी बनती है। संग्रह की कहानियों- इज्जत, प्यार का सफल प्रायश्चित, शबनम, डिवोर्सी, मातृसत्ता, कमजोर नहीं औरत, दत्ता-दंपत्ति की आत्मकथा आदि नारी-नियति समस्याएँ, संवेदनाएँ और मूल्यहीनता को केंद्र में रखकर रची गई हैं। जीवन से जुड़कर जब भी कोई साहित्यिक रचना लिखी जाती है, तो उसकी आयु लंबी होती है। नारी को लेकर अधिकतर कथाकारों ने कलम चलाई है परंतु पुरुष कथाकारों ने उनकी जीवन-स्थितियों, विडंबनाओं और संवेदनाओं को उभारा है। 'इज्जत' शीर्षक कहानी में शौचालय के बहाने समाजगत सोच, स्वच्छता-सफाई जो आज की एक समस्या किंतु आवश्यकता है, को चित्रित किया गया है। शौचालय के अभाव में

अंतहीन सिलसिला (कहानी-संग्रह)/ देवेंद्र कुमार मिश्रा/ बोधि प्रकाशन, एफ-77, सेक्टर-9 करतारपुर इंडस्ट्रियल एरिया, बाई पास गोदाम, जामपुर-06/ संस्करण : 2017/ पृष्ठ : 192/ मूल्य: ₹200/-

गाँवों में किस तरह नारी-अस्मिता के साथ कुत्सित घटनाएँ होती हैं और नारियाँ लोक-लाज के कारण सहती-भोगती दम तक तोड़ देती हैं- प्रस्तुत कहानी का प्रतिपाद्य है। 'प्यार का सफल प्रायश्चित' में अंत:प्रणय का साफ सीन देखा जा सकता है- "आजकल तो मोबाइल का जमाना है लेकिन मोबाइल तो पत्रों से भी ज्यादा विस्फोटक है।....बहुत बड़ा सामाजिक-आर्थिक भेद है। क्या करूँ मैं?.... न मेरे सपनों की राजकुमारी से मेल खाती है वो। न कोई विशेषताएँ हैं मुझे खींचने लायक उसमें। फिर भी झंझट में.... फँसता जा रहा हूँ।" (पृ. 15) आज पारिवारिक संबंधों का परंपरागत ढाँचा टूट रहा है इसलिए पति-पत्नी, प्रेमी-प्रमिका, माता-पिता, भाई-बहन, पिता-पुत्र के बीच बदलाव नजर आ रहा है, पुराने मूल्यों का अर्थ नष्ट हो रहा है, नए मूल्यों की प्रतिष्ठा भी बेमानी लगने लगी है। डिवोर्सी और दत्ता दंपत्ति की आत्मकथा शीर्षक कहानियाँ संबंधों-सरोकारों के विघटन का गहरा पीड़ा-बोध कराने में सक्षम हैं।

लेखक किसी एक विचारधारा पर आश्रित नहीं होता। अगर उसे सामाजिक विकृति, मोहभंग, अविश्वास, आशाहीनता, तनाव, शोषण, उपेक्षा, दमन, कुंठा आदि के दर्शन होते हैं तो वह उन्हीं को अपनी रचना का विषय बनाता है। सही राह, सर्जिकल स्ट्राइक, अपना-अपना मकान, अर्जुन का अंगूठा, अपमान, चोट आदि कहानियाँ कथाकार के इसी दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं। पूर्व कथाकारों ने रचनाधर्मिता की जो दिशा तैयार की है और शिल्प का 'जेस्चर' निर्मित किया है, देवेंद्र कुमार मिश्रा उसकी परवाह किए बिना अपने ढंग और अपनी शर्तों पर कहानी रचते हैं। इनकी कहानियों की भाषा भले ही तल्ख हो लेकिन उनमें अनुभव की जो गहराई है, वह औरों से अलग किस्म की है। बेकारी-बेरोजगारी के आश्रित विपन्नता का दंश झेलते एक ऐसे युवा व्यक्ति की कहानी है जो आत्महत्या करने की बात सोचता है परंतु संन्यासी के संपर्क में आने से उसकी सोच बदल जाती है। उसे शरीर की नश्वरता का बोध होता है और ज्ञान प्रकाश में वैराग्य की कुल्हाड़ी से मोहपाश को काटकर परब्रह्म से जुड़ने, भक्ति-साधना में लीन रहने की मंशा अपनी माँ से प्रकट करता है। परंतु माँ द्वारा कर्तव्यों के पालन की प्रेरणा पाकर उसकी मन:स्थिति बदल जाती है। माँ पुत्र के जीवन-संस्कार की पहली पाठशाला है, वह सही राह दिखाती है। कहानी छोटी है किंतु भाव-संप्रेषण की दृष्टि से उत्तम कोटि की कही जा सकती है।

'सर्जिकल स्ट्राइक' सैनिकों की अदम्य वीरता, राष्ट्रवादी उत्कर्ष, देश-प्रेम की उत्कट भावना से भरपूर है तो 'अर्जुन का अंगूठा' शिष्यत्व की महनीयता, त्याग, समर्पण और महान गुरुभक्ति की महिमा का दिव्य दर्शन कराती है और छल-छद्म, स्वार्थ की ओर भी संकेत करती है। 'अपमान' कहानी वैयक्तिक सामाजिक बिंब की बड़ी मार्मिक रचना है जो वेश्या-वृत्ति से छुटकारा पाने और नारी को उचित सम्मान देने का तथा पुरुष की घृणित-घिनौनी मानसिकता का द्योतन कराती है। यह सघन चिंतनपूर्ण कहानी है। कहानी का कैनवस रंगीन होकर भी एकधर्मी जीवन की सृष्टि करता है। 'चोट' कहानी का फलक चेतनापरक, परंतु व्यावहारिक धरातल पर कमोबेश कुंठा जन्य लगता है: "बेटा, मर्द को मर्द की तरह रहना चाहिए।" (पृष्ठ 134) माँ का एक छोटा-सा वाक्य ही कथाभूमि का सच बयान कर देता है।

इसी प्रकार 'अपना अपना मकान' कहानी अपने रचना-शिल्प में कसी उद्देश्यपूर्ण है। पात्रों की बहुलता के बावजूद पारिवारिक विघटन का दृश्य पेश करती है यह कहानी। जब निजी स्वार्थ और अपनेपन की चिंता व्यक्ति मन में घर कर जाती है तो रिश्तों में दरार पड़ना स्वाभाविक है। टूटा दिल मिलने पर भी एकापन नहीं दिखा पाता। सुकून समाप्त हो जाता है। सामाजिक सच के एप्रोच को कम्यूनिकेट करने के लिए मानो कथाकार ने शिल्प को एकमात्र माध्यम मान लिया है। सशक्त कथ्य के लिए रचनात्मक सामर्थ्य निहायत जरूरी है।

यदि सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद की कहानियों का फलक देखें तो उनमें अतिरिक्त भावात्मकता नजर आती है। कालांतर के कई एक कथाकारों में कथ्य के साथ कथन-क्राफ्ट की कीमियागिरी दृष्टव्य है किंतु समकालीन कहानियाँ अपनी कुछ अलग शिल्प-शैली लिए पहचान कायम कराती हैं। इस कसौटी पर मिश्रा के कथाकार ने अपनी कहानियों की बुनावट द्वारा जीवंत मानव समाज की सृष्टि की है, जो उन्हें पुख्ता, प्रतिष्ठित करती है। वस्तुत: जीवंत मानव-लोक जिस कहानी में होता है, वह उम्दा कोटि के गुण-वैशिष्ट्य से संपन्न होती है।

देवेंद्र की कहानियाँ भले ही व्यक्तिवादी लगें, किंतु इनमें आत्म-दर्शन की नई भावभूमियाँ तथा नया आयाम नजर आता है। विश्वशांति, उसके लिए थैंक यू, वैधानिक चेतावनी आदि कहानियाँ इस दर्जे का दृश्यांकन करती हैं।

'विश्वशांति' कहानी के माध्यम से कथाकार ने विश्वशांति का प्रोपगेंडा करने वाले नेताओं की नीयत-नीति पर सवाल खड़ा किया है, उनके नकाब नोंचकर नंगा करने का सार्थक प्रयास किया है। सत्ता और सियासत के सच का आइना है यह। दरअसल गंदी राजनीति के दाँव-पेंच और दुरुपयोग ने सामाजिक जीवन में जातीय-धार्मिक जहर घोलकर उसे विकृत कर वीभत्स बना दिया है। शोषण और जन्म के साये में जीना और विश्वशांति की दुहाई देना मौकापरस्त राजनीति का असली चेहरा है, इसे खत्म होना चाहिए। राजनैतिक महत्वाकांक्षा का (पृ. 112) इससे उम्दा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। बड़ा संप्रेषणीय और ऊर्जापरक भाव-बोधीय बिंब दर्शाती है यह कहानी।

'अंतहीन सिलसिला' संग्रह की शीर्षक कहानी है। पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच बढ़ते तनाव, खंडित होते विश्वास, दरकती प्रेम की दीवार और बढ़ते मनमुटाव का जितना-जैसा जहरीला अक्स इसमें है, निश्चय ही वह पाठक को सोचने पर विवश करता है- "क्यों लगता है जीवन-साथी के चयन में गलती हो गई। पति पत्नी से खुश नहीं है। पत्नी पति से खुश नहीं है। दिन काम में व्यस्त रहकर काट भी ले आदमी, किंतु रात में एक ही बिस्तर पर विपरीत दिशा में मुँह करके सोते पति-पत्नी और कई-कई दिन की चुप्पी। शादी के सात फेरे, सात वचन, सात जन्म के साथ निभाने की कसमें सब बेकार, व्यर्थ थीं।" (पृ. 179) अस्तु, कहानी अपनी प्रकृति में बड़ी संश्लिष्ट है। सामाजिक जीवन-स्थितियों का चित्रण कर मानवीय धरातल पर चरित्रों का उद्घाटन किया गया है। परंतु यत्र-तत्र शिल्प की चूलें थोड़ी ढीली हैं।

'उसके लिए थैंक यू' एक अलग 'प्लेटफार्म' पर उपस्थित है। विजातीय विवाह के बीच आने वाली अड़चनें इसकी पृष्ठभूमि है। सुरेश कहता है- "मैं आर्थिक रूप से अपने पिता पर निर्भर हूँ। मुझे करोड़ों की संपत्ति से बेदखल कर दिया जाएगा, यदि मैंने तुम्हें तलाक नहीं दिया तो। ....या तो तुम इसी तरह समझौता करके रहो, नहीं रह सकती तो तलाक ले लो।" (पृ. 187) भले ही इसमें कुछ लोगों को प्रेम के खुमार के रहते मानसिक विकृति, पति-पत्नी विभेद और सोच की संकीर्णता नजर आए लेकिन अपनी समग्रता में यह कहानी नई सामाजिक बोध की कहानी है।

'वैधानिक चेतावनी' कहानी को नई सदी की उन कुछेक चुनिंदा कहानियों में परिगणित किया जाना चाहिए जो दृष्टि की नवीनता, वैज्ञानिक बंदिशें और भाव-भिन्नता लिए अपनी कथात्मकता में जिंदगी, समाज-शासन, सत्ता की भयावह स्थितियों से साक्षात्कार कराती है। "हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी रक्षा करेगा। मंदिर बनवाइए। मस्जिद बनवाइए। सहयोगियों को राष्ट्रीय सम्मान, ऊँचे पद दीजिए, वे भी जानते हैं और यही समय है ऋण चुकाने का। जो विरोध करते हैं, वो विद्रोही हैं? उन्हें जेल में डालिए।" (पृ. 189) समाज-सुधार की दृष्टि से भी- "ऐसा करो सिनेमा में शराब, तंबाकू, सिगरेट, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, फिल्म आरंभ होने से पहले यह जनहित में दिखाओ।" (पृ. वही) राजा की चेतावनी काबिले-गौर है। वस्तुत: सिनेमा, विज्ञापन और सेंसरबोर्ड, जो सूचना-केंद्र एवं प्रदर्शन, प्रचार-प्रसार के स्रोत हैं, की ओर ध्यानाकृष्ट किया गया है। इस प्रकार कथाकार द्वारा कहानी के माध्यम से समाज को संजीवनी देने का प्रबल प्रयास प्रशंसनीय है।

समकालीन कहानी में नई दृष्टि को प्रतिफलित करने का जो दृष्टिकोण रेणु, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, मार्कंडेय का था, उसकी सूक्ष्म झलक यहाँ देखने को मिलती है। लेकिन दोनों दृष्टिकोणों में बड़ा बारीक अंतर है। देवेंद्र कुमार मिश्रा के कथाकार ने नई कलात्मकता देकर चर्चा का रूख अख्तियार नहीं किया, बल्कि वैचारिक क्रांति के जरिए कहानी की दिशा को एक नया मोड़ दिया है। जनजीवन-जगत से जुड़ी होने के नाते वास्तविकता की बेहद संश्लिष्ट प्रक्रिया पाठक को आद्यंत बाँधे रखने में कोई कसर नहीं छोड़ती। नि:संदेह भाषा की ताजगी और कथ्य की नवीनता से संग्रह की कहानियाँ अपना स्थायी प्रभाव छोड़ने में पूरी तरह कामयाब हैं। आकारगत छोटी कहानी का प्रयोग इसे लघुकथा विधा के रूप में भी प्रतिष्ठित करते है।

– 'साहित्य कुटीर', साइट-2/44, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

❑❑❑

व्यंग्यात्मकता और आइना

डॉ. पुष्पेंद्र कुमार शर्मा

प्रसिद्ध साहित्यकार और व्यंग्य विधा सहित कई विधाओं में हिंदी साहित्य को रचनाएँ देने वाले प्रो. सुधेश जे एन यू, दिल्ली में हिंदी प्रभाग में समर्पित रहे। उनके व्यक्तित्व में उनका बहुआयामी ज्ञान, साहित्य-साधना, विदेश के कई देशों की यात्राओं के अनुभवों की उनकी साहित्यिक रचनाओं में छायाएँ होना और प्रभाव सहज सरल बात है।

मूल रूप से साहित्यिक कृतियों के रचनाकार, आलोचक और कवि समान रूप से दोनों ही रूपों में आपने लेखनी को लंबी यात्रा करवायी है। हिंदी की अनेक प्रचलित विधाओं में से एक व्यंग्य विधा में प्रो. सुधेश की दूसरी व्यंग्य संग्रह कृति मेरे हाथों में है जिसको पढ़ने का अवसर मुझे मिला है।

व्यंग्य संग्रह "चौराहे पर भैंस" का शीर्षक अपने आप में चौकाने वाला तथा व्यंग्यात्मक है। मध्यम आकार के नगर या महानगर में व्यस्त चौराहा और उस पर यदि भैंसें आ जमें तो जिंदगी रुकती-सी जान पड़ती है परंतु प्रो. सुधेश सुधी लेखक हैं जिन्होंने इस रचना को बहुत बेहतरी से संजोया है।

इस व्यंग्य संग्रह में 30 व्यंग्य रचनाएँ शामिल की गई हैं। जीवन में कुछ ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ जो विचित्रता लिए हुए होती हैं उन्हीं में से व्यंग्य को ढूँढ निकालना निश्चय ही रचनाकार की ही क्षमता में आता है। स्वयं पर व्यंग्य लिखना या किसी और पर व्यंग्य लिखना दोनों ही चेतना-संपन्न समाज में सहज रूप में स्वीकार किए जाते हैं। व्यंग्य रचना पढ़ने, सुनने और उससे पहले लिखने

चौराहे पर भैंस (व्यंग्य-संग्रह)/ प्रो. सुधेश/ प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, 1/10206, लेन नं. 1, वेस्ट गोरख पार्क शाहदरा, दिल्ली-110032/ संस्करण : प्रथम, 2017/ पृष्ठ : 104/ मूल्य : ₹100/-

की सोच और स्वीकार्यता मौजूदा सामाजिक परिवेश में सार्थक प्रतीत होती है क्योंकि व्यस्त, भागदौड़ से भरपूर तथा नीरसता और थकान से बोझिल मनुष्य के मन और मस्तिष्क को कुछ न कुछ हँसाने-गुदगुदाने वाला माध्यम भी चाहिए जो अलग-अलग रूप में हो सकता है। मनोरंजन के अलग-अलग साधनों में से हास्य-व्यंग्य का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रातः हिंदी में अनेक स्तरीय व्यंग्य पढ़ने और सुनने में आते हैं जैसे बेसिर पैर वाले व्यंग्य, निरर्थक व्यंग्य जो मात्र हँसाने का काम करते हैं, कुछ सामाजिक विषयों तथा आपसी व्यवहार से जुड़े हुए विषयों पर व्यंग्य जिनमें कुछ सार्थकता होती है और इनसे अलग हटकर ऐसे हास्य-व्यंग्य जो हमारे सामाजिक जीवन में मनुष्यता के बीच आए अंतर्विरोधों की ओर संकेत करते हैं तथा सावधान होने का इशारा भी करते हैं और जिनसे विभिन्न प्रकार की जानकारी भी मिलती है। वे भी मनुष्य के ज्ञान और मनोरंजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

हास्य व्यंग्य की परंपरा बहुत पुरानी है जिसमें हरिशंकर परसाई से लेकर हुल्लड़ मुरादाबादी तथा इनके समसामयिक और परवर्ती व्यंग्य रचनाकारों की परंपरा को देखें तो व्यंग्य रचनाओं को पढ़ने व सुनने से मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही नई-पुरानी घटनाओं, गतिविधियों की भी जानकारी मिलती है जिसे हम आम के आम और गुठलियों के दाम भी कह सकते हैं।

प्रो. सुधेश के इस व्यंग्य रचना-संग्रह में सूचनापरक, ज्ञानवर्धक तथा जीवन में हमारे चारों ओर बिखरी पड़ी छोटी-छोटी सूचनाओं और अहसासों से भरे लघु व्यंग्य शामिल हुए हैं। प्रो. सुधेश की रचनाएँ लघु होने के कारण अनायास ही पढ़ने के लिए आकर्षित करती हैं क्योंकि थोड़े समय में पढ़ ली जाने वाली रचना को पढ़ने के लिए ही आज की भागदौड़ की जिंदगी में समय है।

प्रो. सुधेश के इस व्यंग्य-संग्रह में 'चौराहे पर भैंस' शीर्षक के अंतर्गत वी आई पी कल्चर को सहजता से व्यंग्य भरी शैली में चित्रित किया गया है और इसे पढ़ते-पढ़ते महासागरीय चौराहे का पूरा चित्र उभर कर सामने आ जाता है। "वी आई पी को डंडा नहीं मारा जाता। उसकी आरती उतारी जाती है। यह अलग बात है कि जिसने पहले जितने अधिक डंडे खाए हों, वह उतना ही बड़ा

वी आई पी बन जाता है।" (पृ. 9) भैंसों की भीड़ और वी आई पी के पीछे भीड़ की समानता का चित्र निश्चय ही आज का सत्य है।

शायरनुमा हिंदी कवि के अंतर्गत हिंदी और उर्दू की मिली-जुली शब्दावली लेकर रचनाकार उर्दू गजल और हिंदी गजल लिखते हैं और अपने आप को प्रसिद्धि दिलाने के लिए वे शायरनुमा हिंदी कवि बन जाते हैं। परिणामत: "मुशायरे में वे शायर होते हैं और कवि सम्मेलन में कवि।" (पृ. 12) इस व्यंग्य रचना में कवि और शायर की महत्वाकांक्षा पर करारा व्यंग्य है जो अंदर तक गुदगुदा देता है।

'नाम की भूख' शीर्षक व्यंग्य रचना में प्रसिद्धि के सुख का रसपान करने की ललक में संस्था खड़ी कर देना तथा दूसरों को संस्था के कार्यक्रमों में बुलाना ताकि इनको भी संस्थाएँ/संगठन बुलाएँ तथा अध्यक्षता करवाएँ अपने कार्यक्रमों/आयोजनों में। यानि गिव और टेक का अच्छा फार्मूला फिट रहता है। "बिना कुछ राशि दिए भी कुछ संस्थाएँ लेखकों को पुरस्कृत करती रहती हैं और लेखक नाम का भोला भंडारी शॉल ओढ़कर और फोटो खिंचवा कर खुश हो जाता है।" (पृ. 16)

'बिहार में नया वेलेंटाइन' व्यंग्य रचना को रोचक शैली में बड़ी सहजता से लिखा गया है। ढाई पेज में छपी यह रचना बिहार के अधेड़ उम्र अध्यापक के किशोर आयु की लड़की से प्रेम और फिर विवाह की मनोरंजक, रोचकता तथा हास्यव्यंग्य भरी बहुत अच्छी रचना है। यह रचना बिहार में कई वर्षों पूर्व घटित वास्तविक घटना के सार रूप को केंद्र में रखकर रची गई है। भारत में सामाजिक स्थितियों में हो रहे बदलावों के कारण सामाजिक मान्यताओं तथा अनुशासन के बंधनों को तोड़ती हुई मनुष्य की उन्मुक्त सोच ने हर वस्तु, स्थिति और व्यक्ति का मनमाना उपयोग करने का एकछत्र आधिपत्य कायम कर लिया है जो आजादी नहीं, अराजकता है। रचनाकार प्रो. सुधेश ने लिखा है कि "यह नया वेलेंटाइन सेमीनार में जाकर प्रेम पर भाषण देता है और पत्रकार सम्मेलन में वेलेंटाइन दिवस का महत्व समझाता है और यह भी बताता है कि यह दिवस कैसे मनाया जाए।.... वह अपना घर छोड़ कर वानप्रस्थी बनने के बजाय वेलेंटाइन बन गया।" (पृ. 18) रचनाकार का मानना है कि पश्चिमी संस्कृति की आंधी में रूढ़ियों के वृक्षों के जीर्ण पत्ते झरते रहेंगे और नए गुल खिलते रहेंगे।

रचनाकार ने "पति-पत्नी की नई परिभाषा" शीर्षक व्यंग्य रचना में पति-पत्नी शब्द की उत्पत्ति, इन शब्दों के अर्थापकर्ष को व्यंग्यात्मक शैली में लिखते हुए पति-पत्नी के बीच दुश्मनी के भाव को दर्शाते हुए बदलती परिस्थितियों में उनके बीच विकसित हुए मैत्री भाव, दोस्ती और समता का परिचायक बताया है जो समय-समय पर तल्खी और दुश्मनी में भी बदलता देखा गया है अर्थात् नया सामाजिक परिवेश जिसमें पश्चिमी प्रभाव सहित विश्व के अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव भी देखने को मिल रहे हैं जो भारतीय प्राचीन समाज की स्वस्थ तथा सार्थक परंपराओं को भी चूना लगा रहा है। रचनाकार पति-पत्नी के आपसी संबंधों में आयु बढ़ने के साथ परिवर्तन होने के साथ अपने आप इनके संबंधों को और भी अस्थिर दिखाते हुए उस पर व्यंग्य करता है कि "पति-पत्नी का विचलन कभी नए गुल खिला सकता है जिसे समझने के लिए नए भाषाविज्ञान के साथ नए समाजशास्त्र की आवश्यकता पड़ेगी।" (पृ. 22)

प्रो. सुधेश ने 'निंदा रस' पर गंभीर परंतु व्यंग्यभरी लेखनी चलाई है जिसमें निंदा रस के प्रयोग स्थानों तथा प्रकारों को भी व्यंग्य भरी शैली में प्रस्तुत किया गया है। निंदा रस- जहाँ फालतू समय में चार औरतें एकत्र होंगी/ शाम को पार्क में चार बूढ़े जहाँ घूमने के नाम पर एक जगह मौजूद हों।/ स्कूल के इंटरवल में चार मास्टर जहाँ सिर जोड़े बैठे होंगे। रचनाकार ने आलोचकों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि *आज का मानव बहुत सभ्य हो गया है। अब वह निंदा को आलोचना कहने लगा है। (पृ. 63)*

निंदा को हमारे साहित्य और समाज में चटकारे लेकर कहे जाने का शाब्दिक माध्यम माना गया है जहाँ व्यक्ति अपनी जागृत अवस्था का काफी समय दूसरों की निंदा करने में ही बिताता है। मौखिक निंदा पीठ पीछे की जाती है। "हर कोई एक-दूसरे का निंदक बना हुआ है। कोई दबी जबान से निंदा करता है तो कोई खुलकर। एक-दूसरे की पीठ के पीछे निंदक खड़ा है।" (पृ. 65) साहित्य में व्यंग्य शैली इतनी प्रचलित हुई कि उसने विधा का रूप ले लिया और अनेक लेखक-रचनाकार बहुत प्रभावशाली व्यंग्य लिखते हैं। प्रो. सुधेश ने लिखा है कि *आलोचना का अर्थ ही निंदा हो गया है। पर गंभीर आलोचक ऐसी रहस्यपूर्ण आलोचना लिखते हैं कि इसमें निंदा और प्रशंसा का अंतर मिट जाता*

है।.... अधिकतर आलोचक प्रवर एक-दूसरे के लिए 'अहो रूपम् अहो ध्वनि' के स्वर में प्रशस्ति गान लिख रहे हैं। यह आलोचना का सबसे सुगम मार्ग है जिस पर चलकर चारण भी आलोचक शिरोमणि बन जाता है। (पृ. 65)

निंदारस के बारे में प्रो. सुधेश की ज्ञानपरक व्यंग्य रचना को पढ़ने के बाद विधात्मक स्वरूप की प्रतिष्ठा तो स्वयंसिद्ध है परंतु निंदा अगर सामने की जाए और निंदा करने वाला और निंदा सुनने वाला व्यक्ति आमने-सामने हैं और धैर्य का माद्दा है तो फिर निंदक जैसा हितैषी कोई नहीं है। तभी तो निंदा करने वाले व्यक्ति को पड़ोसी बना लेने की सलाह भी हिंदी कवि ने दे डाली। स्वस्थ आलोचना या स्वस्थ निंदा सही रास्ता भी दिखाती है और अपनी कमियों को भी जानने का मौका देती है यानी निंदा तो आइना है। प्रो. सुधेश की "यों हुआ पुस्तक लोकार्पण" तथा "साहित्य में ऊब रस" दोनों ही व्यंग्य रचनाओं में साहित्यकार अपने आप को साहित्यिक स्तंभ मानने की भूल कर बैठे हैं। अपनी पुस्तक का लोकार्पण करवाने और झूठी तारीफ तथा झूठी शान बघारने वाले स्वनामधन्य रचनाकारों पर बहुत ही रोचक शैली में व्यंग्य किया गया है।

पुस्तक लोकार्पण के लिए आमंत्रित श्रोताओं का कम संख्या में आना तथा लोकार्पण के मंच पर अध्यक्षता सहित सभी कार्यकलाप रचनाकार द्वारा स्वयं ही किया जाना उनके तथाकथित रचनाकार होने, रचना के जानदार न होने तथा आत्मविश्वासहीनता से परिपूर्ण ही माना जा सकता है जो गली-गली अपनी रचनाओं को साहित्यिक बताने और प्रतिष्ठित बनाने और बनाए रखने की जुगत में रहते हैं।

'साहित्य में ऊब रस' निश्चय ही लोकार्पण के रचनाकार की रचनाओं को पढ़ने की कोशिश से ही उभरता हुआ रस मानना चाहिए क्योंकि सहज रोचकता तथा शैलीगत श्रेष्ठताओं के साथ-साथ ये रचनाएँ निश्चय ही स्थान-स्थान पर ऊब रस का अहसास बनती हैं। जीवन मूल्यों में उदारीकरण, संस्कृति में उदारीकरण और साहित्य में उदारीकरण ने एक ऐसी अराजक आंधी चलाई कि सब कुछ बह गया है। साहित्य में सब कुछ खपने लगा है अब चाहे उसे कोई पढ़े या न पढ़े। वात्सल्य रस, भक्ति रस से लेकर बौद्धिक रस की बात उभरकर आई जिसे प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता, विचार कविता आदि में सागर की

तरह उमड़ते हुए देखा गया है। "जिस रचना को समझने में बौद्धिक व्यायाम करना पड़े और उसके बाद भी वह समझ में न आए अथवा कुछ लोगों की समझ में आए, वहाँ बौद्धिक रस होता है।" (पृ. 29) इन्हीं बौद्धिक रस से परिपूर्ण रचनाओं में पाठकों ने ऊब रस महसूस किया। रचनाकार का मानना है कि "अतिरिक्त बौद्धिकता ऊब पैदा करती है.... ऊब भी एक मनोभाव है इसलिए साहित्य का नया रस, ऊब रस।" (पृ. 29)

"वे गजल कहते हैं" शीर्षक व्यंग्य रचना गुदगुदाती कम है और ऊब रस का अहसास ज्यादा कराती है। 'प्रशंसा की भूख' के अंतर्गत रचनाकार को प्रशंसा का भूखा बताया गया है। परंतु सच तो यह है कि जिसमें प्रशंसा के लायक कुछ नहीं होता, वह ही प्रशंसा का भूखा होता है परंतु जिसकी रचना में और उसके व्यक्तित्व में समाज और साहित्य जगत को कुछ देने की क्षमता होती है और जो वास्तव में देता भी है उसकी प्रशंसा न चाहते हुए भी लोग करते हैं। प्रशंसा को बहुत उपयोगी कृत्य बताते हुए सुधेश जी लिखते हैं कि प्रशंसा का अस्त्र बड़ा अचूक है। वह मर्म का स्पर्श करता है। जो इसमें कुशल हैं वे जीवन की वैतरिणी गाय की पूँछ को पकड़े बिना पार कर जाते हैं। (पृ. 74) रचनाकार का मत है कि संतुलित तथा अनुशासित तरीके से की गई प्रशंसा कल्याणकारी होती है।

'मेरे साक्षात्कार' के अंतर्गत साक्षात्कार देने वाले के सुख पर व्यंग्य किया गया है। अनेक तरह से लिए तथा दिए जाने वाले साक्षात्कारों का उल्लेख करते हुए प्रो. सुधेश की यह रचना तथा इस व्यंग्य-संकलन में कई अन्य रचनाएँ वास्तविकता से परिचय तो कराती हैं परंतु व्यंग्यात्मकता की दृष्टि से फीकापन ही देखने को मिला है और रोचकता की कमी भी खटकती है। इस संकलन की एक रचना में जिस ऊब रस का प्रतिपादन प्रो. सुधेश ने किया है, वह ऊब रस उनकी इस संकलन की कई रचनाओं में भी देखने को मिलता है और पढ़ते-पढ़ते सपाटबयानी का अहसास भी होता है। जिससे वे रचनाएँ बीच-बीच में निबंध जैसी लगती हैं।

टेलीफोन पर चरणस्पर्श, विवाद में बने रहिए, गजलिए, नाम की महिमा अपार, शार्टकट का जमाना, आखिर मुझे आलोचक मिल गया, आप भी लोन ले लीजिए आदि व्यंग्य रचनाएँ वर्तमान मनुष्य जीवन के बीच की वास्तविकता को

सामने लाती हैं जिनमें जितना सच है, उतना ही व्यावहारिक और अनूठापन भी है। व्यंग्य के परिवेश को तैयार करने की कोशिश में शैलीगत सहजता काफी स्थलों पर देखने और पढ़ने को मिली है।

कुछ रचनाएँ जैसे पाल साहब, भैया जी, समीक्षा लिखवा लो, निंदा रस ऐसी व्यंग्य रचनाएँ हैं जो अपने कथ्य, शिल्प तथा व्यंग्य से परिपूर्ण प्रतिष्ठा योग्य हैं।

प्रो. सुधेश का यह व्यंग्य-संकलन जीवन की यथार्थवादी स्थिति को रेखांकित करता है। अपनी शैली, भाषागत सहज सरल रूप और कहीं-कहीं बोझिलता और सपाटबयानी के साथ व्यंग्यात्मक शैली में लिखी गई यह महत्वपूर्ण व्यंग्य-संग्रह कृति है जो वास्तविक जीवनशैली के धरातल पर खरी-खरी कहती हुई साहित्यिक तथा सामाजिक स्तर पर आइना दिखाने का भी काम करती है।

– एम-401, अजनारा लैंड मार्क, सेक्टर-4, वैशाली, गाजियाबाद-201010

❑❑❑

गीतों के बहाने युवाओं को प्रेरित करता संग्रह : युवाओं के गीत

डॉ. रमेश तिवारी

मनुष्य समाज की इकाई है। समाज में जो शिक्षित जन हैं, उनकी जिम्मेदारी सदा अधिक रही है। समाज-निर्माण में भाषा-साहित्य-कला-संस्कृति की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गीतों के द्वारा युवा शक्ति को सन्मार्ग और सत्कर्म की ओर प्रेरित करने के उद्देश्य से एक संग्रह प्रकाशित किया गया है, जिसका शीर्षक ही है- युवाओं के गीत। इस संग्रह में शचींद्र भटनागर जी द्वारा रचित गीत संकलित हैं। साहित्य की विविध विधाओं में सक्रिय भटनागर जी का गीतों-कविताओं के प्रति अनुराग बहुत शुरुआती दिनों से ही रहा है। भाषा-साहित्य की सेवा-साधना करते हुए शचींद्र भटनागर जी इन दिनों शांतिकुंज हरिद्वार में रहकर निरंतर समाज-निर्माण की गतिविधियों में सक्रिय हैं।

इस पुस्तक की संकल्पना की चर्चा करते हुए संग्रह के आरंभ में ही शचींद्र भटनागर ने लिखा है- डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल की इच्छा और बेटे अतुल के सहयोग से इस संग्रह की कविताओं को इस रूप में प्रस्तुत किया जा सका है। संकलित गीतों के बारे में शचींद्र जी लिखते हैं- "संकलन में पारंपरिक गीत हैं। युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के श्रीचरणों में बैठकर मैंने इन गीतों के सृजन-निर्देश प्राप्त किए हैं। उनके अभिमतानुसार मिशन के विचार-संवाहक ये गीत उन छोटे-बड़े समूहों के लिए अथवा उनके द्वारा गाए जाने वाले गीत हैं, जिनमें उच्च-शिक्षित वर्ग के साथ-साथ अल्पशिक्षित और अशिक्षित लोग भी

युवाओं के गीत (गीत-संग्रह)/ शचींद्र भटनागर/ प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ. प्र.)/ संस्करण : 2017/ पृष्ठ : 188/ मूल्य : ₹400/-

होते हैं। अत: इनकी भाषा एवं संरचना सरल बोधगम्य होनी चाहिए। गेयता भी इनमें होनी आवश्यक है।" (युवाओं के गीत, पृ. 5)

युवाओं में चेतना भरना एवं सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने का काम युग-निर्माण मिशन के प्रमुख आंदोलनों में से एक है। इस आंदोलन को जीवंतता, सरसता व ऊर्जावान बनाने के लिए इन गीतों में 'गेयता' का गुण भी विद्यमान है। "'युवाओं के गीत' युवाओं द्वारा स्वयं गाए जाने वाले अथवा उनमें प्राण संचार करने वाले गीत हैं।" (वही, पृ. 07)

आज जबकि भारतवर्ष को 'युवाओं का देश' कहा जाने लगा है और 65 प्रतिशत आबादी युवाओं की श्रेणी में गिनी जाती है, ऐसे समय में युवाओं के संरक्षण, संवर्धन और दिशानिर्देशन की महती आवश्यकता है। इस दृष्टि से 'युवाओं के गीत' पुस्तक का प्रकाशन एक सकारात्मक प्रयास है। इसके लिए लेखक (कवि) और प्रकाशक दोनों ही साधुवाद के हकदार हैं। कवि ने अपने इस संग्रह में युवाओं की पहचान कराते हुए लिखा है–

यौवन का संबंध न होता है जीवन के वर्षों से,
वह पहचाना जाता है संघर्षों से, उत्कर्षों से,
गंगा की धारा-सा वह जिस समय हिलोरें लेता है,
यौवन तो बन जाता अपने पथ का स्वयं सृजेता है,
चट्टानों से भी टकराकर अपनी राह बनाता है।
तब तन-मन के अंग-अंग में नव बसंत लहराता है। (पृ. 53)

कवि का आशय बहुत साफ है कि यौवन का संबंध आयु-विशेष से नहीं होता है। जिस किसी में संघर्ष का साहस हो, जूझने की क्षमता हो, वही युवा कहलाने का अधिकारी है। यौवन असीम ऊर्जावान होता है। इसलिए ऊर्जा को सही दिशा देने के लिए अनुशासनप्रियता की भी आवश्यकता होती है। युवाओं को सदा अच्छाई का समर्थन करना चाहिए। इस सोच के साथ ही हम समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं।

जहाँ-जहाँ अच्छाई हो, हम उसका करें समर्थन,
नेक सोच वालों से होगा इस युग में परिवर्तन,
सत्पुरुषों को कल समाज की करनी है अगुआई,
हिंदू हों या बौद्ध, पारसी, सिख, मुस्लिम, ईसाई,

हर मत-संप्रदाय में फैलें सच्चे युग निर्माणी।

मानवता के लिए भावना रहे सदा कल्याणी।। (पृ. 57)

युवाओं को अपना लक्ष्य निर्धारण एवं लक्ष्य के प्रति लगन, समर्पण, निष्ठा में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आने देनी चाहिए। इसके अभाव में युवा लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकेंगे। इसीलिए कवि युवाओं को सदा याद दिलाता रहता है-

हममें से हर एक गिलहरी जैसा निष्ठावान हो।

कुछ भी करें, दृष्टि में अपनी केवल लक्ष्य महान हो। (पृ. 60)

आधुनिकयुगीन राजनीति का स्तर इतना गिरा है कि उसका उपयोग समाज को जोड़ने के बजाय विभाजित करने में किया जाता है। कवि युवाओं को सीख देते हुए ऐसी राजनीति और राजनीतिज्ञों से सावधान रहने का संदेश देता है-

चाहे झगड़ा हो जमीन का अथवा व्यवसायों का,

बना दिया जाता उसको विवाद दो समुदायों का,

चतुर राजनेता उसके द्वारा उन्माद बढ़ाते,

अपने हित में हिंदू-मुस्लिम का विवाद भड़काते,

क्योंकि उन्हें तो इसी बहाने अपनी धाक जमानी।

द्वार-द्वार जाकर सबको यह बात हमें समझानी।। (पृ. 61)

दंगे-फसाद करने वाले लोगों को कवि दुर्बलमन वाले घोषित करता है। इस पूरे परिदृश्य को आज का युवा ही बदलने में सक्षम हो सकता है। जनतंत्र के दीर्घायु जीवन के लिए युवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसका उपाय भी कवि बतलाता है-

जब सामान्य घरों से निकले जन-नेता आ जाएँगे,

तभी सफल जनतंत्र देश के हम वासी कहलाएँगे। (पृ. 63)

जनतंत्र की सफलता इस बात में है कि हमारे पास नेता कैसे हैं। नेता कैसा जीवन जीते हैं। कवि ने जनतंत्र की बेहतरी के लिए नेताओं को आमजन की तरह जीवन जीने का संदेश दिया है-

आम व्यक्ति को ऊँची लगती जहाँ गरीबी रेखा हो,

जीवन में पीड़ा-अभाव ने जिसको रोज परेखा हो,

उसी व्यक्ति जैसा जीवन जब नायक स्वयं बिताएँगे,

271 CHD / 2018—16A

तभी सफल जनतंत्र देश के हम वासी कहलाएंगे। (पृ. 63)

वास्तविक नेता में नेतृत्व गुण होना अनिवार्य है। प्रश्न है कि किस प्रकार के नेतृत्वकारी गुणों की अपेक्षा नेताओं से कवि को है। इस पर विचार करते हुए अगली कविता में कवि ने भली-भाँति स्पष्ट कर दिया है-

अखिल विश्व में यह विशालतम लोकतंत्र कहलाता है,
उसका नायक नहीं लोक को पल भर कभी भुलाता है,
वह असहाय जनों में अद्‌भुत सत्साहस भर देता है,
सबसे पीछे खड़े व्यक्ति की वाणी को स्वर देता है,
कुचले-दबे जनों की पीड़ा का वह गायक होता है।
जनसाधारण में से उभरा ही जननायक होता है। (पृ. 65)

इस प्रकार के अनेक गीत हैं जो युवाओं को नेतृत्व गुण-संपन्न बनाने में सक्षम हैं। यदि हमारे देश का युवा इन गीतों को भली-भाँति आत्मसात् कर ले तो समाज की पूरी सूरत ही बदल जाएगी। जिस देश का युवा अपनी सोच को जनोन्मुखी बना लेने में समर्थ होगा, उस देश को विकास की ओर अग्रसर होने से कोई रोक नहीं सकता। इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए ही कवि ने इन गीतों की रचना की है। मुझे पूरा भरोसा है कि पाठकगण इस पुस्तक का स्वागत करेंगे और युवाओं में यह किताब लोकप्रियता के साथ गाई-सराही जाएगी। शचींद्र भटनागर जी को इस गीत-संग्रह 'युवाओं के गीत' के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

– 64-बी, फेस-II, डी.डी.ए. फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

❑❑❑

271 CHD / 2018—16B

जब तक इंद्र है, तक्षक हँसता रहेगा

प्रताप सहगल

उमाकांत खुबालकर एक लंबे समय से साहित्य सृजन में रत हैं। उन्होंने जहाँ एक ओर बाल साहित्य की रचना की है तो दूसरी ओर कहानियों में भी अपने लेखन कौशल का परिचय दिया है। उमाकांत ने अभी तक दो नाटक 'पेपरवाला' और 'खामोश नहीं है नारी' की रचना की है। 'तक्षक हँस रहा है' उनका नया नाटक है। इस नाटक की पृष्ठभूमि एक मिथक है जिसे उन्होंने महाभारत से उठाया है। नाटक तीन अंकों में विभाजित है।

प्रथम अंक में हम नागराज तक्षक का साम्राज्य देखते हैं। तक्षक के राज दरबार में एक युवक का नागेश्वरी के रूप में प्रवेश होता है। नागेश्वरी और नागराज के मध्य एक बहस चलती है और वह युवक नागराज तक्षक का अश्व और तलवार लेकर भाग जाता है। इससे पहले राज-दरबार में नागेश्वरी का नृत्य तो होता ही है, साथ ही नागराज को राजकीय दायित्वों के लिए भी चेताया जाता है। नाटक की शुरुआत सूत्रधार और पुरुष-स्त्री के संवादों से होती है लेकिन यह दृश्य नाटक में कहीं भी ना तो जुड़ता है, ना उसकी कोई भूमिका नजर आती है। ऐसे में सूत्रधार को नाटक में रखने का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता।

वस्तुतः नाटक दूसरे अंक से ही शुरू होता नजर आता है, जहाँ परीक्षित आखेट के लिए निकले हैं और भूख-प्यास से बेहाल हो जाने के कारण एक आश्रम में प्रवेश करते हैं। यह कुमार शृंगी का आश्रम है। कुमार शृंगी राजा परीक्षित को अपने पिता शमीक ऋषि के आश्रम में भेज देते हैं। शमीक ऋषि तप और

तक्षक हँस रहा है (नाटक)/ उमाकांत खुबालकर/ प्रकाशक : गुप्ता प्रकाशन, 1393, सेक्टर-16, फरीदाबाद (हरियाणा)/ पृष्ठ : 80/ मूल्य : 225/-

साधना में लीन हैं। राजा परीक्षित को राजोचित सम्मान ना मिलने के कारण क्रोध आ जाता है और वह शमीक ऋषि के गले में एक मृत सांप डाल देता है। तभी कुमार शृंगी का प्रवेश होता है लेकिन यह पता नहीं चलता कि कुमार शृंगी को शमीक ऋषि के गले में सांप डालने की सूचना कैसे मिलती है। यहीं पर कुमार शृंगी का स्वगत भी बहुत लंबा है, जो निश्चित ही नाटकीय गति में अवरोध पैदा करने वाला है। बहरहाल कुमार शृंगी अपने पिता के गले में राजा परीक्षित द्वारा डाले गए मृत सांप को देखकर इतना क्रोधित होता है कि वह राजा परीक्षित को यह श्राप दे देता है कि आज से ठीक सातवें दिन राजा परीक्षित की मृत्यु एक सांप के दंश से होगी। राजा घबरा जाता है। शमीक ऋषि दयालु हैं लेकिन राजा के अनुनय-विनय के बाद भी वह कुछ नहीं कर सकता और अंततः वह भी अचानक कुमार शृंगी द्वारा दिए गए श्राप का समर्थन करने लगता है। यहाँ यह बात भी समझ नहीं आती कि अचानक शमीक ऋषि का हृदय परिवर्तन कैसे हो जाता है। दृश्य तीन में राजा परीक्षित का महल दिखाई देता है। महारानी और उसकी दासी के बीच संवादों से पता चलता है कि राजकुमार ने संशय, डर और आशंका के कारण एक सर्प को मार डाला है। इस पूरे प्रसंग में कहीं भी राजकुमार के बारे में यह पता नहीं चलता कि वह राजकुमार वस्तुतः जनमेजय है। दृश्य के शुरू में पात्र की पहचान स्थापित करना जरूरी होता है। इस नाटक में जनमेजय की पहचान बहुत बाद में होती है।

नाटक के दूसरे अंक में त्रुटिवश तीसरा दृश्य है नहीं। अतः सीधे चौथे दृश्य पर पहुँचते हैं जोकि महारानी का निजी कक्ष है। महारानी इरावती को जब अपने पति राजा परीक्षित को दिए गए श्राप का पता चलता है तो वह स्तंभित रह जाती है। उसने तो सोलह सोमवार नाग पूजन का संकल्प लिया था। तभी आखेट में राजा परीक्षित के सभी अंगरक्षकों के मारे जाने की सूचना एक दासी लाती है। यहाँ भी नाटककार चाहते तो महारानी के द्वंद्व को बहुत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित कर सकते थे लेकिन महारानी की मानसिक उहापोह भी हमें सतही तौर पर ही दिखाई देती है।

अब प्रश्न यह है कि क्या राजा परीक्षित की मृत्यु सच में एक सांप के काटने से होगी या किसी युक्ति से वह बच निकलेगा। मूल कहानी के अनुरूप ही नाटक आगे बढ़ता है। राजा परीक्षित को यह विश्वास है उसके पास इतने

मांत्रिक हैं कि उनके रहते हुए जो भी सांप उनके करीब आएगा, वे मांत्रिक उसे नष्ट कर देंगे या बांध लेंगे। यहाँ तक कि मुख्य मांत्रिक तो हमेशा राजा के साथ ही छाया-सा बना रहता है। कुछ देर बाद पता चलता है कि राजा परीक्षित के सभी मांत्रिकों का अपहरण कर लिया गया है। अब राजा परीक्षित की चिंता और भी गहरी हो जाती है। उधर महारानी का संकल्प और व्रत, चलते हुए सांपों का महल के आस-पास आना निश्चित है।

इसी अंक के दृश्य दो में नागराज का राज महल है। नागराज तक्षक और उनके मंत्री नगेंद्र सेन से संवादों से पता चलता है कि तक्षक एक इच्छाधारी नाग है और वह रूप बदलकर कहीं भी प्रवेश कर सकता है। इधर नागराज तक्षक की नागकन्या नहीं चाहती कि कोई खून-खराबा हो। इसी बात को लेकर पिता और पुत्री के बीच जो संवाद हुए हैं, वे युद्ध के पक्ष और विपक्ष के विमर्श का एक पाठ हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। इस प्रसंग पर भी लेखक चाहते तो युद्ध बनाम युद्ध नहीं के और तर्क जुटा सकते थे। कथा आगे बढ़ती है। नागराज तक्षक की शक्ति के सामने नागकन्या की एक नहीं चलती और वह उसे बंदी बनाना चाहता है। नागकन्या भाग निकलती है।

दृश्य चार और दृश्य पाँच इस नाटक का चरमोत्कर्ष रचते हैं। बहुत सुरक्षा और बचाव के बाद भी राजा परीक्षित खुद को बचा नहीं पाते। तक्षक अपनी इच्छा से महल में प्रवेश करके राजा परीक्षित को डस लेता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। इस तरह से ऋषि द्वारा दिए गए श्राप को भी प्रतिफलित होते हुए दिखाया गया है।

दृश्य चार से नाटक एक नई करवट लेता है। इस दृश्य में सबसे पहले हम जनमेजय का राज्याभिषेक होते देखते हैं। थोड़ी ही देर में उसे सूचना मिलती है कि नागराज तक्षक ने खांडव प्रदेश का एक बड़ा भूभाग अपने राज्य में शामिल करने का निर्णय लिया है। जनमेजय पहले से ही अपने पिता की मृत्यु के संताप में था। नागराज की यह इच्छा जानकर तो वह और भी दुखी हो जाता है। पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए उसने पहले ही संपूर्ण नागजाति को नष्ट करने का संकल्प लिया हुआ था। यही अवसर था, जब वह अपना संकल्प पूरा करने के लिए कारगर कदम उठा सकता था। इसके लिए वह एक महायज्ञ का आयोजन करता है। इस नागयज्ञ में वह एक के बाद एक कई सर्पों को

पकड़-पकड़कर यज्ञ कुंड के हवाले करता जाता है, लेकिन तक्षक अभी भी उसके हाथ नहीं आया। नागजाति में त्राहि-त्राहि हो जाती है। यज्ञ चल रहा है। तभी ऋषि कश्यप का प्रवेश होता है और वे जनमेजय से कहते हैं कि वह इस यज्ञ को बंद करें। इससे हानि ही हानि है। जनमेजय का मानना है कि जब तक वह नागराज तक्षक को अपने यज्ञ में आहुति दे कर भस्म नहीं कर देगा, तब तक वह इस यज्ञ को बंद नहीं करेगा। कश्यप उसे सूचना देता है कि तक्षक तो इंद्र की शरण में चला गया है और उसे पकड़ना अब संभव नहीं।

इस तरह से तक्षक बच जाता है। नाटक इस संदेश के साथ समाप्त होता है कि जब तक इंद्र जैसे राजा तक्षकों को बचाते रहेंगे, तब तक इस पृथ्वी से बुराई और अन्याय नष्ट नहीं होगा। इसे नष्ट करने के लिए हर बार एक जनमेजय को जन्म लेना पड़ेगा। नाटककार अगर चाहते तो तक्षक और जनमेजय के संघर्ष के बहाने मौजूदा राजनैतिक परिवेश पर एक तीखा व्यंग्य कर सकते थे लेकिन यहाँ भी व्यंग्य की धार थोड़ी कम तीखी रह गई है। फिर भी कहूँगा कि हर नाटक की नियति और परीक्षा अंततः मंच ही है, अतः जब तक यह नाटक मंचित ना हो, इसके बारे में कोई अंतिम शब्द कहना उचित ना होगा। मेरी राय में बिना भारी काट-छाँट और फेरबदल के यह नाटक अपनी कथा और शक्तिशाली वस्तु के बावजूद बहुत प्रभावशाली ना हो सकेगा।

– एफ-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

❑❑❑

नरेंद्र मोहन कविता समग्र

डॉ. शालिनी राजवंशी

वरिष्ठ कवि नरेंद्र मोहन का अमन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित काव्य-संग्रह 'कविता समग्र' जीवन-दृष्टि और सपाटबयानी से डरे बिना कविता के प्रति उनकी निर्भीक सोच का प्रमाण देता है। निजी जिंदगी के उतार-चढ़ाव से उपजी इन कविताओं से गुजरना अतीत को जीने का अहसास कराता है। इन कविताओं में रोजमर्रा के जीवन प्रश्नों को उठाने के साथ-साथ समाज की विद्रूपताओं, असमानताओं, राजनैतिक ढकोसलों और आम आदमी की परेशानियों को भी स्पर्श किया गया है। नरेंद्र मोहन कविता समग्र दो भागों में है। प्रथम भाग में 'इस हादसे में', 'सामना होने पर', 'एक अग्निकांड जगहें बदलता', 'हथेली पर अँगारे की तरह', 'एक सुलगती खामोशी' कुल पाँच कविता-संग्रह हैं जो भिन्न-भिन्न समय पर प्रकाशित हुए हैं, जो उनकी सुदीर्घ काव्य यात्रा को समग्रता में प्रस्तुत करते हैं।

इन कविताओं में कवि के अवसाद, खामोशी, झंझावात, दुखों की सघनता स्पंदित हुई है। कवि-मन के झंझावात कविता में बहकर पाठक समुदाय का हिस्सा बन गए हैं। कवि ऊपर से बर्फ की तरह शांत है लेकिन अंदर जो लावा उबल रहा है वह शब्दों के माध्यम से बहकर सामने आता है- *उमड़ती रही थी चीख/ अंदर ही अंदर/ आंतड़ियों को तोड़ती।*

बचपन की स्मृति, मार-काट, कर्फ्यू, डर इन कविताओं में गहरे तक समाया हुआ है- *उन खूनी दिनों की दहशत/ मेरी त्वचा में रेंगने लगी थी।*

नरेंद्र मोहन कविता समग्र (दो भाग)/ सं. डॉ. गुरचरण सिंह/ अमन प्रकाशन, 104 ए/80सी, रामबाग, कानपुर-208012/ संस्करण: प्रथम, 2017/ पृष्ठ : 348, 352/ मूल्य : ₹1500/- (दोनों भाग)

कहाँ तो कवि के मन में दर्द भरा हुआ है जो उसे हर वक्त टीसता रहता है, वहीं कवि सामान्य परिस्थितियों में बहते हुए एक आम से आदमी सेवक राम पर फिदा हो जाता है। उसमें उसे विलक्षण शक्तियों का अहसास होता है-

उसकी वाक् पटुता और हाजिरजवाबी देख
मुझे अक्सर बीरबल याद आता है
और ताकत और हौसला देख, हनुमान

आत्म और परिस्थिति का जैसा अनोखा अंतरावलंबन नरेंद्र मोहन की कविताओं में देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कविता समग्र कवि के रूप में उनकी पहचान और महत्व का दस्तावेज है। उनकी कविताओं के जरिए एक युग को समझने और उसमें दाखिल होने के दरवाजे खुल जाते हैं। 'लंबी कविता' में कवि नरेंद्र मोहन की अवधारणाओं की ध्वनियाँ गूँज रही हैं। नरेंद्र मोहन अपनी कविताओं में वस्तु, शिल्प और भाषा के स्तर पर नित नए प्रयोग करते रहे हैं। परिवेश में व्याप्त विसंगति एवं विडंबना, व्यवस्था का आतंक और राजनीति की धूर्तता, समय और परिस्थिति, स्मृति और इतिहास, कविकर्म और भाषा कर्म से लेकर उन्होंने एक बड़े फलक पर कविताएँ लिखी हैं। वे कविता में परिवेश की द्वंद्वात्मकता और साझेदारी की अनुभूति को उभारने में सफल रहे हैं- *इतना कुछ सामने से गुजर गया। और मैं बदहवासी की हालत में पड़ा रहा।*

कवि भाषा में परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस करता हुआ कहता है- *यह वक्त है कि भाषा की/ कारोबारी हरकतों और नपुंसक व्यवहारों की/ चीर फाड़ शुरू हो।*

कई बार कवि उलझनों में घिर जाता है उसे रास्ता नहीं सूझता- *कैसे निकलूँ बाहर/ सामने दीवार/ पीछे दीवार/ अगल-बगल रास्तों की भरमार/ शीशों और सलाखों के आर-पार।*

कवि स्वयं में एक आलोचक भी है। वह शब्द और अर्थ के चक्रव्यूह से निकल कर कहता है-

अर्थ उसके लिए मछलियाँ है/ और संवेदना मगरमच्छ/ जिन्हें फाँसने के लिए/ वह झोंकता है शब्दों का जाल और दलाल/ मुस्कराता है उगाहते हुए दलाली।

कविता समग्र का उद्देश्य एक नई अंतर्दृष्टि को उभारना और आलोचना-अनुसंधान को सामने लाना है। इन्हीं उपक्रमों से कविता की उम्र बढ़ती है और कविताएँ भाषाएँ, सरहदों को पारकर एक बड़े समुदाय का हिस्सा बन जाती हैं।

बँटवारे की भयावह स्मृतियों से कवि चाहकर भी बाहर नहीं निकल पाता। विस्थापन के कई दौरों से गुजरते हुए जख्म की त्रासदी उन्हें टीसती रही- *बच तो वह गया/ पर उसका जहान उजड़ गया था/ हँसते खिलखिलाते मुहल्लों में/ सन्नाटे की चट्टान आ गिरी थी।* 'एक अग्निकांड जगहें बदलता', 'एक अदद सपने के लिए' तथा 'खरगोश-चित्र' और 'नीला घोड़ा' में सांप्रदायिक तनाव और हादसे व्यक्त हुए हैं।

कविता समग्र-खंड-दो में पाँच कविता संग्रहों की कविताएँ हैं- एक खिड़की खुली है अभी (2006), रंग आकाश में शब्द (2012), शर्मिला इरोम तथा अन्य कविताएँ (2014), नृत्य से कविता (2015) और, रंग दे शब्द (2015)'। कवि की काव्य चेतना के विकास की ये कड़ियाँ पहले खंड के साथ एक तारतम्य में जुड़ी हैं। 'नृत्य से कविता' संग्रह में नृत्य और रंग के संदर्भ में नए प्रयोगों और विषयवस्तु के नए आयामों के साथ एक तरह की निरंतरता है। अन्य कविताओं से अलग यहाँ कविता बदले मिजाज की है। यहाँ मौन शब्दों में समा गया है और छात्राएँ शब्द-रूप पाने लगीं- *छाया-भर नहीं जो/ छाया का भीतरी प्रकाश/ उसे तुम खींच लाए कैसे/ नृत्य विवर्तन में।*

शब्दों से कविताएँ सृजित होती हैं और रंगों से पेंटिंग्स। शब्दों में रंग भरते हुए कवि कहता है- *एक पेंटिंग से जन्म लेती हैं कई पेंटिंग्स/ एक कविता से सृजित होती हैं कई कविताएँ/ रंगों की नदी/ आहिस्ता-आहिस्ता सुलगने लगी है।* कवि ने शब्दों का वितान तानते हुए सुंदर रूपकों का प्रयोग किया है। 'एक खिड़की-खुली है अभी' कविता संग्रह में कवि फिर अतीत में गुम हो जाता है। उसे फिर याद आती है- *कटती जाती एक गाड़ी। स्टेशनों पर.... दहशतनाक चीखें।* निर्वासन ने कवि की निज-कथा को दारुण बना दिया है। वे दर्द भरे शब्दों में कहते हैं- *कितनी दारुण और दर्दभरी है। निर्वासन की अकथ-कथा/ बर्बरता के अंधेरे में।*

कवि ने ऐसे बिंब प्रस्तुत किए हैं जिसमें परिस्थिति और समय एक साथ ध्वनित हो रहे हैं- *मुझे याद आता है/ ऐसे एक कबूतर की तरह/ भून दिया गया था शहर/ तवे पर/ पिछले दिनों।*

'ढाई आखर प्रेम का/ पढ़े सो पंडित होए' पंक्तियाँ कहते-कहते कवि कबीर को याद करता है। लघु कविताओं में कहीं लोकतंत्र पर प्रहार है तो कहीं मुहावरों की चोट हैं। कहीं भागते दरवाजे हैं तो कहीं दरवाजे मौन हैं तो कहीं यही सन्नाटा तानाशाह की जान है।

'शर्मिला इरोम' से प्रभावित होकर कवि ने सत्ता की निरंकुशता और मानवीय अधिकारों के हनन की दास्तान लिखी है- *देखो जरा/ कितना पोलिटिकल हो गया है दुख/ तुम घेर कर मारो तो/ बहादुर/ वे घेर कर मारे तो/ बुजदिल।*

वर्तमान समय में भी कवि भूत की त्रासदियों से पीछा नहीं छुड़ा पाता। स्मृतियाँ उसे झकझोरती हैं और लगता है लेखक के माध्यम से जख्मों को छीलता हुआ लहू बह चला हो। कवि की भाषा बोल-चाल की सहज-सरल भाषा है। उनके शब्द पाठक के भीतर शब्द-चित्र खींचते जाते हैं और घटनाएँ फिल्म की भाँति एक के बाद एक मानस के कैनवास पर घटित होती जाती हैं। कुल मिलाकर कविता समग्र कवि की काव्ययात्रा का महत्वपूर्ण दस्तावेज ही नहीं, मील का पत्थर भी है।

– बी-603, प्रिंस अपार्टमेंट्स, आई. पी. एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

❑❑❑

प्राप्ति-स्वीकार

1. गागर-गार से महासागर (आलेख-संग्रह)/ नीलन खोईवाल/ बोधि प्रकाशन/ सी-46, सुदर्शन इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड, 22, गोदाम, जयपुर-302006/ प्रकाशन वर्ष-सितंबर 2017/ पृष्ठ- 120/ मूल्य-₹120/-
2. भाषा सर्वेक्षण/ डॉ. राम निवास साहू/ आलेख प्रकाशन/ वी-8, नवीन शाहदरा (भूतल), दिल्ली-110032/ द्वितीय संस्करण 2017/ पृष्ठ-278/ मूल्य-₹85/-
3. बड़का दाई (उपन्यास)/ डॉ. राम निवास साहू/ उद्योग नगर प्रकाशन/ 695, न्यूकोट गाँव, जी.टी.रोड, गाजियाबाद-286011/ प्रकाशन वर्ष-2017, पृष्ठ-196/ मूल्य-₹395/-
4. गली इधर खुलती है (कहानी-संग्रह)/ भगवान वैद्य 'प्रखर'/ पराग प्रकाशन/ 311सी, विश्वबैंक बर्रा, कानपुर-208027/ प्रकाशन वर्ष-2017/ पृष्ठ-232/ मूल्य-₹550/-
5. संवेदनाओं की स्वर-लहरी/ योगेंद्र कुमार/ अग्रवाल पब्लिकेशंनस/ 28/115, ज्योति ब्लॉक, संजय प्लेस, आगरा-2/ प्रकाशन वर्ष-2017-18/ पृष्ठ-136/ मूल्य-₹150/-
6. जगत बने मनमीत (कविता-संग्रह)/ डॉ. देवेंद्र आर्य/ राधारानी प्रकाशन/ 29/61, गली नं.-11, विश्वास नगर, दिल्ली-110032/ प्रकाशन वर्ष-2017/ पृष्ठ-112/ मूल्य-₹300/-
7. सुपरनोवा का रहस्य (विज्ञान-कथाएँ)/ सं. संतोष चौबे; मोहन सगोरिया/ आइसेक्ट पब्लिकेशंस, स्कोप कैंपस, एन एच 12, होशंगाबाद रोड, मिसरोड, भोपाल-462047/ प्रथम संस्करण 2017/ पृष्ठ-184/ मूल्य-₹200/-

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. नरेंद्र मोहन, 239-डी, एम.आई.जी. फ्लैट्स, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
2. श्री दयाप्रकाश सिन्हा, बी-255, सेक्टर-26, नोएडा-201301
3. प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म. प्र.)
4. डॉ. हीरालाल बाछोतिया, के. 40 एफ, साकेत, नई दिल्ली-110017
5. श्री दानबहादुर सिंह, कोठी नं. 3/16/3, ए.जी. कॉलेज रोड, पड़रा, रीवा 486001 (म. प्र.)
6. श्री शंकर लाल माहेश्वरी, पोस्ट-आगूचा, जिला-भीलवाड़ा, राजस्थान-311022
7. प्रो. हेमराज मीणा, हिंदी संस्थान नगर, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005
8. श्री बिर्ख खड़का डुवर्सेली, आमा खडकालय, दुर्गागढ़ी, प्रधान नगर, दार्जिलिंग-734003
9. डॉ. तुलसी देवी, महात्मा गांधी बालिका विद्यालय (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद (उ. प्र.)
10. डॉ. केशवराम शर्मा, बी-58, सड़क सं. 3, उत्तरी छज्जूपुर, दिल्ली-110084
11. डॉ. शबाना हबीब, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सरकारी संस्कृत महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम-34, केरल
12. डॉ. महीपाल सिंह राठौड़, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
13. डॉ. आलोक रंजन पांडेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, रामानुजन कॉलेज, कालकाजी, नई दिल्ली

14. डॉ. साधना शर्मा, प्राचार्या, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, अग्रसेन अस्पताल के पास, रोड नं.-57, वेस्ट पंजाबी बाग, दिल्ली-110026

15. श्री अमर बानिया लाहोरो, पोस्ट ऑफिस-सामावुर गैंगटोक, सिक्किम-737102

16. डॉ. आरसु, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, केंद्रीय विश्वविद्यालय, साकेत, पी.ओ. चेलेंब्रा, जिला-मलप्पुरम-673634

17. डॉ. प्रदीप शर्मा 'सनेही', प्राचार्य, जे. सी. डी. मेमोरियल (पी. जी.) कॉलेज, सिरसा (हरियाणा)

18. श्री सतीश श्रोत्रिय, मुगलपुरा, जावरा, जिला रतलाम (म. प्र.)

19. श्री पी. सुब्बारामय्या, 206, के. पी. टावर, बी. ब्लॉक, कनक दुर्गा टाकिज के सामने, सीतारामपुरम, विजयवाड़ा-4, (आंध्र प्रदेश)

20. डॉ. जे. एल. रेड्डी, बी-1/93, जनकपुरी, नई दिल्ली-110056

21. सुश्री संयुक्ता महांति, द्वारा सुश्री सुरभि बेहेरा मकान 'स्वरांजली', गड़ासाही, पोस्ट-जाँला, खोरधा (ओडिशा)-752054

22. सुश्री सुरभि बेहेरा, मकान 'स्वरांजली' गड़ासाही, पोस्ट-जाँला, खोरधा (ओडिशा)-752054

23. डॉ. शकुंतला कालरा, एन.डी.-57, पीतम पुरा, दिल्ली-110034

24. डॉ. गुरचरण सिंह, 6/15, अशोक नगर, नई दिल्ली-110018

25. प्रो. योगेश चंद्र शर्मा, 10/611, कावेरी पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राजस्थान)

26. डॉ. महेंद्र भटनागर, 110, बलवंत नगर, गांधी रोड, ग्वालियर-474002 (म. प्र.)

27. डॉ. गजानन चव्हाण, 3, नताशा रोड, औंध, पुणे-411007 (महाराष्ट्र)

28. श्री यज्ञदत्त सामंतराय, कविसूर्य नगर, गंजाम, ओडिशा-761104

29. सुश्री निबेदिता पंडा, द्वारा सुबास चंद्र पंडा, पाँचवीं लाइन, तुलसी नगर (रेड़ी गैरेज के सामने) ब्रह्मपुर, गंजाम-760001, ओडिशा

30. डॉ. अभिजित पायेङ्, द्वारा डॉ. जाकिर हुसैन, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कन्या महाविद्यालय, गीता नगर, गुवाहाटी-781021

31. डॉ. जाकिर हुसैन, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कन्या महाविद्यालय, गीता नगर, गुवाहाटी-781021

32. डॉ. ए. कीर्तिवर्धन, विद्यालक्ष्मी निकेतन, 53, महालक्ष्मी एंक्लेव, जानसठ रोड, मुजफ्फर नगर-251001 (उ. प्र.)

33. डॉ. सुनील परीट, द्वारा मारुति पाटिल, हाउस न.-56, मार्कंडेय नगर, मार्किट यार्ड, नेहरू नगर पोस्ट ऑफिस, बेलगाँव-590010 (कर्नाटक)

34. श्री तारिक असलम 'तस्नीम', हारून नगर कॉलोनी, प्लॉट-6, सेक्टर-2, रोड नंबर-3, फुलवारी शरीफ, पटना-801505

35. श्री भगवान वैद्य 'प्रखर', 30, गुरुछाया कॉलोनी, साईंनगर, अमरावती-44460

36. श्री दिविक रमेश, बी-295, सेक्टर-20, नोएडा-201301

37. श्री कुलदीप सलिल, 1770, ऑट्रम लाइंस, किंग्जवे कैंप, दिल्ली-110009

38. श्री कमल सिंह चौहान, कविता निवास, दुर्गा मंदिर के पास, रेलवे स्टेशन रोड, बीड़, जिला खंडवा (म. प्र.)-450110

39. श्री राजकुमार कुंभज, 331, जवाहर मार्ग, इंदौर-452002

40. डॉ. राहुल, 'साहित्य कुटीर', साइट-2/44, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

41. डॉ. पुष्पेंद्र कुमार शर्मा, एम-401, अजनारा लैंड मार्क, सेक्टर-4, वैशाली, गाजियाबाद-201010

42. डॉ. रमेश तिवारी, 64-बी, फेस-II, डी.डी.ए. फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

43. श्री प्रताप सहगल, एफ-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

44. डॉ. शालिनी राजवंशी, बी-603, प्रिंस अपार्टमेंट्स, आई. पी. एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

❑❑❑

MGIPRRND—271 CHD / 2018—850 Copies.

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-3-2018
850





प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित